तरुचिंतन 2013

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की स्वायत्त परिषद्)
न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड)
भारत

नमामि मातु भारती

नमामि मातु भारती!
हिमाद्रि-तुंग, श्रृंगिनी
तिरंग - अंश - रंगिनी
नमामि मातु भारती
सहस्र दीप आरती!

समुद्र-पाद-पल्लवे
विराट विश्व-वल्लभे
प्रबुद्ध बुद्ध की धारा
प्रणम्य हे वसुंधारा!

स्वराज्य - स्वावलंबिनी
सदैव सत्य-संगिनी
अजेय, श्रेय-मंडिता
समाज-शास्त्र-पण्डिता!

अशोक - चक्र-संयुते
समुज्जवले समुन्नते
मनोज्ञ मुक्ति-मंत्रिणी
विशान लोकतंत्रिनी!

अपार शस्य-सम्पदे
अजस्र श्री पदे-पदे
शुभन्करे-प्रियंवदे
दया-क्षमा वंशवदे!

मनस्विनी-तपस्विनी
रणस्थल-यशस्विनी
कराल-काल-कलिका
प्रचंड मुंड-मालिका

अमोघ शक्ति-धारिणी
कुराज कष्ट-वारिणी
अदैन्य मंत्र-दायिका
नमामि राष्ट्र - नायिका!

- गोपालप्रसाद व्यास

तरुचिंतन 2013

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
उत्तराखण्ड, देहरादून

संरक्षक

श्री के. जूड सेखर, भा.व.से.
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

सम्पादक मंडल

प्रधान सम्पादक
श्री शैवाल दासगुप्ता, भा.व.से., उपमहानिदेशक, (विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

सम्पादक
श्री विवेक खाण्डेकर, भा.व.से., सहा. महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

सहायक सम्पादक
श्री रमाकान्त मिश्र, अनुसन्धान अधिकारी (मीडिया एवं विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

प्रकाशन

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग
विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट
देहरादून – 248006 (उत्तराखण्ड), भारत

श्री के. जूड सेखर
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

संरक्षक की कलम से...

भारत एक बहुभाषी देश है जिसकी संप्रेषण–व्यवस्था में हिन्दी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बहुत विशाल क्षेत्र में हिन्दी का प्रचलन जन सामान्य की बोलचाल की भाषा, सम्पर्क भाषा और साहित्य की भाषा के रूप में निरन्तर चला आ रहा है। आज यह प्रशासन, विधि, वाणिज्य, व्यापार, बैंक, विज्ञान, प्रौद्योगिकी आदि विभिन्न तकनीकी क्षेत्रों में पदार्पण कर विषय विशेष या क्षेत्र विशेष के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संस्था है तथा राजभाषा नियमों के अधीन राजभाषा के प्रचार प्रसार के लिए कटिबद्ध है। परिषद् में सरकारी कामकाज में हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए निरन्तर प्रयास किये जा रहे है। विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, कार्यशालाएं, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें, काव्य गोष्ठी, हिन्दी सप्ताह समारोह इत्यादि विभिन्न गतिविधियां नियमित रूप में की जा रही हैं। प्रयास किया जाता है कि परिषद् मुख्यालय तथा इसके संस्थानों के कर्मचारियों में हिन्दी में कार्य करने के लिए जागरूकता और रूचि उत्पन्न की जाए।

वार्षिक हिन्दी पत्रिका "तरूचिंतन" भी इसी प्रकार का एक सार्थक प्रयास है। पत्रिका में परिषद् मुख्यालय तथा संस्थानों के कर्मचारियों तथा उनके परिजनों द्वारा प्रेषित वानिकी से सम्बन्धित लेखों के साथ–साथ मनोरंजक कहानियां, कविताएं इत्यादि प्रकाशित किये जाते हैं। इसमें लेख प्रकाशित करवाने के लिए कर्मचारियों तथा उनके परिजनों में अत्यन्त उत्साह देखा जा रहा है जो कि अत्यन्त हर्ष का विषय है। मुझे आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी यह पत्रिका इसी प्रकार राजभाषा के प्रचार–प्रसार में पूर्ण रूप से सहयोगी होगी तथा परिषद् एवं इसके संस्थानों में राजभाषा के कार्यान्वयन में सहायक सिद्ध होगी।

श्री के. जूड सेखर

श्री शैवाल दासगुप्ता
उप महानिदेशक (विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

प्रधान संपादक की कलम से...

जब 1949 में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया तो यह आशा की गई थी कि शीघ्र ही पूरे देश में हिन्दी का वर्चस्व होगा, परन्तु भारतीय राजभाषा के रूप में संवैधानिक रूप में महत्व पाकर भी हिन्दी का अपेक्षित स्वरूप अभी तक स्थापित नहीं हो सका है। कार्यालयों में राज्यादेश के कारण हिन्दी को महत्व अवश्य मिला है परन्तु राष्ट्रभाषा और राजभाषा का प्रचलन जिस गति से होना चाहिए था, नहीं हो सका है। उसके अनेक कारणों में हमारा मानसिक शैथिल्य भी एक विशेष कारण है। राजभाषा नियमों के अधीन परिषद् हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए अध्यादेशित है। हिन्दी पत्रिका "तरूचिंतन" का प्रकाशन इन्हीं दायित्वों के अधीन किया जाता है।

जब वार्षिक हिन्दी पत्रिका "तरूचिंतन" का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था तो किसी को भी आभास नहीं था कि यह पत्रिका इतनी लोकप्रिय होगी किन्तु प्रत्येक अंक के साथ इसकी लोकप्रियता बढ़ती चली गई। इस पत्रिका में प्रकाशित होने के लिए रचनाओं का आधिक्य इस ओर संकेत करता है कि राजभाषा के प्रचार–प्रसार के लिए "तरूचिंतन" का प्रकाशन कितना सफल प्रयास रहा है।

मैं आपको बताना चाहूँगा कि राजभाषा संसदीय समिति की तीसरी उप समिति ने गत वर्ष राजभाषा निरीक्षण के दौरान इस पत्रिका का अवलोकन किया और इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की। माननीय समिति इसकी साजसज्जा व कलेवर से अत्यन्त प्रभावित हुई और उन्होने आदेश दिया कि इसकी प्रति उन्हे नियमित रूप से भिजवाई जाये। यह हम सब के लिए अत्यन्त गर्व का विषय है।

हिन्दी में प्रकाशित यह पत्रिका राजभाषा के प्रचार प्रसार के उद्देश्य का सफलतापूर्वक निर्वहन कर रही है तथा सदैव करती रहेगी ऐसी हमारी अपेक्षा है।

श्री शैवाल दासगुप्ता

श्री विवेक खाण्डेकर
सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

संपादक की कलम से...

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए अधिदेशित है और इसके लिए निरंतर प्रयासरत रहती है। परिषद् का प्रयास केवल नियम, उप नियमों के अनुपालन तक सीमित न रहकर सभी संबंधित नियमों का अनुपालन सुनिश्चित करते हुए राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए विभिन्न स्तरों पर नवीन अनुष्ठानों का आयोजन करते हुए इसे विभिन्न आयामों तक ले जाना और इस प्रयास में सभी की स्वैच्छिक सहभागिता प्राप्त करना रहा है। इसी क्रम में परिषद् का एक अत्यंत सार्थक प्रयास "तरूचिंतन" है। यह पत्रिका अपने विशिष्ट रूप, शैली, प्रस्तुतिकरण और विषय वैविध्य के चलते एक अनूठी पत्रिका है। इस पत्रिका के प्रकाशन में इस बात को विचार में रखा गया कि न सिर्फ कर्मचारी, अधिकारी इसमें सम्मिलित हों बल्कि उनके परिवार के सदस्य भी इसमें रूचि लें क्योंकि किसी भी भाषा की प्रगति केवल सांस्थानिक सहभागिता से ही सम्भव नहीं है।

पत्रिका को नीरस और बोझिल होने से बचाने के लिए और इसकी पठनीयता बढ़ाने के लिए इसमें जहां एक ओर लालित्य खण्ड का आयोजन किया गया है, वहीं दूसरी ओर रिक्त स्थानों पर स्थापित कवियों के उत्कृष्ट रचनांश प्रभावी स्वरूप में प्रस्तुत किए जाते हैं तथा पत्रिका को अत्यंत आकर्षक नयनाभिराम साज– सज्जा के साथ प्रकाशित किया जाता है।

इस पत्रिका में प्रकाशनार्थ आने वाली रचनाओं की बढ़ती संख्या पत्रिका की लोकप्रियता का प्रमाण है और स्पष्ट है कि हिन्दी के प्रचार–प्रसार के अपने लक्ष्य में पत्रिका सफल हो रही है। पत्रिका की सफलता में इसके रचनाकारों का परिश्रम और कौशल तथा पाठकों का सहयोग दोनों का ही अन्योन्याश्रित योगदान है। आशा है कि यह सम्बध दिनों दिन और प्रगाढ़ होता जाएगा और राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार को नए आयाम तक ले जाएगा।

श्री विवेक खाण्डेकर

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संरक्षक की कलम से		III
	प्रधान संपादक की कलम से		V
	संपादक की कलम से		VII
	राजभाषा		
1.	परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन	श्री विवेक खाण्डेकर	3
2.	काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर में राजभाषा कार्यान्वयन की रिपोर्ट	डॉ. गीता जोशी	5
3.	वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून की राजभाषा रिपोर्ट		7
4.	वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियां	श्री शंकर शर्मा	8
5.	राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार में वन उत्पादकता संस्थान द्वारा की गई गतिविधियों पर एक प्रतिवेदन	श्री रामेश्वर दास	10
6.	हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियां		11
7.	वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान में मनाये गये हिन्दी समारोह की रिपोर्ट	श्रीमती पूंगोदै कृष्णन	12
8.	राजभाषा के प्रयोग तथा वार्षिक कार्यक्रम की प्रगति रिपोर्ट वर्ष 2012–13	श्री धीरेन्द्र कुमार	13
9.	शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में आयोजित "हिंदी पखवाड़ा" की रिपोर्ट	श्री कैलाशचन्द्र गुप्ता	14
	वानिकी		
10.	विश्व के वन : दशा व दिशा	श्री अनूप सिंह चौहान	17
11.	वानिकी में भू–विज्ञान तथा मृदा का महत्व	डॉ. अवतार कृष्ण रैना एवं डॉ. मुकेश कुमार गुप्ता	20

12.	चंदन पेड़ के लिये नया परपोषी पौधे के रूप में नींबू	श्री डी. राजसुगुना शेखर एवं श्रीमती पूंगोदै कृष्णन	22
13.	सूखे की स्थिति में वनों का महत्व	डॉ. ओम कुमार एवं श्री सुधीर कुमार	24
14.	बहुऔद्योगिक तरु : सेमल	डॉ. ममता पुरोहित	26
15.	झारखण्ड में केन्दु पत्तियों के उत्पादन का आकलन	डॉ. संजय सिंह, श्री राजीव पाण्डेय एवं श्री रामेश्वर दास	29
16.	भूतजोलोकिया – सुपारी कृषि वानिकी मॉडल	डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, श्री पवन कुमार कौशिक एवं श्री नीरेन दास	32
17.	कृषि वानिकी : एक परिचय	डॉ. चरन सिंह एवं श्री रामबीर सिंह	34
18.	वानिकी रोपवन कार्यक्रमों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली प्रजातियों का महत्व एवं तकनीक	डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल एवं कुमारी पल्लवी भाटिया	37
19.	उच्च उपज देने वाली क्लोनीय वृक्षारोपण के लिये नये विलायती सारूँ	डॉ. रेखा आर. वारियर एवं श्रीमती पूंगोदै कृष्णन	41

विविधा

20.	मध्यप्रदेश के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में विलुप्त होती जड़ी बूटी प्रजातियों के विनाशविहीन विदोहन के लिये प्रसार प्रचार का महत्व एवं संरक्षण	डॉ. राजीव राय	45
21.	आहारीय वनस्पतियों की प्रतिआक्सीकारक एवं पोषण–भेषजीय उपादेयता	डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी, सुश्री निशात अन्जुम एवं श्री विकास	49
22.	कवक विष के दुष्प्रभाव	डॉ. एन. के. बोहरा, डॉ. डी के. मिश्रा, श्री लखपत सिंह एवं श्री एच.के. पाण्डेय	53
23.	सहजन पत्तियों का जैव उत्प्रेरक प्रभाव : एक समीक्षा	श्री पंकज सिंह एवं डॉ. संजय सिंह	56
24.	आँवला : प्रकृति का एक अद्वितीय उपहार	डॉ. देवेन्द्र कुमार	57
25.	बोधि वृक्ष पीपल : आध्यात्मिक एवं औषधीय महत्व	डॉ. राजेश कुमार मिश्रा एवं श्रीमती पूर्णिमा श्रीवास्तव	59
26.	साईलेज : आवश्यकता एवं उपयोगिता	डॉ. ममता पुरोहित	62
27.	मधुरता का वरदान : स्टीविया	श्री शम्भूनाथ मिश्र एवं श्री रामेश्वर दास	65
28.	सर्वगुण सम्पन्न अनमोल नीम	डॉ. प्रतिमा पटेल	67
29.	लाख कीट पालन : झारखंड की ग्रामीण आजीविका का एक प्रमुख स्रोत	डॉ. अरविन्द कुमार, श्री रामेश्वर दास एवं श्री प्रवीण कुमार नाग	70
30.	शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के विशेष संदर्भ में जैव विविधता तथा जैव उत्पादकता	श्री एस. आर. बालोच	73
31.	*फ्लेमेंजिया सेमियालता* पर लाख कीट पालन	श्री रामेश्वर दास, डॉ. अरविन्द कुमार एवं श्री एस. एन. वैद्य	76
32.	"हड़िया" पेय का आदिवासी समुदाय में महत्व	श्री प्रवीण कुमार नाग एवं डॉ. अरविन्द कुमार	78
33.	वनस्पति : जीवन का आधार	श्री सुभाष चंद्र मुखर्जी	81

34.	सुगंध का संसार : नींबू घास	श्री रविशंकर प्रसाद, श्री पंकज सिंह एवं डॉ. संजय सिंह	82
35.	भारत में वनौषधियों का पारम्परिक उपयोग	श्री हरिशंकर लाल	86
36.	गढ़वाल हिमालय में पायी जाने वाली महत्वपूर्ण औषधीय लताओं का संक्षिप्त विवरण	डॉ. बी. पी. टम्टा एवं श्री अत्तर सिंह	91
37.	एरोमाथैरेपी : सुगंध एवं सेहत का अद्भुत संगम	डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी, डॉ. राकेश कुमार एवं सुश्री अनिता पाल	95
38.	मसालों का औषधीय उपयोग (स्वाद भरे मसालें, सेहत के रखवाले)	कुमारी शिप्रा नागर, श्री विकास एवं डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी	100
39.	पुस्तकालय विज्ञान के जनक : डॉ. रंगनाथन	श्रीमती पूर्णिमा श्रीवास्तव	103
40.	कृषकों के लिए बांस उत्पादन : उन्नत तकनीक एवं प्रवर्धन विधि	डॉ. पी के दास	106
41.	*माईमोसा डिप्लोट्राईका :* काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान (असम) के सवाना घास पारिस्थितिक–तंत्र के लिये बढ़ता हुआ खतरा और उसके संभावित निदान	डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, डॉ. धुबज्योति दास, डॉ. विश्वजीत कुमार एवं डॉ. रंजीत कुमार	108
42.	डायेटरी फाइबर	डॉ. विकास राना एवं श्री शंकर शर्मा	110
43.	ज्ञान पर आधारित समाज के लिए भविष्य में पुस्तकालयों का प्रबंध	श्रीमती अनुराधा भाटी	113
44.	बहुउपयोगी प्रकृति प्रदत्त भारतीय धरोहर : हिमालय भोजपत्र वृक्ष रहस्यमयी छाल–शास्त्रोक्त दृष्टि	श्री बाबूलाल शर्मा	115
45.	सहजन के हानिकारक कीट एवं उनका प्रबन्धन	डॉ. अरविन्द कुमार एवं डॉ. संजय सिंह	119
46.	राजस्थान की जीवन रेखा खेजड़ी पर किये जा रहे जैव प्रौद्योगिकी शोध कार्य	सुश्री शालिनी स्वरुपा, डॉ. तरुण कांत एवं डॉ. टी. एस. राठौड	121
47.	कुछ मुख्य पादपों का परिचय एवं उनका औषधीय उपयोग	सुश्री ज्योति काण्डपाल एवं डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल	123
48.	पादप रोगों का जैविक नियंत्रण	डॉ. अमित पाण्डेय, सुश्री ज्योति शर्मा एवं सुश्री शिखा तिवारी	126
49.	दीमक एवं उसका नियंत्रण	डॉ. के.पी. सिंह	127
50.	उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान परिसर में तितलियों की जैव विविधता	श्री संजय पौनीकर, डॉ. नितिन कुलकर्णी एवं डॉ. एन. रॉयचौधरी	129
51.	पर्यावरण संकट भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का द्वन्द	श्री विपिन कुमार	131

लालित्य

52.	दामिनी	डॉ. सुधांशु गुप्ता	135
53.	हिल ट्रैकिंग	श्री विवेक खाण्डेकर	136
54.	धूप में छाँव	श्रीमती अर्चना जोशी	138
55.	फ़लसफा जिन्दगी का	सुश्री अनिता पाल	141
56.	माँ की वेदना	श्रीमती कला नैथानी	142

57.	एक गुमनाम पेड़ की कहानी	श्री सुरेश चन्द्र	144
58.	ओ माँ तुझे सलाम	श्रीमती रोशनी चौहान	146
59.	मित्र का बचपन	श्री प्रशान्त शर्मा	148
60.	दानव	श्री प्रशान्त शर्मा	148
61.	धरा	श्रीमती गीता वोहरा	149
62.	चेतना	कुमारी शिप्रा नागर	149
63.	विशाल जहाज की कहानी	श्रीमती आर.जी. अनिता	150
64.	वनों का महत्व	आर. श्रीदेवी	150
65.	मैं और मेरी तनहाई	सुश्री कुसुम परिहार	151
66.	जल–संकट	सुश्री निशात अन्जुम	152
67.	लाख / लाह	श्री महेश कुमार चंचल	152
68.	पंडित जवाहर लाल नेहरू	कुमारी भारती सिंह	153
69.	प्रकृति के रंग	श्री अजय कुमार	154
70.	माँ–बाप	कुमारी स्नेहलता मन्द्रवाल	154
71.	खोज	श्री अमित कुमार सिंह	155
72.	वृक्ष की पुकार	सुश्री ज्योति काण्डपाल एवं डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल	155
73.	पिता	सुश्री अंशु गर्ग	156
74.	वृक्ष	श्री आषुतोश कुमार पाण्डेय	157
75.	द्रुम पद्य	श्री ध्रुव गुंरूग	158
76.	द्रुम	श्री छत्रपाल सिंह सैनी	159
77.	गजल	श्रीमती सुधा पाण्डेय 'गुड्डी'	160
78.	प्रकृति, इंसान और आपदा	श्री केशव सिंह मन्द्रवाल	161

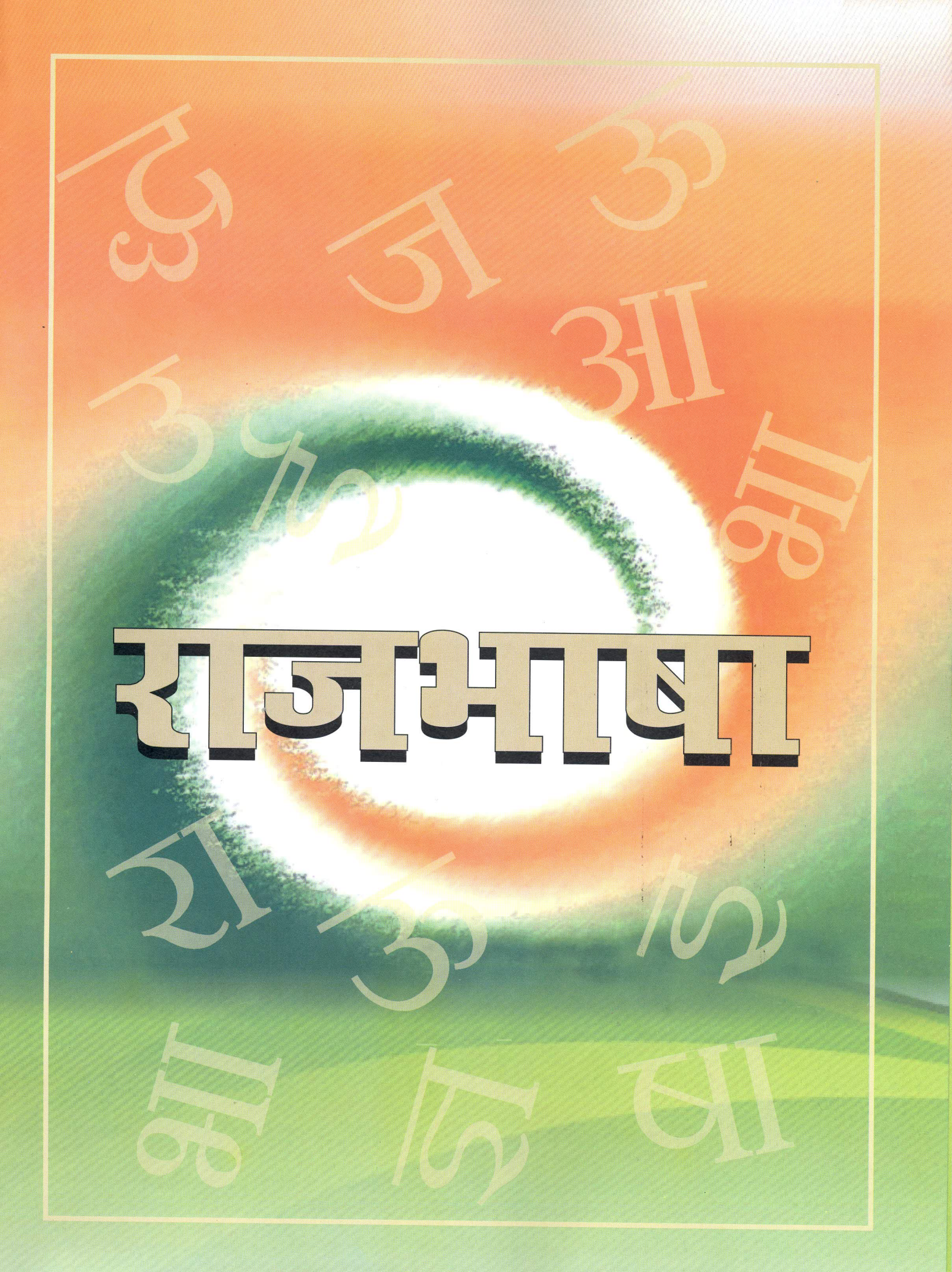
राजभाषा

परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन

श्री विवेक खाण्डेकर
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार को गतिशील रखने के लिए अध्यादेशित है। इस दिशा में परिषद् समय–समय पर कार्याशालाओं तथा प्रशिक्षणों का आयोजन करती है हिन्दी वार्षिक पत्रिका "तरूचिंतन" तथा अर्धवार्षिक हिन्दी "वानिकी समाचार" का प्रकाशन करती है।

परिषद् के राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए किए जा रहे प्रयासों के अन्तर्गत दिनांक 7 से 14 सितम्बर 2012 को हिन्दी सप्ताह समारोह का आयोजन किया गया। श्री शैवाल दासगुप्ता, उप महानिदेशक (विस्तार) ने अपने स्वागत भाषण से सभी का स्वागत करते हुए परिषद् में हिन्दी सप्ताह समारोह के इस वर्ष के आयोजन की विशेषताओं से परिचित कराया। हिन्दी सप्ताह के दौरान प्रत्येक वर्ष की भांति विभिन्न प्रतियोगिताओं यथाः टिप्पण लेखन, अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद, कम्प्यूटर पर हिन्दी टंकण एवं स्वरचित काव्य पाठ इत्यादि कुल 5 प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। समापन समारोह का आयोजन दिनाँक 14 सितम्बर 2013 को किया गया। इस समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में शामिल हुए डॉ. एस. पी. सिंह, उप महानिदेशक (प्रशासन) तथा अन्य अतिथियों ने दीप प्रज्ज्वलित कर समारोह का शुभारम्भ किया। इस अवसर पर डॉ. एस. पी. सिंह, उप महानिदेशक (प्रशासन) ने सरकारी कामकाज में हिन्दी के महत्व को उजागर करते हुए समस्त कार्यालयों में सरकारी कार्यों को हिन्दी में करने के लिए अधिकारियों तथा कर्मचारियों का आवाहन किया। इस समापन समारोह में उद्घाटन सत्र के उपरान्त स्वरचित काव्य पाठ का आयोजन किया गया। काव्य पाठ के उपरान्त सभी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार दिया गया।

हिन्दी सप्ताह समारोह में उपस्थित उच्चाधिकारी

हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला 'सरकारी कामकाज में हिन्दी को बढ़ावा'

दिनांक 19 दिसम्बर 2012 को हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला "सरकारी काम–काज में हिन्दी को बढ़ावा" का आयोजन परिषद् के प्रमण्डल कक्ष में किया गया। इसमें प्रशिक्षक के रूप में भारतीय वन सर्वेक्षण के श्री एच. बी. जोशी को आंमत्रित किया गया। श्री जोशी ने राजभाषा के विभिन्न नियमों से सभी कर्मचारियों को परिचित करवाया। इस प्रशिक्षण कार्यशाला में लगभग 50 कर्मियों ने भाग लिया।

दिनांक 27 जून 2013 को भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद सभागार में राजभाषा हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। डॉ. एस. पी. सिंह, उप महानिदेशक (प्रशासन), भा.वा.अ.शि.प., देहरादून कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे। श्री सु. प्र. चौबे, निदेशक (राजभाषा), पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, नई दिल्ली इस प्रशिक्षण कार्यशाला के प्रमुख वक्ता थे। कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्ज्वलित कर किया गया। श्री शैवाल दासगुप्ता, उप महानिदेशक (विस्तार) ने सभी अतिथियों का स्वागत किया। कार्यशाला को संबोधित करते हुए डॉ. एस. पी. सिंह, उप महानिदेशक (प्रशासन), ने कहा कि हिन्दी का विकास निरंतर हो रहा है और हमे हिन्दी के प्रति सकारात्मक सोच रखते हुए हिन्दी के कार्यान्वयन के लिए

प्रयास करना चाहिए। इस अवसर पर बोलते हुए डॉ. पी. पी. भोजवेद, निदेशक, वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून ने कहा कि भारत विविधता में एकता वाला देश है, यहां बहुत सारी भाषाएं बोली जाती हैं और हिन्दी भाषा सभी के साथ घुल मिल जाती है तथा पूरे देश को एकता के सूत्र में बांधे रखती है।

इस अवसर पर श्री सु. प्र. चौबे जी ने कहा कि भारत सरकार ने हमें ये उत्तरदायित्व दिया है कि हम सरकारी काम–काज में हिन्दी का प्रयोग करें। इसके लिए सरकार समय–समय पर निरीक्षण करती है तथा हिन्दी कार्यान्वयन को बढ़ाने के लिए प्रति वर्ष वार्षिक कार्यक्रम बनाती है ताकि हमें हिन्दी के कार्यान्वयन में सहायता मिले। इस कार्यक्रम में समस्त सहायक महानिदेशकों सहित वैज्ञानिक, अधिकारी, अनुसन्धानकर्मी तथा लिपिकीय संवर्ग के समस्त कर्मियों सहित लगभग 250 व्यक्तियों ने भाग लिया।

दिनांक 27 जून 2013 को भा.वा.अ.शि.प. की ओर से वन अनुसन्धान संस्थान की कम्प्यूटर प्रयोगशाला में हिन्दी प्रशिक्षण का आयोजन भी किया गया। इस प्रशिक्षण के लिए श्री गगन शर्मा, अभियंता, आर्यन–ई–साफ्टवेयर, प्रमुख प्रशिक्षक थे। इस प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य भा.वा. अ.शि.प. के कुछ कर्मचारियों को सारांश साफ्टवेयर के मास्टर प्रशिक्षक के रूप में प्रशिक्षित करना था ताकि बाद में वे अन्य कर्मचारियों को सारांश साफ्टवेयर पर प्रशिक्षण दे सकें।

विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, कार्यशालाएं, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की नियमित बैठकों के आयोजन एवं नराकास, देहरादून में भागीदारी आदि के माध्यम से परिषद् राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए निरंतर प्रयासरत है।

'हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला' के दौरान मंचासीन उच्चाधिकारी एवं विशेषज्ञ

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर में राजभाषा कार्यान्वयन की रिपोर्ट

डॉ. गीता जोशी
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर

वर्ष 2012 के दौरान संस्थान द्वारा राजभाषा के कार्यान्वयन पर किये गये कार्य एवं गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः राजभाषा के कार्यान्वयन संबंध में राजभाषा विभाग, भारत सरकार एवं भा.वा.अ.शि.प., देहरादून द्वारा वर्ष 2012 के दौरान जारी किये गये दिशा–निर्देशों पर इस संस्थान में अमल किया गया। संस्थान के शासकीय काम–काज में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग बढ़ाने की दिशा में हर संभव सक्रिय प्रयास जारी रखने हेतु हस्ताक्षरकर्ता अधिकारियों को सुझाव दिये गये एवं आयोजित राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों के कार्यवृत्त संबंधित अधिकारी एवं कार्यालयों को अपेक्षित कार्रवाई हेतु यथा समय पर प्रेषित किया गया।

इस दौरान राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) के तहत जारी दस्तावेज़ जोकि सामान्य आदेश, परिपत्र, ज्ञापन आदि को अनिवार्य रूप से द्विभाषी में ही जारी किया गया एवं यह प्रक्रिया वर्तमान में भी जारी है। हिन्दी पत्राचार का निर्धारित 55 प्रतिशत लक्ष्य हासिल किया जा चुका है। राजभाषा कार्यान्वयन कार्य के वार्षिक लक्ष्यों को हासिल किये जाने पर उप निदेशक, राजभाषा विभाग, क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय (दक्षिण) बंगलौर ने इस संस्थान की सरहाना की एवं संस्थान के बिनदेशक को साधुवाद का पत्र भेजा।

यह संस्थान नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बंगलोर का सदस्य कार्यालय भी है और समय–समय पर समिति द्वारा आयोजित समारोह एवं बैठकों में सक्रिय भाग लेता है और बैठकों में दिये गये सुझावों पर अमल किया जाता है। इस दौरान संस्थान में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में बढौतरी लाने की दृष्टि से अधिकारियों के लिए दिनांक 29 जून 2012 एवं 18 दिसम्बर 2012 को राजभाषा अभिमुखीकरण कार्यक्रम एवं लिपिकवर्गीय कर्मचारियों के लिए दिनांक 09 मार्च/2012 एवं 05 सितम्बर 2012 को हिन्दी कार्यशालाएँ आयोजित की गयी। उक्त वर्ष के दौरान, दो अवर श्रेणी लिपिकों को भारत सरकार, केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण उप संस्थान, बैंगलोर केन्द्र पर कंप्यूटर पर संचालित 40 दिवसीय पूर्णकालिक हिन्दी टंकण प्रशिक्षण के लिए प्रतिनियुक्त किया गया एवं प्रशिक्षित सफल प्रशिक्षार्थियों को 12 महीने के लिए वेतनवृद्धि प्रदान की गयी। वर्ष 2011–12 के दौरान, संस्थान के शासकीय काम–काज में मूल हिन्दी में दस हजार शब्द लिखे जाने पर लेखा अनुभाग में कार्यरत लिपिक श्रीमती टी. विजयकुमारी, को नकद प्रोत्साहन पुरस्कार का लाभ प्रदान किया गया।

भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय देहरादून द्वारा प्रकाशित हिन्दी न्यूज लेटर में प्रकाशन हेतु संस्थान के अनुसन्धान गतिविधियों की जानकारी हिन्दी में तैयार कर मुख्यालय को प्रेषित की गयी। हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की तिमाही, अर्धवार्षिक एवं वार्षिक रिपोर्टें यथा समय पर, भा.वा.अ.शि.प., मुख्यालय, देहरादून, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, नई दिल्ली, राजभाषा विभाग, क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय (दक्षिण) बेंगलौर तथा सदस्य सचिव, नगर राजभाषा कार्यन्वयन समिति, बेंगलौर कार्यालय को अपेक्षित कार्रवाई हेतु ठीक समय पर प्रेषित की गयी। उक्त वर्ष के दौरान अंग्रेजी में उपलब्ध चन्दन ब्रोशर हिन्दी में रूपांतरित कर 500 प्रतियां प्रकाशित की गयी ।

संस्थान के निदेशक महोदय की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की समय–समय पर बैठक आयोजित कर हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की समीक्षा की गयी एवं राजभाषा के कार्यान्वयन कार्य में आनेवाली कठिनाईयों को दूर करने की दिशा में सकारात्मक प्रयास किये गये। भारत संघ की राजभाषा नीति के अनुपालनार्थ, संस्थान में, निदेशक, श्री एस. सी. जोशी, भा.व.से. की अध्यक्षता में 14 से 28 सितम्बर 2012 तक हिन्दी पखवाड़ा समारोह आयोजित किया गया। समारोह के सफल आयोजन के लिए डॉ. ओ. के. रमादेवी, वैज्ञानिक–जी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी। इस दौरान समिति द्वारा कर्मचारियों के लिए तीन समूहों में हिन्दी की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयी।

समूह।: जिनकी अर्हता हिन्दी प्रवीण तक है; समूह ।।: जिनकी अर्हता प्राज्ञ तक है या जिन्होने स्नातक/स्नातकोत्तर तक हिन्दी भाषा में पढ़ाई की है या जिनकी मातृभाषा मराठी/उर्दू है; समूह ।।।: जिसमें सभी कर्मचारियों को सम्मिलित किया गया था । प्रतियोगिताओं में संस्थान में कार्यरत पदाधिकारियों ने भाग लिया।

हिन्दी दिवस समारोह 1 अक्तूबर, 2012 को मनाया गया जिसमें मुख्य अतिथि डॉ. एल. अमजद अली खान, महाप्रबंधक, बीईएमएल, बंगलोर (सेवा–निवृत्त) थे। कार्यक्रम का शुभारंभ

डॉ. ओ. के. रमादेवी, अध्यक्ष, हिन्दी पखवाडा आयोजन समिति द्वारा मुख्य अतिथि, संस्थान के निदेशक एवं सभी उपस्थितों को हार्दिक स्वागत करते हुए हुआ। वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुतीकरण के बाद संस्थान के कर्मचारियों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजित किया गया जिसमें हिन्दी गीत गायन, कविता पठन आदि किया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रम के बाद हिन्दी पखवाडे के दौरान आयोजित विविध प्रतियोगिताओं के विजेताओं को मुख्य अतिथि एवं संस्थान के निदेशक महोदय द्वारा पुरस्कार प्रदान किये गये। तदनंतर संस्थान के निदेशक महोदय ने समारोह को संबोधित किया। अपने उद्‌बोधन में निदेशक महोदय ने प्रतियोगिताओं के विजेताओं को बधाई दी तथा समारोह को हिन्दी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास की दिशा में हुए घठनाक्रमों के बारे में संक्षिप्त में अवगत कराया तथा संस्थान के सभी पदाधिकारियों को शासकीय काम–काज में राजभाषा हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग बढाने का प्रयास जारी रखने हेतु आग्रह किया । निदेशक महोदय के उद्‌बोधन के बाद समारोह में सादर आमंत्रित मुख्य अतिथि महोदय ने अपने उद्‌बोधन में संस्थान में हिन्दी के प्रयोग एवं प्रगति के दिशा में निदेशक महोदय द्वारा किये जा रहे प्रयासों की सराहना की एवं हिन्दी के वर्तमान वातावरण को बरकरार रखने के लिए प्रयासरत रहने के लिए सभी पदाधिकारियों को आग्रह किया।

समारोह के अंतिम चरण में डॉ. गीता जोशी, वैज्ञानिक–ई एवं हिन्दी अधिकारी द्वारा आभार प्रदर्शन प्रस्तुत किया गया जिसमें उन्होने समारोह को सफल बनाने के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सक्रिय सहयोग दिये हुए पदाधिकारी के प्रति आभार प्रकट किया।

समारोह को संबोधित करते हुए माननीय मुख्य अतिथि

समारोह को संबोधित करते हुए निदेशक

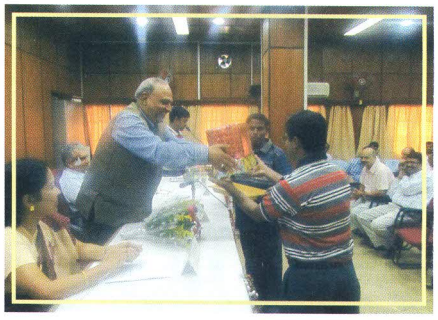

सफल प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान करते हुए माननीय मुख्य अतिथि

राजभाषा अभिमुखीकरण कार्यक्रम में उपस्थित अधिकारी वर्ग

निदेशक महोदय की अध्यक्षता में संपन्न राजभाषा कार्यान्वयन समिति बैठक

गोकुल की गैल, गैल गैल ग्वालिन की,
गोरस कैं काज लाज–बस कै बहाइबो।
कहै 'रतनाकर' रिझोइबो नवेलिनि को,
गाइबो गवाइबो और नाचिबो नचाइबो।।

कीबो स्रमहार मनुहार कै विविध बिधि,
मोहिनी मृदुल मंजु बांसुरी बजाइबो।
ऊधो सुख–संपति–समाज ब्रज मंडल के,
भूले न भूलैं, भूलैं हमकौं भुलाइबो।।

– जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून की राजभाषा रिपोर्ट

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून में दिनांक 12 सितम्बर से 17 सितम्बर 2012 तक हिन्दी सप्ताह 2012 तक हिन्दी सप्ताह समारोह का आयोजन किया गया। सप्ताह के अंतर्गत राजभाषा के प्रति अधिकारियों/ कर्मचारियों में रूचि उत्पन्न करने हेतु हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, हिन्दी निबन्ध लेखन एवं हिन्दी स्वरचित काव्यपाठ प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। दिनांक 17 सितम्बर 2012 को समापन समारोह का आयोजन किया गया जिसमें मुख्य अतिथि डॉ. पी. पी. भोजवैद, निदेशक वन अनुसन्धान संस्थान द्वारा सभी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए गए। साथ ही उन्होंने अपने सम्बोधन में सभी से राजभाषा के प्रति सम्मान की भावना रखते हुए सरकारी कामकाज में राजभाषा हिन्दी का अधिक प्रयोग की अपील की।

मुख्य अतिथि, डॉ. पी. पी. भोजवैद, निदेशक, वन अनुसन्धान संस्थान हिन्दी सप्ताह समारोह के दौरान सम्बोधित करते हुए।

दिनांक 20 से 25 मार्च 2013 तक मंत्रालय के प्रतिनिधियों द्वारा राजभाषा नीति के अनुपालन की स्थिति का निरीक्षण कार्यक्रम :

भारत सरकार, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा दिनांक 20 से 25 मार्च 2013 की अवधि में मंत्रालय के अधीन देहरादून स्थित आठ कार्यालयों में संघ की राजभाषा नीति के अनुपालन की स्थिति का निरीक्षण किया गया। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा निरीक्षण हेतु श्री आर. पी. घिल्डियाल, परामर्शी (राजभाषा) और श्री सरूप सिंह, प्रधान निजी सचिव (राजभाषा) नामित किया गया था।

उक्त सम्पूर्ण निरीक्षण कार्यक्रम का समन्वय कार्य डॉ. पी. पी. भोजवैद, निदेशक, वन अनुसन्धान संस्थान के निर्देशानुसार श्री दीपक मिश्रा, कुलसचिव, वन अनुसन्धान संस्थान को सौंपा गया। अतः कुलसचिव, वन अनुसन्धान संस्थान के आदेशानुसार सुश्री रेशमा दीवान, अनुभाग एवं प्रभारी अधिकारी एवं श्री रमेश सिंह, उच्च श्रेणी लिपिक, हिन्दी अनुभाग द्वारा मंत्रालय से आए प्रतिनिधियों को संस्थान एवं अन्य कार्यालयों के निरीक्षण में पूर्ण सहयोग दिया गया। दिनांक 22 मार्च 2013 उपर्युक्त प्रतिनिधियों द्वारा संस्थान में संघ की राजभाषा नीति के अनुपालन की स्थिति का निरीक्षण किया गया तथा उन्होंने संस्थान में हो रहे अनुपालन की सराहना की।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के निर्णय का अनुपालन

दिनांक 04 जुलाई 2012 को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की भारतीय सर्वेक्षण विभाग, देहरादून में आयोजित बैठक के कार्यवृत्त के अनुसार वन अनुसन्धान संस्थान को नगर स्तर पर निबन्ध प्रतियोगिता आयोजित करने हेतु नामित किया गया था।

तद्नुसार डॉ. पी. पी. भोजवैद, निदेशक, वन अनुसन्धान संस्थान, की स्वीकृति एवं आदेशानुसार संस्थान द्वारा दिनांक 22 नवम्बर 2012 को नगर स्तर पर नराकस के सदस्य कार्यालयों हेतु हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता का सफल आयोजन किया। सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन सुश्री रेशमा दीवान, अनुभाग अधिकारी द्वारा किया गया एवं श्री रमेश सिंह, उच्च श्रेणी लिपिक, हिन्दी अनुभाग ने उनके मार्गदर्शन में निबन्ध प्रतियोगिता के आयोजन में पूर्ण सहयोग दिया। प्रतियोगिता में विभिन्न कार्यालयों से 33 प्रतिभागियों ने भाग लिया। प्रतियोगिता हेतु डॉ. एन. एस. के. हर्ष, वैज्ञानिक एवं डॉ. वी. के. वार्ष्णेय, वैज्ञानिक को निदेशक महोदय की स्वीकृति से निर्णायक नामित किया गया था। उनके निर्णय अनुसार उक्त प्रतियोगिता में श्रीमती अमिता डोभाल, प्र. स्ना. अध्यापिका, केन्द्रीय विद्यालय, व.अ.सं., प्रथम स्थान पर, श्री तापस चक्रवर्ती, अधीक्षक, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क द्वितीय स्थान पर एवं श्री राकेश कुमार सिंह, सहा. अभि. सिवि. तृतीय स्थान पर रहे। प्रतियोगिता के विजेताओं को न.रा.का.स. की आगामी बैठक में पुरस्कृत किया जाएगा।

वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियां

श्री शंकर शर्मा
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

हिन्दी कार्यशाला

संस्थान के वन संवर्धन एवं वन प्रबंधन प्रभाग में सारांश सॉफ्टवेयर का उपयोग विषय पर दिनांक 22 मार्च, 2012 को एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला का संचालन श्री शंकर शर्मा, हिन्दी अनुवादक ने किया। कार्यशाला में प्रभाग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को सारांश सॉफ्टवेयर का इन्स्टालेशन तथा इसके सुविधाओं के बारे में समझाया गया। यह सॉफ्टवेयर भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून से इस केन्द्र को राजभाषा हिन्दी में सुगमता से कार्य करने के लिए प्राप्त हुआ है। राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु यह सॉफ्टवेयर लाभदायी है।

राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु अप्रैल–जून तिमाही में संस्थान के जैव–पूर्वेक्षण एवं स्वदेशी ज्ञान प्रभाग में ''सारांश सॉफ्टवेयर उपयोग'' विषय पर दिनांक 26 जून, 2012 को एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में प्रभाग के कर्मचारियों को सारांश सॉफ्टवेयर का इन्स्टालेशन तथा इसके सुविधाओं के बारे में समझाया गया तथा कर्मचारियों को हिन्दी में टाइपिंग करना सिखाया गया।

संस्थान में दिनांक 11 सितंबर, 2012 को एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया था जिसमें उत्तर–पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान, जोरहाट के हिन्दी अधिकारी श्री अजय कुमार मुख्य वक्ता के रुप में आमंत्रित थें। कार्यशाला

कार्यशाला में उपस्थित प्रतिभागी

कार्यशाला में उपस्थित प्रतिभागी

में श्री अजय कुमार जी ने उपस्थित अधिकारियों/कर्मचारियों के समक्ष हिन्दी की सरलता एवं सुबोधता पर एक व्याख्यान रखा। व्याख्यान में कार्यालयीन पत्राचार के विविध रुपों तथा उनकी व्यावहारिकता पर उन्होंने विस्तृत चर्चा की। उन्होंने हिन्दी के कार्यालयीन प्रयोग में आ रही समस्याओं का भी निवारण किया। कार्यशाला उपरान्त कर्मचारियों के बीच कार्यालयीन हिन्दी ज्ञान विषय पर एक लिखित प्रतियोगिता आयोजित की गई।

संस्थान के झूम खेती प्रभाग में दिनांक 16 नवंबर 2012 को ''सारांश सॉफ्टवेयर का उपयोग'' विषय पर एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में प्रभाग के कर्मचारियों को सारांश सॉफ्टवेयर का इन्स्टालेशन तथा इसके सुविधाओं के बारे में समझाया गया।

संगोष्ठीः दिनांक 30 अक्टूबर, 2012 को रक्षा अनुसन्धान प्रयोगशाला, तेजपुर में आयोजित अखिल भारतीय राजभाषा संगोष्ठी में संस्थान के डॉ. राजीब कुमार बोरा, वैज्ञानिक ई, डॉ. विकास राना, वैज्ञानिक डी, श्री ध्रुबज्योति दास, वैज्ञानिक सी एवं डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, अनुसन्धान अधिकारी ने भाग लिया। यह संगोष्ठी (i) जलवायु परिवर्तन और इसके जीवन पर प्रभाव, (ii) वनोषधियों का महत्व, (iii) जल एवं कीट जनित व्याधियाँ और प्रबंधन, (iv) जैव तकनीकी एवं मानव स्वास्थ्य, (v) आधुनिक जीवनशैली का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव, (vi) स्वास्थ्य व स्वच्छता हेतु अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकें, आदि विषयों पर आयोजित की गई थी। इस संगोष्ठी में

डॉ. राजीब कुमार बोरा, श्री धुबज्योति दास और डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा ने क्रमशः 'अगर–एक घायल पेड़ की कहानी', 'आक्रामक प्रजातियों द्वारा आवास परिवर्तन पर प्रभाव' तथा पूर्वोत्तर भारत के दुर्लभ वन–औषधीय पौधे एवं उनका जन–जीवन में उपयोग' शीर्षकों से अपनी–अपनी प्रस्तुति दी। हिन्दी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दर्शाते हुए संस्थान के वैज्ञानिकों ने अपनी–अपनी प्रस्तुति हिन्दी में ही रखी थी।

हिन्दी सप्ताह एवं दिवस समारोह– 2012 :

प्रत्येक वर्ष की तरह इस वर्ष भी दिनांक 14 सितम्बर को राजभाषा हिन्दी के प्रति अपनी निष्ठा दर्शाते हुए संस्थान में हर्षोल्लास के साथ हिन्दी दिवस समारोह का आयोजन किया गया। इसके पूर्व 7 से 14 सितम्बर तक हिन्दी सप्ताह का आयोजन किया गया था जिसमें संस्थान के कर्मचारियों के लिए निबंध लेखन, मुहावरा एवं कहावत ज्ञान, कार्यालयीन हिन्दी ज्ञान, आशुभाषण, प्रश्नोत्तर, हिन्दी कविता पाठ आदि प्रतियोगिताएं आयोजित की गई थी। एक हिन्दी कार्यशाला का भी आयोजन किया गया था। हिन्दी दिवस के दिन आयोजित सभा में संस्थान के डॉ. राजीव कुमार बोरा, समूह समन्वयक (अनुसन्धान) डॉ. अरुण प्रताप सिंह, वैज्ञानिक–ई के साथ–साथ सभी वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारी तथा शोध कार्यों से जुड़े व्यक्ति उपस्थित थे। सभा की अध्यक्षता डॉ. अरुण प्रताप सिंह, वैज्ञानिक–ई ने किया। सभा के मध्य हिन्दी शिक्षण योजना के अंतर्गत उच्च अंकों से पास कार्मिकों को प्रोत्साहन स्वरूप नकद पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र प्रदान किया गया, साथ ही विभिन्न प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रतिभागियों को पुरस्कृत एवं सम्मानित किया गया। अध्यक्ष महोदय ने अपने व्यक्तव्य में कार्यालय में हिन्दी के प्रति उचित वातावरण एवं जागरूकता लाने के लिए इस तरह की कार्यक्रमों की सराहना की तथा भविष्य में भी ऐसे कार्यक्रमों में सभी की भागीदारी वांछनीय कहा।

रक्षा अनुसन्धान प्रयोगशाला, तेजपुर में आयोजित अखिल भारतीय राजभाषा संगोष्ठी की झलक

बैठक: 25वी नराकास, जोरहाट की बैठक :

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जोरहाट की 25वी बैठक उत्तर–पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान (NEIST) जोरहाट के सभागार में दिनांक 7 दिसम्बर, 2012 के अपराह्न 3 बजे आयोजित किया गया। संस्थान के निदेशक डॉ. पी. जी. राव की अध्यक्षता में आयोजित बैठक में भारत सरकार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, हिन्दी सलाहकार समिति के सदस्य, डॉ. डी.डी. ओझा तथा क्षेत्रीय कार्यान्वयन (पूर्वोत्तर), राजभाषा विभाग के सहायक निदेशक, श्री अशोक कुमार मिश्र आमंत्रित थे। जोरहाट स्थित केन्द्रीय कार्यालय, रक्षा बल के कार्यालय, राष्ट्रीयकृत बैंक आदि के कार्यालय प्रधान अथवा प्रतिनिधि उपस्थित थे। ''फुलाम गामोछा'' द्वारा किया गया। बैठक का शुभारंभ अतिथियों एवं सदस्य कार्यालयों के प्रतिनिधियों के परिचय से किया गया। बैठक में मुख्य अतिथि के रुप में आमंत्रित डॉ. डी. डी. ओझा ने "विज्ञान एवं प्रशासन'' विषय पर एक व्याख्यान रखा। व्याख्यान में डॉ. ओझा जी ने अनुसंधान के कार्यों में हिन्दी भाषा की महत्ता पर प्रकाश डाला और कहा कि साधारण जनता को वैज्ञानिक सुझ–बूझ से समृद्ध करने के लिए विज्ञान की भाषा हिन्दी ही हो सकती है।

डॉ. पी. जी.राव ने अपने अध्यक्षीय भाषण में नराकास के रजत जयंती बैठक में राजभाषा हिन्दी के प्रति अपने उत्तरदायित्व को दर्शाते हुए यह घोषणा की कि उत्तर–पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान, जोरहाट (NEIST, Jorhat) अपनी तरफ से कार्यालय स्तर पर हिन्दी में महत्वपूर्ण कार्य को प्रतिवर्ष श्रेष्ठता के आधार पर नक़द रु. 10,000 (दस हजार) से पुरस्कृत करेगी। सभी सदस्य कार्यालय इसके हक़दार होंगे। उपस्थित सभी सदस्यों ने नीस्ट की तरफ से इस पहल की सराहना की। अंत में धन्यवाद ज्ञापन द्वारा बैठक का समापन हुआ।

हिन्दी दिवस समारोह में पुरस्कार ग्रहण करते हुए प्रतिभागी

राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार में वन उत्पादकता संस्थान द्वारा की गई गतिविधियों पर एक प्रतिवेदन

श्री रामेश्वर दास
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए इस कार्यालय में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक प्रत्येक तिमाही में की जाती है। वर्ष 2012 की अवधि के दौरान इस कार्यालय में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन दिनांक 25 जून 2012, 07 अगस्त 2012, 21 दिसम्बर 2012 एवं 25 मार्च 2013 को वन उत्पादकता संस्थान, लालगुटवा, रांची के सभागार कक्ष में किया गया। इसके अतिरिक्त 11 सितम्बर 2012 को इस कार्यालय में "संगणकों एवं अंतरजाल की उपयोगिता" विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठक की अध्यक्षता श्री रामेश्वर दास, निदेशक, वन उत्पादकता संस्थान, रांची द्वारा की गई। राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्यों सहित कार्यालय के सभी अधिकारी एवं कर्मचारी गण बैठक में उपस्थित थे। उपस्थित अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने कार्यालय में हिन्दी के प्रयोग पर जोर देते हुए हिन्दी की उपयोगिता एवं प्रमुखता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किए एवं विभिन्न प्रभागों में हिन्दी के समग्र प्रयोग की समीक्षा करते हुए कार्यालय में इसकी वर्तमान स्थिति से अध्यक्ष महोदय को अवगत कराया।

डॉ. संजय सिंह, वैज्ञानिक–ई, व.उ.सं., रांची ने विभागीय स्तर पर हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु कार्यालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से मिल रहे सहयोग की सराहना की। उन्होंने उपस्थित सदस्यों को अपनी हिन्दी रचनाएं प्रस्तुत करने का आमंत्रण दिया। उपस्थित अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने विभिन्न रोचक रचानाएं बैठक में प्रस्तुत की। साथ ही परिषद् द्वारा प्रकाशित वार्षिक पत्रिका "तरूचिंतन" के लिए काव्य एवं लेख की रचना पर भी जोर दिया गया।

डॉ. (श्रीमती) मालविका राय, वैज्ञानिक–डी ने प्रस्तुत रचनाओं की प्रशंसा करते हुए संस्थान स्तर पर इस प्रकार की रचनाओं के प्रकाशन की व्यवस्था करने का सुझाव दिया एवं एक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन करने पर जोर दिया ताकि हिन्दी लेखन एवं काव्य रचना की दिशा में और प्रसार हो।

श्रीमती रूबी सुसाना कुजुर, वैज्ञानिक–सी एवं हिन्दी प्रभारी "हिंदी अनुभाग" ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु कार्यालय स्तर पर हो रही गतिविधियों की जानकारी देते हुए यह भी बताया कि हिन्दी के उचित प्रसार हेतु सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों का सहयोग संतोषप्रद रूप से प्राप्त हो रहा है।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष श्री रामेश्वर दास, व.उ.सं., रांची ने बैठक को सम्बोधित करते हुए हिन्दी के उचित प्रचार–प्रसार के लिए विभिन्न कार्यों में हिन्दी के समग्र प्रयोग को अति आवश्यक बताया। उन्होंने बताया कि कार्यालय में अधिकांश प्रपत्र द्विभाषी में उपलब्ध हैं अतः हिन्दी से सम्बन्धित काम–काज में निश्चित रूप से इनका प्रयोग किया जाए। उन्होने "क" क्षेत्र के लिए निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु हिन्दी में काम–काज को बढ़ाने पर बल दिया। अध्यक्ष महोदय ने टिप्पणी, पत्राचार, आदेश, स्वीकृति आदेश, ज्ञापन, अनुसन्धान सम्बंधित पत्र–पत्रिका इत्यादि में हिंदी की उपयोगिता निरंतर बढाने के लिए प्रयास करने की बात कही। इन्होंने त्रैमासिक प्रतिवेदन परिषद एवं नराकास, राँची को नियमित रूप से अविलंब भेजने पर भी जोर दिया। कार्यालय में आयोजित प्रतियोगिता में विजेताओं को पुरस्कृत करते हुए निदेशक ने इस तरह के आयोजन पर जोर दिया ताकि हिंदी का समुचित प्रचार–प्रसार हो।

हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियां

हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला

हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला में दिनांक 14 सितम्बर 2012 को संस्थान के सभागार में "हिन्दी दिवस" मनाया गया। इस उपलक्ष्य में संस्थान के विभिन्न वैज्ञानिकों, अधिकारियों व कर्मचारियों ने भाग लिया। नामित हिन्दी अधिकारी, कु. सीमा जोशी ने निदेशक महोदय, समूह समन्वयक (अनुसन्धान); वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का स्वागत करते हुए "हिन्दी दिवस" की जानकारी दी व निदेशक महोदय से "हिन्दी दिवस" के उपलक्ष्य में हिन्दी की उपयोगिता व रोजमर्रा के कार्यों को अपनाने के लिए सम्बोधन करने हेतु आग्रह किया। तत्पश्चात निदेशक, हि.व.अ.सं. ने सभी को हिन्दी भाषा की उपयोगिता के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की व समय–समय पर जारी दिशानिर्देशों के अनुसार संस्थान का अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में करने हेतु अनुरोध किया।

संस्थान में हिन्दी में किए जा रहे कार्यों की प्रगति के बारे में वार्ता करते हुए उन्होंने भारत सरकार, गृह मंत्रालय द्वारा निर्धारित लक्ष्य जो कि "क" क्षेत्र में 100%, "ख" क्षेत्र में 100% तथा "ग" क्षेत्र में 65% को इस वर्ष में पूरा करने की सभी से अपील की और उन्होंने कहा कि इस दिशा में सभी को ज्यादा से ज्यादा कार्य हिन्दी में करना होगा तभी हम निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। निदेशक महोदय ने श्री सुशील कुमार शिंदे, गृह मंत्री, भारत सरकार, गृह मंत्रालय द्वारा जारी संदेश पढ़कर सुनाया। श्री आर.के. शर्मा, निजी सचिव ने राजभाषा नीति पर विस्तृत जानकारी दी। उन्होंने राजभाषा अधिनियम व नियमों के बारे में भी अवगत करवाया। उन्होंने सभी फाईलों के शीर्षक हिन्दी या द्विभाषीय व रजिस्टरों की सभी प्रविष्टियां हिन्दी में करने के लिए परामर्श दिया।

अन्त में नामित हिन्दी अधिकारी ने "हिन्दी दिवस" के शुभावसर पर अपने–अपने विचार रखने पर सभी का धन्यवाद किया।

"हिन्दी दिवस" पर माननीय गृह मंत्री जी द्वारा जारी संदेश पढ़ते हुए निदेशक हि.व.अ.सं. शिमला

घर में ठंडे चूल्हे पर अगर खाली पतीली है।
बताओ कैसे लिख दूं धूप फाल्गुन की नशीली है।।

भटकती है हमारे गांव में गूंगी भिखारन–सी।
सुबह से फरवरी बीमार पत्नी से भी पीली है।।

बगावत के कमल खिलते हैं दिल के सूखे दरिया में।
मैं जब भी देखता हूं आंख बच्चों की पनीली है।।

सुलगते जिस्म की गर्मी का फिर एहसास हो कैसे।
मोहब्बत की कहानी अब जली माचिस की तीली है।।

– **अदम गोंडवी**

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान में मनाये गये हिन्दी समारोह की रिपोर्ट

श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर राजभाषा के प्रचार–प्रसार के लिये निरन्तर प्रयास करती रही है। कर्मचारियों में हिन्दी के प्रति रुचि बढ़ाने हेतु हिन्दी समाचार पत्र ''राजस्थान पत्रिका'' को पुस्तकालय में उपलब्ध कराया गया। संस्थान की पुस्तिका हिन्दी में तैयार की गई। संस्थान में नियमित रूप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति का आयोजन किया जाता है एवं नराकास, कोयम्बटूर की बैठकों में संस्थान की नियमित भागीदारी रहती है।

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर में "हिन्दी दिवस" तथा दिनांक 20–27 सितम्बर तक "हिन्दी सप्ताह" मनाया गया। इस पखवाडा की शुरुआत विभिन्न प्रतियोगिताएँ जैसे सारांश साफ्टवेयर की सहायता से हिन्दी टंकण प्रतियोगिता, प्रशासनिक शब्दावली प्रतियोगिता, निबन्ध लेखन प्रतियोगिता आदि के आयोजन से हुआ जिसमें सभी अधिकारियों, वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों ने उमंग–उत्साह से भाग लिया। हिन्दी सप्ताह का समापन समारोह 11 अक्टूबर 2012 को मनाया गया। इस समारोह में सभी ने हर्षोल्लास से भाग लिया।

इस कार्यक्रम में मुख्य अथिति के रूप में हिन्दी शिक्षण योजना, कोयम्बटूर से हिन्दी प्रोफेसर श्री हरिगणेश जी को आमंत्रित किया गया। इस कार्यक्रम में सर्वप्रथम डॉ. बी. गुरुदेव सिंह, हिन्दी अध्यक्ष ने सभी का स्वागत किया। फिर डॉ. वि.कु. वा. बाचपई, हिन्दी नोडल अधिकारी ने सभी के समक्ष हिन्दी वार्षिक रिपोर्ट पेश की। उसके बाद समूह समन्वयक

हिन्दी दिवस समारोह

हिन्दी सप्ताह समारोह में श्रोतागण

(अनुसन्धान) द्वारा अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने जीवन में हिन्दी एवं अन्य भाषाओं की महत्वपूर्ण भूमिका पर विस्तार से चर्चा की।

प्रतियोगिताओं में विजयी हुए विजेताओं को मुख्य अतिथि ने पुरस्कार देकर सम्मानित किया और प्रशंसा भरे शब्दों द्वारा प्रोत्साहित भी किया। इसके उपरान्त मुख्य अतिथि ने अपने सम्बोधन में हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डाला और हिन्दी के कार्यान्वयन को और आगे बढ़ाने के लिये सभी को प्रोत्साहित करने के साथ आगे बढ़ने की शुभ कामनाएँ भी दी। अन्त में पूंगोदै कृष्णन, हिन्दी अनुवादक ने इस कार्यक्रम को सफल रीति से सम्पन्न करने के लिए सभी को धन्यवाद दिया।

हिन्दी सप्ताह के दौरान नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति ने वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर को महिलाओं के लिये हिन्दी गायन प्रतियोगिता का आयोजन करने की जिम्मेदारी सौंपी। दिनांक 27 सितम्बर 2012 को वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर में 3.00 बजे हिन्दी गायन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें कोयम्बटूर जिले के सभी सरकारी कार्यालयों से करीब 17 महिला कर्मचारियों ने भाग लिया। इनकी गायन क्षमता को परखने के लिये निर्णायकों के रूप में श्रीमती बीना सुरेश एवं श्रीमती मधुमिता दासगुप्ता को बुलाया गया।

शेष भाग पृष्ठ 13 पर

राजभाषा के प्रयोग तथा वार्षिक कार्यक्रम की प्रगति रिपोर्ट वर्ष 2012-13

श्री धीरेन्द्र कुमार
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

संस्थान द्वारा राजभाषा के प्रचार प्रसार के लिए की जा रही गतिविधियां एवं वार्षिक कार्यक्रम :

हिन्दी पखवाड़े का आयोजन :

राजभाषा विभाग, भारत सरकार द्वारा जारी दिशा निर्देशों की अनुपालन में उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर में दिनांक 03 से 17 सितम्बर 2012 के दौरान "हिन्दी पखवाड़ा" मनाया गया जिसमें हिन्दी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया– हिन्दी प्रश्न मंच प्रतियोगिता, प्रशासनिक हिन्दी भाषा ज्ञान प्रतियोगिता, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली की हिन्दी प्रतियोगिता, हिन्दी टंकण प्रतियोगिता, हिन्दी भाषण प्रतियोगिता, हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता, हिन्दी व्यवहार प्रतियोगिता, हिन्दी में तकनीकी लेखन प्रतियोगिता तथा हिन्दी कविता पाठ प्रतियोगिता।

हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़े का समापन दिनांक 17 सितम्बर 2012 को मुख्य अतिथि के रूप में श्री गोकुल शर्मा, सम्पादक, सलाहकार ग्रुप दैनिक भास्कर एवं वरिष्ठ पत्रकार दैनिक भास्कर को बुलाकर उनकी अध्यक्षता में काव्य पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं अनुसन्धान अध्येताओं ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

राजभाषा विभाग की हिन्दी में कार्य करने हेतु प्रोत्साहन योजना :

संस्थान में राजभाषा विभाग द्वारा हिन्दी में कार्य करने वाले कर्मचारियों के प्रोत्साहन हेतु नकद पुरस्कार योजना भी लागू की गयी है। इस योजना के अन्तर्गत प्रतिवर्ष हिन्दी में किए गए कार्यों के लिए 10 कर्मचारियों को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार एवं 5 सांत्वना पुरस्कार दिये जाते हैं। वर्ष 2011–12 के दौरान संस्थान के कर्मचारियों द्वारा हिन्दी में किये गये कार्यों के मूल्यांकन के आधार पर उन कर्मचारियों को नकद राशि के रूप में राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किये गये।

पृष्ठ 12 का शेष भाग

श्री वि.कु.वा. बाचपई, वैज्ञानिक–सी एवं हिन्दी नोडल अधिकारी ने सभी प्रतिभागियों एवं श्रोताओं का स्वागत कर निर्णायकों से आग्रह किया कि वे इस कार्यक्रम का शुभारंभ करें। पूंगोदै कृष्णन, हिन्दी अनुवादक ने निर्णायकों को पुष्प गुच्छ देकर सम्मानित किया। फिर सभी प्रतिभागियों ने अपना–अपना गायन प्रस्तुत किया। सभी ने बहुत अच्छे एवं मनमोहक गीत गाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया।

इस कार्यक्रम को सफल बनाने में डॉ. एन. कृष्णकुमार, भा.व.से., निदेशक, वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर के कुशल मार्ग दर्शन एवं प्रोत्साहन और डॉ. बी. गुरुदेव सिंह, वैज्ञानिक–जी का आयोजन की योजना और कार्यान्वयन में पूर्ण योगदान हेतु आभार तथा संस्थान की हिन्दी समिति की ओर से सभी को धन्यवाद ज्ञापन के साथ कार्यक्रम का समापन किया गया।

हिन्दी गायन प्रतियोगिता

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर में आयोजित 'हिंदी पखवाड़ा' की रिपोर्ट

श्री कैलाशचन्द गुप्ता
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान (आफरी), जोधपुर में हिंदी दिवस पर हिंदी पखवाड़ा (14–28 सितम्बर 2012) का वैज्ञानिक एवं सामान्य हिंदी प्रश्नमंच प्रतियोगिता से शुभारम्भ हुआ। "हिंदी दिवस" पर संस्थान निदेशक डॉ. टी. एस. राठौड़ ने "अपील" जारी कर आह्वान किया कि सरकारी नौकरी केवल नौकरी नहीं बल्कि राष्ट्र सेवा है तथा जनता से राजभाषा हिंदी के माध्यम से अगर हम संवाद करते हैं तो अपनी सेवा का फल और सुयश दोनों प्राप्त कर सकते हैं। हिंदी पखवाड़ा के दौरान हिंदी अनुवाद (तकनीकी), निबंध (पर्यावरण के संरक्षण में वनों की भूमिका) सामान्य प्रशासनिक ज्ञान, विचार अभिव्यक्ति (परिवर्तन प्रगति का पोषक है), टंकण (सारांश सहित), कामकाजी हिंदी ज्ञान तथा स्वरचित काव्यपाठ प्रतियोगिताएं आयोजित हुई। पखवाड़ा के दौरान हिंदी मे वैज्ञानिक गोष्ठी सह हिंदी कार्यशाला भी आयोजित की गई जिसमें परस्पर चर्चा–परिचर्चा भी हुई।

पखवाड़ा के दौरान दिनांक 27 सितम्बर 2012 को संस्थान की विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक का आयोजन भी हुआ जिसमें राजभाषा प्रगति की समीक्षा की गई। दिनांक 28 सितम्बर 2012 को हिंदी पखवाड़ा के समापन समारोह में स्वरचित काव्यपाठ का आयोजन किया गया। समारोह में बतौर मुख्य अतिथि प्रोफेसर सोहनदान चारण, पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर को आमंत्रित किया गया। समारोह के दौरान संस्थान के हिंदी अधिकारी श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने वर्ष 2011–12 की संस्थान की राजभाषा प्रगति का प्रतिवेदन पढ़ा तथा सरकारी कामकाज में हिंदी को बढ़ावा दिए जाने के आश्य से संस्थान में उठाये जा रहे कदमों का उल्लेख किया तथा बताया कि भाषा वही चलन में रहती है जो लोकप्रिय बनी रहे व समय, काल तथा परिस्थिति अनुसार बदलाव को स्वीकार ले।

श्री मानाराम बालोच, भा.व.से. ने इस अवसर पर कहा कि हिंदी में कार्य करने से व्यक्ति की सृजनशीलता बढ़ती है तथा हिंदी में प्रोत्साहन हेतु नवीन योजनाओं का क्रियान्वयन होना चाहिए। वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. एस.आई. अहमद ने कहा कि हिंदी सरल भाषा है तथा इसे और अधिक बढ़ावा दिया जाना चाहिए। डॉ. उत्तर कुमार तोमर ने भी इस अवसर पर अपने उद्‌गार व्यक्त किए।

संस्थान निदेशक डॉ. टी.एस. राठौड़ ने पखवाड़ा के आयोजन को सफल बताया तथा हिंदी में सरकारी काम को बढ़ावा देने में इस तरह के प्रयासों को सराहा। सभी के साझा प्रयास व सहयोग से पखवाड़ा को अर्थपूर्ण व उपयोगी बनाने हेतु प्रशंसा की तथा आगे भी नवीन कार्यक्रमों को सम्मिलित करने की अपेक्षा की विशेषकर वैज्ञानिक गोष्ठी–सह–कार्यशाला जैसे कार्यक्रमों को अवश्य ही सम्मिलित करते हुए इनमें विषय विशेषज्ञों को जोड़ने तथा उनसे लाभान्वित होने को कहा।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रोफेसर चारण ने अपने संबोधन में कहा कि हिंदी में उत्कृष्ट कार्य संभव है जैसा कि हिंदी सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक भाषा है। आपने बताया कि हिंदी भाषा में लचीलापन है जिससे यह परिवर्तन को स्वीकारती है तथा जनता में लोकप्रिय बनी हुई है। अनुवाद के सम्बंध में आपने कहा कि शब्दशः अनुवाद की प्रवृत्ति हिंदी भाषा को जटिल बना रही है जबकि अनुवाद भाव का होना चाहिए खासकर सूचना व प्रौद्योगिकी के मौजूदा दौर में यह और भी जरूरी हो गया है।

समारोह में वर्ष 2011–12 के हिंदी में किए गए कार्यों हेतु लागू राजभाषा प्रोत्साहन योजना तथा विशिष्ट योजना के राजभाषा पुरस्कार व प्रमाण पत्र तथा हिंदी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार व प्रमाण पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया।

संस्थान के हिंदी अधिकारी ने सभी का आभार जताया।

हिन्दी दिवस पर आयोजित प्रश्न मंच प्रतियोगिता

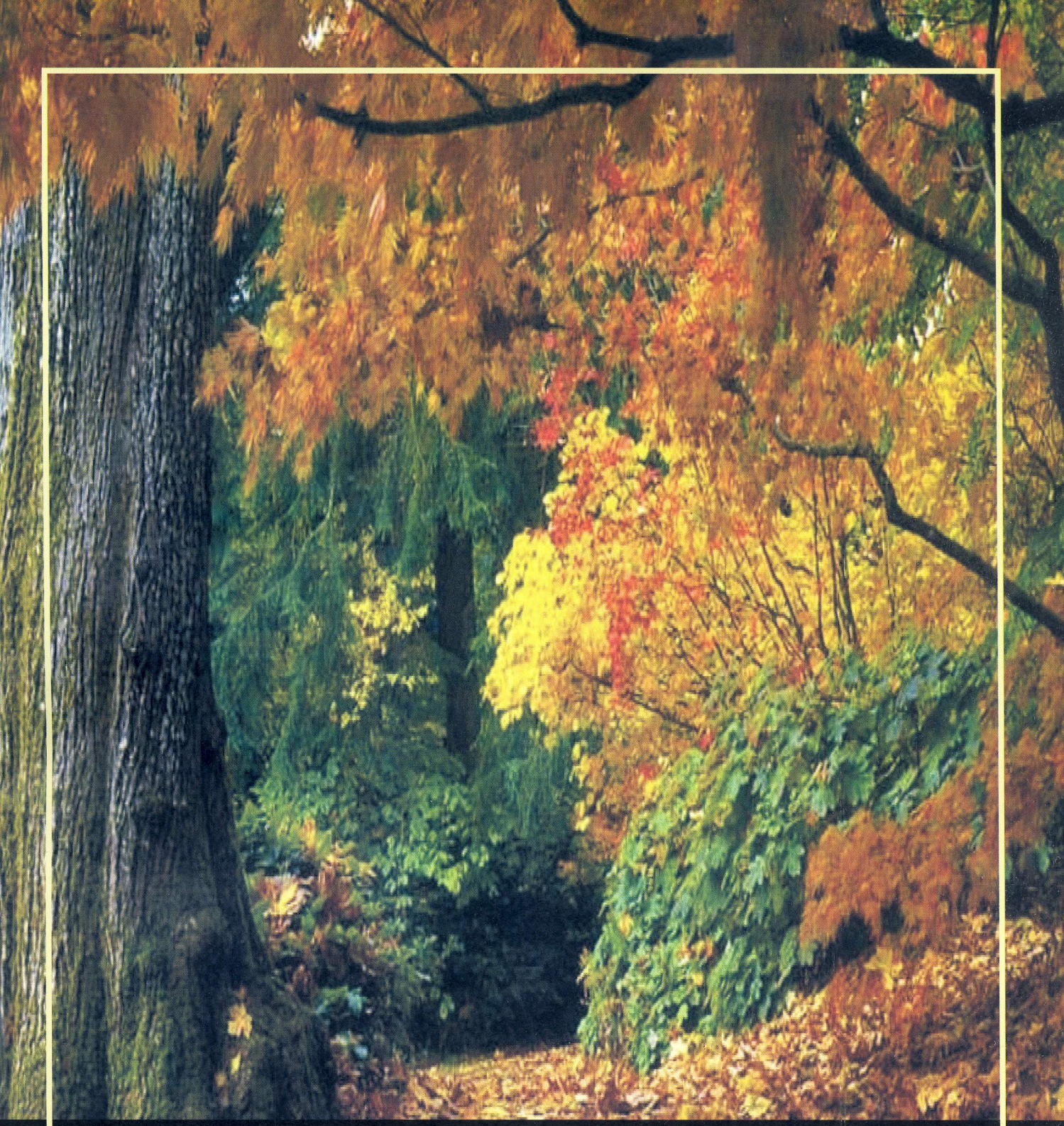

वानिकी

बानिकी

विश्व के वन : दशा व दिशा

श्री अनूप सिंह चौहान
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

मानवीय इतिहास में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है – मानव जनसंख्या वृद्धि व वनों का संकुचन–सम्पूर्ण विश्व के देशों में एक संबंध दिखाता है। हजारों वर्ष के इस विकास क्रम में धरती की जलवायु, सांस्कृतिक गतिविधियां, प्रौद्योगिकी व व्यापार, कम या अधिक, वनोन्मूलन से प्रभावित हुए हैं। इस ऐतिहासिक काल में यह बात अनेक बार सिद्ध हुई कि हमारा सामाजिक व आर्थिक विकास वनोन्मूलन से बुरी तरह प्रभावित हुआ है। नीति निर्धारकों को इस विरोधाभास का सामना करना होगा कि जहां वन अपने उत्पादों व पारिस्थितिकी तंत्र की सेवाओं के लिए आवश्यक है वहीं उन पर सतत यह दबाव भी बना हुआ है कि वह वन भूमि को अन्य उपयोगों के लिए भी उपलब्ध कराएं। मानव जीवन का इतिहास इस बात की कहानी है कि उसने पृथ्वी के विभिन्न वनों व उनसे प्राप्त वस्तुओं का कैसे उपयोग व उपभोग किया। वनों से हमने भोजन व उसे पकाने के लिए ईंधन प्राप्त किया, हमारी इमारतों, परिवहन व संचार के संसाधनों को जुटाने के लिए वह एक मात्र स्त्रोत रहे हैं। फिर वही वन हीन भूमि कृषि व शहर बसाने में प्रयुक्त हुई। यद्यपि वनों के प्रबन्धन के लिए नये कानून बने किंतु यह कार्य अत्यन्त चुनौतीपूर्ण है कि वन उसी निर्बाध गति से अपनी उपज हमें प्रदान करते रहें। मानव सभ्यता इस बात का भी इतिहास है कि कैसे संसाधनों (वनों) की चाह में उसने प्रवास किये और कैसे गंभीर पर्यावर्णीय परिस्थितियों के कारण अनेक समाज समाप्त हुए।

एक पुनरावलोकन

आज के वन लाखों वर्षों में विकसित हुए हैं। इनका विकास गर्म व ठंण्डे मौसमों से हुआ जो तब धरती पर हुआ करते थे। यह हिमयुग लगभग 80 हजार से एक लाख वर्षों की अवधि के होते थे तथा इस बीच 10 से 15 हजार वर्ष के गर्म मौसम भी आते थे। पिछला हिमयुग 10 हजार वर्ष पूर्व ही समाप्त हुआ है और तब धरती पर 6 अरब हैक्टेयर वन थे जो धरती के 45 प्रतिशत पर आच्छादित थे। पिछले 10 हजार वर्षों के बदलते मौसमों, बढ़ते तापमान व वनों में बढ़ती मानवीय गतिविधियों से वन घट कर 4 अरब हैक्टेयर रह गये हैं जो धरती के 31 प्रतिशत भू–भाग को घेरते है (एफ.ए.ओ. 2010)। बढ़ती जनसंख्या व आर्थिक गतिविधियों के कारण सम्पूर्ण धरती पर वनों के स्वरुप में अत्यन्त बदलाव आए हैं और इसकी परिणिति वनोन्मूल व वनों की भूमि के उपयोग में बदलाव के रुप में हुई। वनों का एक बड़ा भू–भाग कृषि–भूमि अथवा बंजर भूमि में परिवर्तित हो गया है। पिछले 5000 वर्षों में यदि कुल भूमि को जोड़ा जाए तो 1.8 अरब हैक्टेयर वनों का ह्रास हुआ है। यह क्षति लगभग 3,60,000 हैक्टेयर प्रतिवर्ष है। यदि मानव जनसंख्या वृद्धि के साथ इस कटान की तुलना की जाए तो यह स्पष्ट रुप से दिखता है कि बढ़ती जनसंख्या के साथ वनों का कटाव भी बढ़ा है और 1950 से पूर्व तो वन कटान की गति और भी तीव्र थी। इस सब का मुख्य कारण था वन उत्पाद व ईंधन के लिए वनों पर बढ़ती हमारी निर्भरता! पिछले 10 वर्षों में औसत रुप से 52 लाख है. वन प्रतिवर्ष की दर से कम हुए हैं।

जनसंख्या वृद्धि व वन कटाव के बीच अन्य सामान्य लक्ष्ण भी देखे गये हैं जैसे – दोनों के बीच सम्बन्ध विश्व व्यापी है तथा दोनों ही आर्थिक विकास के दौर में त्वारित हुए हैं और यदि इसमें कुछ गिरावट अथवा स्थिरता आई भी है तो तब जब सामाजिक उन्नति एक स्तर तक पहुंच गई थी। बीसवीं सदी पूर्वाद्ध तक एशिया के शीतोष्ण वनों तथा यूरोप व अमेरिका में सर्वाधिक वनों का सफाया हुआ। इसके मुख्य कारण थे कृषि भूमि का विस्तार, आर्थिक सम्पन्नता व वनों का अन्य कार्यों जैसे ईंधन व कच्चे माल के रुप में पूर्ण सफाया। यह क्रम बीसवीं सदी के मध्य तक चला तथा फिर अधिकतर शीतोष्ण वनों में यह विप्लव ठहर गया। इसके यहां रुकते ही यह क्रम उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में शुरु हो गया।

वास्तव में वनों के कटान व उनके उपयोग के प्रकार के बीच एक सह–सम्बन्ध है। कृषि समाज की उत्पत्ति के साथ ही हमारी वनों पर निर्भरता बहुत अधिक थी। इस समाज के विकास के साथ ही वनों के उपयोग की प्रकृति में भी भारी बदलाव आया। कृषि भूमि की अत्याधिक मांग व वनों से प्राप्य से कृषि क्षेत्र को आर्थिक प्रगति मिली। इसी दौरान सिंचाई के संसाधनों को भी महत्व मिला। औद्योगीकरण के आने पर वनों के उपयोग में भारी परिवर्तन आया। मुख्यतः उत्पादन के लिए कच्चा माल (लकड़ी, ऊर्जा व खनिज) वनों से ही प्राप्त होते थे। अब वनों की मांग ईंधन अथवा चारे के अतिरिक्त इमारती लकड़ियों अथवा कागज उत्पादन के लिए होने लगी थी। वनों पर कृषि क्षेत्र ही नहीं वरन औद्योगिक क्षेत्र की मांगों की आपूर्ति का दबाव भी था। उत्तर – औद्योगिक अर्थव्यवस्था के आने के बाद फिर से वनों के प्रबन्धन में एक बदलाव आया। अब वन

पारिस्थितिकी व अन्य सेवाओं के कारण केन्द्र में थे। वनों के इस विविध उपयोग के बढ़ने के कारण, जोकि वह कृषि–पूर्व, कृषि, औद्योगिक व उत्तर–औद्योगिक समाजों को प्रदान करता था, अत्यन्त जटिल हो गई है।

क्या वन कटाव अपरिहार्य है ?

यद्यपि वनों का कटना एक सामान्य वैश्विक प्रवृत्ति है, तथापि विश्व के 50 प्रतिशत देशों ने न केवल अपने यहां वनों का कटाव रोका है, अपितु कहीं–कहीं तो उनका विस्तार भी हुआ है। हम कह सकते हैं कि वन काटना आवश्यक नहीं है। अधिक सामाजिक व चुनौतीपूर्ण प्रश्न यह होगा कि क्या वनों की कटाई वांछनीय अथवा सहनीय है? वनों को जान–बूझ कर काटा जा रहा है। वास्तव में यह इस धारणा के तहत हो रहा है कि वन–हीन भूमि का मूल्य वन–युक्त भूमि से अधिक है। शहरों के विस्तार, लकड़ियों हेतु, वन–उपज, ईंधन व निर्यात के कारण वन कटते जा रहे हैं इस उद्देश्य के तहत कि (यद्यपि ऐसा होते दीखता नहीं !) मानव जीवन के स्तर को ऊँचा किया जाए।

एफ.ए.ओ. के एफ.आर.ए.–2010 का आंकलन है कि आज विश्व का कुल वन क्षेत्र 4.33 करोड़ है. है जोकि उसके ही पहले 1948 के आकलन के लगभग बराबर है। किन्तु यह दो रिपोर्ट तुलनीय नहीं हैं। विश्व स्तर पर सन् 2000 तक वनों की कोई एकमान्य परिभाषा नहीं थी। इस कारण इस तुलना में कुछ संशोधन की आवश्यकता है। यदि वन कटाव की दर को आकलन का आधार बनाया जाए तो यह आकलन 1948 में वन क्षेत्र को 4.40 अरब है. बताता है। यह रिपोर्ट यह भी बताती है कि विश्व वन कटाव की दर 2005–10 के बीच 0.14 प्रतिशत, 1900–2000 के बीच 0.20 प्रतिशत तथा 2000–2005 के बीच 0.12 प्रतिशत रही। यदि विश्व के वन 52 लाख है. प्रतिवर्ष (2005–10 के बीच की औसत दर) की दर से कटते रहे तो 775 वर्ष बाद विश्व वन–रहित हो जाएगा। यह अवधि हमारे लिए काफी अधिक है कि हम इस परिदृश्य को रोकने की कोई सार्थक पहल करें।

इस रिपोर्ट ने एक और अध्ययन की ओर ध्यान खींचा है। 2000–10 के बीच विश्व के वनों में 13.0 करोड़ है. वनों की कमी हुई (यह 2000 के वन क्षेत्र का 3.2 प्रतिशत है) किंतु फिर 7.8 करोड़ है. वनों का विस्तार भी हुआ जो मुख्यतः वनीकरण व वनों के उगने से हुआ। यह कुल वन क्षेत्र पिछले वर्षों का 1.3 प्रतिशत था।

किन्तु इस प्रकार के वनोन्मूलन व वनावरण के अन्तर को सतही रुप से समझना उचित नहीं है क्योंकि एक स्थापित (नैसर्गिक) व नये वन में बहुत अन्तर होता है। यह "वनीकरण" एक भ्रम व दुविधा पैदा करता है। विशेषज्ञों का मानना है कि नये वन नैसर्गिक वनों का स्थान नहीं ले सकते क्योंकि जैवविविधता इन वनों का महत्वपूर्ण अंग है। रोपित वन अपने उद्देश्यों व गठन से प्राकृतिक वनों से भिन्न होते हैं। विश्व में रोपित वनों का हिस्सा बहुत ही सीमित हैं। यह भी एक तथ्य है कि नैसर्गिक वन इस कटान से बहुत कम प्रभावित है, केवल अर्द्ध–प्राकृतिक अथवा क्षय होते वन ही वन कटाव से अधिक प्रभावित हैं। यह जानकारी महत्वपूर्ण है कि सर्वाधिक वन कटाव उष्णकटिबंधी वनों में हो रहा है जबकि उत्तर व शीतोष्ण वनों का विस्तार हो रहा है। वन कटाव के कारण न केवल देशों के बीच वरन देश के भीतर भी भिन्न–भिन्न है। यह एक स्थानीय परिघटना है। विश्व के सभी देशों में, सभी क्षेत्रों में वन कटाव की दर एक सी नहीं है।

अब से 100–200 वर्ष पूर्व अमेरिकी महाद्वीप वन कटाव से प्रभावित थे, किन्तु आज उष्णकटिबन्धीय देश इस घटना से ग्रस्त हैं। यह मान लिया गया है कि वन कटाव केवल वन क्षेत्र की समस्या नहीं हैं। इसके कारण हमारे आर्थिक पहलूओं में निहित हैं अतः इसका समाधान भी वहीं से होगा। संयुक्त राज्य अमेरिक के वनों के इतिहास के अध्ययन से साबित होता है कि वन कटाव पर रोक समष्टि अर्थशास्त्र (Macro Economic) में निहित है। सन 1700–1900 के बीच अमेरिका का आधा वन क्षेत्र कृषि भूमि में परिवर्तित हो गया है। जबकि पिछले 100 वर्षों में आर्थिक उन्नति व जनसंख्या वृद्धि के बावजूद वहां वनों का प्रसार हुआ है। इसका उत्तर है कृषि क्षेत्र में उन्नति–उर्वरकों का उपयोग, व्यवस्थित चरान व अन्य तकनीकी उन्नति जैसे प्रशीतन, कम क्षेत्र में अधिक कृषि उत्पादन व ठीक से भंडारण करना। इस कारण वनों के सीमांत भागों पर खेती समाप्त हो गयी और वहां या तो प्राकृतिक वन उग गये अथवा वहां वन स्थापित कर दिये गये। इसके दूसरे छोर पर विश्व के 9 ऐसे देश है जहां वन कटने की दर 2 प्रतिशत से भी अधिक है और वहां इस शताब्दी के अन्त तक वन पूर्ण रुप से खत्म हो जाएंगे। इन देशों अथवा क्षेत्रों का वन क्षेत्र इतना कम है कि थोड़ा भी बदलाव प्रतिशत में बहुत परिलक्षित होता है। 20 देशों में यह दर 1 प्रतिशत से कुछ अधिक व 30 देशों में 0.5 प्रतिशत से अधिक है। यह सब देश, यदि इन्होने इस क्षरण को न रोका अथवा कम न किया, एक गंभीर पारिस्थितिक व आर्थिक समस्या से ग्रस्त होंगे।

लातिनी देशों में कुल 8.8 करोड़ है. वन (कुल क्षेत्र का 9 प्रतिशत) पिछले 20 वर्षों में घटा है (1990–2010, एफ.ए.ओ.)। यहां के वन मुख्यतः कृषि भूमि व चारागाहों में बदल गये हैं। इतिहास में पहली बार यहां का वन क्षेत्र 50 प्रतिशत से कम हुआ है। यदि यह दर जारी रहती है तो लातिनी देश अगले 220 वर्षों में वनहीन हो जाएंगे। अफ्रीकी महाद्वीप में अभी 23 प्रतिशत वन क्षेत्र है और 7.5 करोड़ है. भूमि (कुल क्षेत्र का 10 प्रतिशत) पिछले 20 वर्षों में अन्य भू–उपयोग में बदल गई है। अफ्रीका में अतिरिक्त समस्या यह है कि वहां वनों से प्राप्त काष्ठ का 80 प्रतिशत भाग ईंधन के रुप में प्रयुक्त होता है। अध्ययन बताते है कि असफल योजनाएं यहां वन कटान का

मुख्य कारण है न कि बाजार की ताकतें। अधिकतर सरकारें प्रत्यक्ष–परोक्ष रुप से कृषि को आर्थिक प्रोत्साहन देती है, जबकि वनों से प्राप्त उपज को नकार देती है। विशेषज्ञों का मानना है कि जिन क्षेत्रों का पारिस्थितिक महत्व कम है व कृषि अतिमहत्वपूर्ण है, वहां वन कटाव न्यायोचित है। अधिकतर प्रगतिशील देश वन कटान के क्षेत्र में विकसित देशों का अनुकरण ही कर रहे है।

एक हाल ही के सांख्यकीय विश्लेषण ने बताया कि 1972–94 के दौरान 59 देशों में वन कटान मुख्यतः राजनैतिक असफलता के कारण था।

यूं तो वन कटाव के अनेक कारण है किन्तु यह प्रवृत्ति दो प्रमुख कारणों से है :

- वृक्षों को उगने में अनेक वर्ष लगते है। दुनिया के बहुत से देशों में उर्वरक भूमि की कमी है। इस कारण वन उगाने की अपेक्षा यह देश इस भूमि को कृषि के लिए उपयोग में लाना चाहते हैं क्योकि कृषि से अधिक धन अर्जित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भूमि खेती, चरागाहों व बागीचों के लिए भी चाहिए। यह बात सर्वमान्य है कि नैतिक दृष्टि से भी – मानव स्वभाविक रुप से आज की पीढ़ी की जरुरतों को अधिक महत्व देता है न कि आने वाली संततियों की आवश्यकताओं को।
- बहुत से वनों से पाये जाने वाले लाभ परंपरागत बाजार में कोई मूल्य नहीं रखते। इनके लिए कोई बाजार भी नहीं है जहां उन्हें बेचा–खरीदा जा सके। कार्बन संचय करने अथवा वनों द्वारा स्वच्छ जल उपलब्ध प्रदान करने का बाजार मूल्य नहीं है। इसके अतिरिक्त वन कटाव से होने वाली क्षति जैसे ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन अथवा मृदा–क्षरण के मूल्य देने वाला कोई भी उपक्रम बाजार में मौजूद नही है। इस प्रकार की यह सकारात्मक–नकारात्मक अति–परिस्थितियां वनों के विषय में निर्णय हेतु महत्वपूर्ण होती है किन्तु उन्हें शातिराना तरीके से दुरूह बना दिया जाता है तथा सम्बद्ध लोग इन मूल्यों को मानते भी नहीं है।

कुछ शुभ संकेत

इस परिदृश्य के बावजूद विश्व स्तर पर सुखद बात यह है कि 80 देशों ने वन कटाव पर रोक ही नही लगाई वरन कहीं–कहीं वन क्षेत्रों में विस्तार भी हुआ है। विश्व के सर्वाधिक वनों वाले देशों रुस, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन व भारत उन देशों में शामिल है जहां वन–क्षेत्रों में विस्तार हुआ है। यूरोप के 27 देशों ने वनों में वृद्धि दर्ज की है, जिनमें स्पेन, ईटली, नार्वे, बुल्गारिया व फ्रांस शामिल हैं। एशिया में भारत व चीन के अतिरिक्त वियतनाम, तुर्की व फिलिस्तीन भी इस दल में शामिल हैं। लातिन अमेरिकी देशों में उरुग्वे, चिली, क्यूबा व कोस्टरिका में वनों का फैलाव हुआ है तथा ऐसे ही देश जो अफ्रीका में शामिल है – ट्यूनिशिया, मोरक्को व रवांडा।

प्रस्तुत लेख "State of the World's Forests-2012" जानकारी एवं आंकड़ों पर आधारित है।

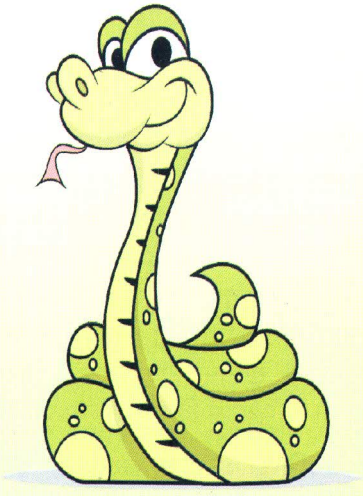

सांप!
तुम सभ्य हुए तो नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया!
एक बात पूछूं–
उत्तर दोगे?
तब कैसे सीखा डसना
विष कहां पाया?

–अज्ञेय

वानिकी में भू-विज्ञान तथा मृदा का महत्व

डॉ. अवतार कृष्ण रैना एवं डॉ. मुकेश कुमार गुप्ता
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

मृदा एक अनमोल प्राकृतिक संसाधन है जिसे किसी भी प्रकार से कृत्रिम रूप से नहीं बनाया जा सकता। पेड़ के बढ़ने के लिए 6 कारक आवश्यक है जैसे प्रकाश, नमी, उष्मा, पोषक तत्व, वायु एवं पौधे को खड़े रहने के लिए आधार। मृदा, प्रकाश को छोड़ कर अन्य पांचों कारकों को पौधे को प्रदान करती है अतः मृदा पेड़ों को उगाने का एक माध्यम है जिसके बिना हम वृक्षों को नहीं उगा सकते। सत्रह आवश्यक पोषक तत्वों में से 14 तत्व जैसे नाईट्रोजन, फास्फोरस, पोटाशियम, कैल्शियम, मैग्निशियम, सल्फर, लौह, वोरान, मोलिविडीनम, मैग्निज, कापर, जिंक, कोंबाल्ट एवं क्लोराड़ जो वृक्षों के बढ़ने में बहुत आवश्यक है, सिर्फ मृदा पौधे को प्रदान करती है। प्रकृति 25 मिलिमीटर की मृदा परत बनाने में लगभग 300 वर्ष का समय लेती है जबकि हमारे देश में हर वर्ष लगभग 5334 मिलियन टन मृदा, वर्षा के पानी के साथ बह जाती है। जिसमें आवश्यक तत्व होते है, जो मृदा को उपजाऊ बनाते हैं।

पेड़ लगाने से मृदा उपजाऊ होती ही है साथ में ऐसी भूमि जो किसी समस्या से ग्रस्त है उस भूमि में भी पेड़ लगाने से पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि होती है। पेड़ हर वर्ष अपनी सूखी पत्तियां, टहनियां आदि गिराते है जो सूक्ष्म जीवियों की सहायता से सड़कर मृदा की उर्वरकता को बढ़ाती है। पेड़ अपनी पत्तियां एवं टहनियां को जमीन पर गिरा एक बिछाली का काम करते हैं। बिछाली वर्षा के जल को बहने से रोकता है और वर्षा के जल का मृदा में रिसाव बढ़ाता है। पेड़ों के कटने से मृदा की सतह पर पत्तियों एवं टहनियों की बिछाली कम हो रही है जिसके कारण वर्षा का जल वन क्षेत्र से बह कर नाले, नदी से होते हुए समुद्र में चला जा रहा है। मृदा में वर्षा के जल का रिसाव न होने के कारण वन क्षेत्र में जल स्तर घटता जा रहा है और जमीन शुष्क हो रही है। मृदा सतह पर बिछाली न होने के कारण मृदा की सतह से वर्षा का बहता जल अपने साथ उपजाऊ मृदा का कटाव कर रहा है जो मृदा तत्वों को न केवल बहा कर मृदा की उर्वरता घटा रहा है बल्कि नदी, बांध की गहराई घटा कर देश में बाढ़ के प्रकोप और बंजर भूमि का क्षेत्र बढ़ा रहा है और मृदा की उत्पादन क्षमता घट रही है।

अधिक रसायनिक खादों के प्रयोग से हमारा भू–जल भी प्रदूषित होना प्रारम्भ हो गया है। नाइट्रोजन की खाद के अधिक प्रयोग से भू–जल में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ रही है। गोबर की खाद से मृदा की रसायनिक उर्वरक शक्ति तो बढ़ती ही है इसके साथ मृदा की भौतिक स्थिति में भी सुधार होता है तथा सबसे अधिक सकारात्मक प्रभाव मृदा की कार्बन संचय शक्ति पर होता है। आज गोबर की खाद के साथ साथ वर्मीकम्पोस्ट खाद भी बाजार में उपलब्ध है जो पोषक तत्वों से भरपूर है।

पुराने समय में मृदा अपने खजाने से पौधों को तत्व उपलब्ध कराती थी। उपज बढ़ने के साथ, मृदा तत्वों का उपयोग बढ़ा जिससे मृदा में तत्वों की कमी आती चली गई और पोषक तत्वों के लिए मृदा में उर्वरक का प्रयोग बढ़ता चला गया। एक आँकड़ों के अनुसार 1970 में पौधों को 48 प्रतिशत आवश्यक तत्व मृदा, 13 प्रतिशत खाद और 39 प्रतिशत उर्वरक (रसायनिक खादों) से मिलते थे जिसका अनुपात 1990 में क्रमशः 30 प्रतिशत, 10 प्रतिशत तथा 60 प्रतिशत हो गया। आने वाले 2020 तक तत्वों के उपयोग के लिए मृदा से 21 प्रतिशत, कार्बनिक खाद से 9 प्रतिशत तथा उर्वरक से 70 प्रतिशत का अनुमान लगाया गया है। उर्वरक के अधिक प्रयोग से आर्थिक नुकसान के साथ ही पर्यावरण पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। डाले गये उर्वरक का अगर 50 प्रतिशत भाग पौधों द्वारा उपयोग किया जाता है, शेष 50 प्रतिशत भाग वर्षा जल के साथ रिस या बह कर, मृदा और नदी के जल को लगातार दूषित कर रहा है। इसके अतिरिक्त शहर के कारखानों से निकला दूषित कूड़ा नदी में गिरने से और इस दूषित जल को सिंचाई के रूप में प्रयोग करने से मृदा और ही दूषित होती जा रही है।

वनों में पेड़ों के उगने तथा बढ़ने की लम्बी अवधि को देखते मृदा तथा मूल पदार्थ में विद्यमान खनिजों की मात्रा एवं प्रकृति का वानिकी क्षेत्र के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान है। क्षेत्रीय आधार पर खनिज संरचना के निर्धारण को मृदा अनुसन्धान, वर्गीकरण, मानचित्रण तथा उसके उर्वरकता अन्वेषण का एक महत्वपूर्ण भाग माना जाता है। यद्यपि मृदा में बहुसंख्यक तथा विभिन्न प्रकार के खनिज पाए जाते हैं, परन्तु मोटे तौर पर खनिजों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

1. **मुख्य खनिज** : जैसे क्वार्टज, फैल्सपार, माइका, पाइरोग्जीन, एम्फीबोल इत्यादि।
2. **गौण खनिज** : जैसे कैल्साइट, जिप्सम, लौहयुक्त खनिज तथा मृतिका खनिज इत्यादि।

कृषि उपज की अपेक्षा वनों में पाये जाने वाले पेड़ों के उगने तथा बढ़ने का समय बहुत लम्बा होता है इसलिए पेड़ों के उगने तथा बढ़ने के समय पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों की नियमित आपूर्ति के लिए उपजाऊ मृदा का होना आवश्यक है ताकि मात्रा एवं गुणवत्ता में स्थायी तौर पर अधिक उत्पादन कायम रह सकें। अब यह तथ्य पूर्णतया स्थापित हो गया है कि वनों में उगने वाले पेड़ों को पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा में आवश्यकता होती है तथा ये पोषक तत्व अपने उगने के स्थान से लेते हैं। इस प्रकार पेड़ों के उगने पर तथा उनके काटने पर भी उस स्थान पर पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। पेड़ों को काटने भूमि के अन्दर के रिसाव पानी के बहाव तथा अन्य तरीकों से जो पोषक तत्वों का ह्रास होता है उसकी क्षतिपूर्ति, मूल द्रव्य के अपक्षयण द्वारा मृदा में लगातार मिलने वाले पोषक तत्वों से होती है। आर्द्र उष्ण–कटिबन्धी क्षेत्रों में सदाबहार वनों की अत्यधिक बढ़ोत्तरी भी वहां पर होने वाले गहन अपक्षयण द्वारा पोषक तत्वों की लगातार आपूर्ति के कारण ही होती है।

मृतिका खनिज जैसे कि केओलीनाइट, मोण्टीमारिल्लोनाइट तथा हाइडसमाइका समान रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि मृदा के अधिकांश भौतिक तथा रासायनिक गुण–धर्म इन खनिजों से प्रभावित होते रहते है अपनी कलिल प्रकृति के कारण मृतिका खनिज पोषक तत्वों के स्थिरीकरण, धनायन विनिमय क्षमता, उत्फूलन आकुचन तथा संधट्यता आदि गुणों को निर्धारित करते हैं तथा मृदा की उत्पादकता तथा पेड़ पौधों के उगने के लिए उत्तरदायी है। मृदा में मृतिका खनिजों की जांच से जलवायु तथा मूलद्रव्य से संबंधित अपक्षयण स्तर का निर्धारण करने में सहायता मिलती है।

मुख्यतया पेड़ पौधों के लिए पोषक तत्व खनिजों के अपक्षयण (weathering) से प्राप्त होते हैं। इसलिए पोषक तत्वों का भण्डारण एवं उपलब्धता अधिकतर मृदा की खनिजीकीय बनावट तथा मूल द्रव्य पर निर्भर है। कुछ महत्वपूर्ण पोषक तत्व निम्न खनिजों से प्राप्त होते हैं :

पोटेशियम (K)	:	आर्थोक्लेज, फैल्सपार, मस्कोवाइट, बायोटाइट तथा ग्लूकोनाइट से,
फासफोरस (P)	:	एपेटाइट से,
कैल्सियम (Ca)	:	प्लेजियाकलेज, फेल्सपार, हॉर्नब्लेण्ठ, आगाइट, कैल्साइट, डोलोमाइट तथा जिप्सम से,
मैग्निशियम (Mg)	:	बायोटाइट, क्लोराइट, आगाइट तथा डोलोमाइट से,
लौह (Fe)	:	बायोटाइट, हीमेटाइट, लिमोनाइट, मैग्नेटाइट तथा सेडेराइट से,
सल्फर (S)	:	जिप्सम से,

कुछ खनिज जैसे फेल्सपार तथा चट्टाने जैसे कि बसाल्ट व डायाबेस इत्यादि को पाउडर रूप में धीमे कार्यवाहक उर्वरक के रूप में वन क्षेत्रों के लिए प्रयोग में लाया जाता है। कुछ विशिष्ट खनिजों जैसे कि जिप्सम एवं डोलोमाइट का प्रयोग भूमि सुधारक के रूप में भी किया जाता है। मृदा का रंग भी उसमें पाये जाने वाले खनिजों द्वारा प्रभावित होता है।

पोषक तत्व हर मिट्टी में मौजूद होते है परन्तु उनकी उपलब्धता आसान नहीं होती। पौधा हर तत्व को एक विशेष प्रकार में ही ले सकता है। इसके लिए उस तत्व का घुलनशील होना आवश्यक है। सूक्ष्मजीवी इस प्रकार के तत्व उपलब्ध कराने मे सहायक होते है। जिस मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं उसका रंग भूरा/काला होता है।

नाइट्रोजन : ये पौधे की हरियाली एवं बढ़वार में सहायक होती है। ये पौधे के स्वयं खाना बनाने की क्रिया में सहायता करती है। यह पानी में घुलनशील होती है तथा शीघ्र नीचे चली जाती है। इसके अधिक प्रयोग से भू–जल प्रदूषित हो जाता है। इसकी कमी से पौधे पीले पड़ने लगते है तथा बढ़वार कम हो जाती है।

फास्फोरस : इसकी गति मिट्टी में बहुत कम होती है। यह पौधों की जड़ों को उचित रुप से विकसित होने में सहायक होता है। इसकी कमी से जड़ों का विकास रुक जाता है जिससे पौधा ठीक प्रकार से बढ़ नहीं पाता। यह फल एवं बीज की गुणवत्ता को बढ़ाता है। पौधे की शुरुआत में इसकी कमी नहीं होनी चाहिए।

पोटेशियम : यह पौधों में होने वाली जैविक क्रियाओं मे सहायक होता है। फल एवं बीज के गुणों को प्रभावित करता है। पौधों के रोगों से लड़ने की ताकत बढ़ाता है। इसकी कमी से पौधों की पत्तियों के सिरे प्रभावित होने लगते है।

पोषक तत्व हर मिट्टी में न तो कम होने चाहिए और न अधिक होने चाहिए। पोषक तत्वों की अधिकता भी उत्पादकता को कम कर देती है। वह मिट्टी जो पौधों को सही मात्रा में, सही प्रकार के एवं सही अनुपात में पोषक तत्व प्रदान करती उसे उपजाऊ मिट्टी कहते है। इसमें सभी आवश्यक पोषक तत्व होते है। इसका पी.एच. मान 6.5 से 7.5 के बीच में होता है।

निम्नलिखित कार्यों से मिट्टी की उर्वरता बनी रह सकती है :

1. मिट्टी में पानी की सही मात्रा।
2. खरपतवार को हटाना।
3. मिट्टी खेत से न बहे, इसके समुचित उपाय।
4. गोबर की खाद, जैविक खादों एवं विभिन्न प्रकार की कलियों जैसे नीम, सरसों, सुरजमुखी, महुआ का प्रयोग करना चाहिए।

शेष भाग पृष्ठ 23 पर

चंदन पेड़ के लिये नये परपोषी पौधे के रूप में नींबू

श्री डी. राजसुगुना शेखर एवं श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

चन्दन का पेड़ अपनी लकड़ी एवं तेल के लिये प्रसिद्ध है। इसे इत्र, दवाएँ आदि बनाने में उपयोग किया जाता है। पहले यह पेड़ केवल जंगल में ही था। हाल ही में यह पेड़ पालतू होने के कारण चंदन पेड़ की खेती के लिये सरकार की नियम एवं नियमावलियों में संशोधन किया जा रहा है। चन्दन एक परजीवी पेड़ है जो मुख्य रूप से पोषक तत्वों जैसे कैल्शियम एवं आयरन (राव 1933), नाइट्रोजन एवं फोस्फेट (अयन्गार 1960), पोटेशियम, फोस्फेट और मेग्निशियम (रंगस्वामी 1986) आदि को पाने के लिये परपोषी पौधों पर निर्भर करता है। चन्दन के परजीवी प्रकृति के कारण इस प्रजाति की खेती करना कठिन है। परपोषी पौधों के साथ चन्दन लकड़ी की सीमा बदलती रहती है।

राव (1904) ने "चन्दन की वृद्धि एवं विकास पर परपोषी पौधों का प्रभाव" पर उल्लेखित किया है और संघ के द्वारा 70 संभव परपोषी प्रजातियों की एक सूची भी प्रदान किया है। राव (1988) ने नर्सरी एवं क्षेत्र दोनों स्थिति में चन्दन की वृद्धि करने वाले 30 परपोषी प्रजातियों का अध्ययन किया है। उनका कहना है कि विभिन्न परपोषी के साथ परजीविता की मात्रा में बहुत अंतर होता है जिसे चन्दन विकास की प्रकृति, बायोमास की मात्रा एवं हस्टोरिया की संख्या के आधार पर पेड़ की गुणवत्ता का विभाजन किया जा सकता है। जड़ प्रणाली के विकास के लिये अच्छी तरह से विकसित प्ररोह आनुपातिक है और यह हस्टोरिया के उच्च उत्पादन के साथ मिल जाता है। अच्छे परपोषी पौधों के होने पर चन्दन की पत्तियों में खनिज की मात्रा, क्लोरोफिल अधिक एवं संश्लेषक गतिविधि भी अच्छी होती है। उत्कृष्ट परपोषी प्रजातियाँ निम्लिखित है :

कैज्वरीना इक्विसेटिफोलिया (Casuarina equisetifolia), मीलिया डुबिया (Melia dubia), अकेशियाडू निलोटिका (Acacia nilotica), राइटिया टिन्क्टोरिया (Wrightia tinctoria), पोन्गामिया पिनाटा (Pongamia pinnata), टर्मिनालिया अर्जुना (Terminalia arjuna), टि. अलटा (T. alata), डलबेर्जिया सिसू (Dalbergia sissoo), केशिया सियामिया (Cassia siamea) और बौहिनिया बिलोबा (Bauhinia biloba).

सुरेन्द्रन (1998) ने भी यह प्रेक्षण किया कि विभिन्न परपोषी पौधों के होने से चन्दन पेड़ की वृद्धि में बहुत बदलाव

तमिलनाडु के त्रिचरापल्ली जिले के एक खेती स्थल में ढाई वर्ष में परपोषी पौधों के रूप में नींबू के साथ चंदन पेड़ की अच्छी वृद्धि

होता है। *अल्बीजिया समेन* (*Albizzia samen*) को चन्दन के लिये सबसे अच्छा परपोषी प्रजातियों के रूप में पाया गया है। इसी तरह नागवेणी और विजयलक्ष्मी ने भी विभिन्न परपोषी के साथ चन्दन की वृद्धि की तुलना की और यह निष्कर्ष निकाला कि परपोषी पौधों का सम्बन्ध होने से चन्दन की वृद्धि में अत्यधिक बदलाव होता है। उनका कहना है कि *पोन्गामिया पिन्नाटा* (*Pongamia pinnata*) और *कैज्वरीना इक्विसिटिफोलिया* (*Casuarina Equisetifoli*) चन्दन पौधों का समर्थन करती है एवं उपज में वृद्धि करती है जहाँ अन्य कुछ परपोषी पौधे जैसे *अर्टोकार्पस इन्टिग्रिफोलिया* (*Artocarpus integrifolia*), *अकेशिया अरिकुलिफार्मिस* (*Acacia auriculiformis*) और *स्वीटिनिया महोगनी* (*Swietenia mahogany*) आदि चन्दन के विकास में बाधा

करती है। पूरे साहित्य खोज में यह संकेत है कि नींबू पेड़ को चन्दन के लिये परपोषी पेड़ के रूप में बढ़ाने का प्रयास भी नहीं किया गया है। लेकिन तमिलनाडु के त्रिचरापल्ली जिला के मूवनूर में रहने वाले श्री वी. रघुनाथन, नवीन एवं प्रगतिशील किसान के कृषि क्षेत्र में किये गये अवलोकन से पता चला कि नींबू पेड़ को परपोषी पौधे के रूप में प्रयोग करने से चन्दन की वृद्धि होती है।

इस क्षेत्र में चन्दन के पेड़ ने आश्चर्यजनक वृद्धि प्राप्त की है। ढ़ाई वर्ष की अवधि में 3.5 मी. ऊँचाई और 25.0 सेमी परिधि तक वृद्धि हुई है। यह भी देखा गया कि चन्दन की वृद्धि परपोषी पौधों के लिये आनुपातिक था और जिन क्षेत्रों में किसानों के द्वारा परपोषी पौधों को हटा दिया गया (परपोषी पौधों की आवश्यकता न जानने वाले) उन क्षेत्रों में चन्दन के पेड़ कमजोर एवं सूख गये थे इससे यह सिद्ध होता है कि परपोषी पौधों की उपस्थिति चंदन के अस्तित्व एवं विकास का समर्थन करते है और परपोषी पौधे (नींबू पेड़) भी अच्छी तरह से बढ़ते है एवं चंदन से प्रभावित नहीं होते। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसान ने अपने खुद के ज्ञान एवं नवीन दृष्टिकोण से चन्दन के लिये परपोषी पौधे के रूप में नींबू को लगाया जिससे नींबू एवं चन्दन की खेती करने का एक नया तरीका भी सामने आया है।

पृष्ठ 21 का शेष भाग

5. जमीन का समुचित उपयोग।
6. जंगलों में पड़ी हुई पत्तियां और टहनियां नहीं उठानी चाहिए।
7. खाली पड़ी भूमि पर पेड़ लगाने चाहिए।
8. नाइट्रोजन की खाद का प्रयोग एक ही बार में नहीं करना चाहिए।

वृक्ष मृदा को कार्बनिक द्रव्य और छाया प्रदान करते हैं जो पोषक तत्वों के चक्र को तेज कर जैविक सुधार लाते हैं। कार्बनिक द्रव्य मृदा में मृदा–संरचना, छिद्रलता, जल शोषक शक्ति, पोषक तत्वों की उपलब्धता, जैविक क्रियायें आदि में सुधार लाता है और मृदा क्रियाओं में अनुकूल अन्तर लाने में भी सहायता करता है। पेड़ों की गहरी जड़ें, मृदा की निचली सतहों में पानी और हवा के लिए रास्ता बनाती है। मृदा के भौतिक और रासायनिक गुणों के प्रतिकूल होने के कारण सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या और क्रियाशीलता भी नगण्य हो जाती है। इस प्रकार के दबाव सहने के कारण पौधे, कीटों एवं बीमारियों के प्रति अधिक ग्रहणशील हो जाते है। कृषि वानिकी एक ऐसा प्रयोग है जिससे मृदा में तत्वों का अधिक संचय होता है तथा कार्बन की मात्रा भी बढ़ती है। वातावरण में कार्बन की मात्रा को सन्तुलित करने के लिए कृषि वानिकी एक बहुत उत्तम माध्यम है। विभिन्न अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि कृषि वानिकी मृदा में कार्बन का संचय, सिर्फ कृषि की भूमि के कार्बन संचय से 50–80 प्रतिशत तक अधिक होता है।

इस प्रकार के अध्ययन के अत्यधिक महत्व को देखते हुए इस बात की परम आवश्यकता है कि देश भर के वनों की मृदा का विभिन्न परिस्थितियों, जलवायु तथा भू–गर्भीय स्थिति के आधार पर अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाये ताकि प्रत्येक वन क्षेत्र का बेहतर मूल्यांकन हो सके।

तन–मन–प्रान, मिटे सबके गुमान
एक जलते मकान के समान हुआ आदमी

छिन गये बान, गिरी हाथ से कमान
एक टूटती पान का बयान हुआ आदमी

भोर में थकान, फिर शोर में थकान
पोर–पोर में थकान पे थकान हुआ आदमी

दिन की उठान में था, उड़ता विमान
हर शाम किसी चोट का निशान हुआ आदमी।

– कुँअर बेचैन

सूखे की स्थिति में वनों का महत्व

डॉ. ओम कुमार एवं श्री सुधीर कुमार
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

सूखे से हमारा तात्पर्य भूमि से जल की मात्रा का कम होना अथवा उसकी अनुपस्थित होना है। वन जैव मण्डल में जलीय क्रम को संचालित करते हैं। वन क्षेत्रों में कमी होना ही सूखे का सबसे बड़ा कारण है। सूखे से सबसे अधिक हमारी ग्रामीण जनसंख्या प्रभावित होती है। क्योंकि पीने के लिए जल एवं पशुओं के लिए चारा ही सूखे में सबसे बड़ी समस्या होती है। फसलों की या तो बुआई ही नहीं होती या खड़ी फसलें सूख जाती है। सूखे की स्थिति में फसल उत्पादन भूमि में मौजूद नमी पर निर्भर होता है। भूमि की नमी मुख्य रुप से वर्षा पर निर्भर है। वर्षा कुछ हद तक वनों पर निर्भर करती है। वन भूमि में नमी को बनाये रखने में सहायक होते है जिससे सूखे की स्थिति पैदा ही नहीं होती और यदि सूखे की स्थिति पैदा भी हो गयी तब भी पेड़ पौधे हर प्रकार हमारी सहायता करते है।

सूखे के कारण

सूखे के निम्नलिखित कारण है :

1. वाष्पीकरण
2. जल का भूमिस्तर में चले जाना
3. पानी का सतह से बहकर नदियों में चले जाना

वाष्पीकरण :

वाष्पीकरण द्वारा सर्वाधिक जल का ह्रास होता है। सतह जिस पर कोई वनस्पति न हो तथा जल के उपयोग की उचित व्यवस्था न हो उन स्थानों से वाष्पीकरण द्वारा जल की मात्रा वायुमण्डल में चली जाती है। वाष्पीकरण भी निम्नलिखित कारणों पर निर्भर है।

1. तापमान, 2. वायुवेग, 3. वायुमण्डल दबाव, 4. जल के रसायनिक गुण, तथा 5. सतह की स्थिति। उपर्युक्त कारण पर यदि हम प्रकाश डालें तो हम पायेंगे की इसके पीछे मुख्य कारण वनस्पति की अनुपस्थित होना है। यदि सतह पर पर्याप्त वनस्पति होती तो उस स्थान का तापमान भी कम होता, वायुवेग कम होता, वायुमण्डल दबाव समुचित होता, पानी के गुण उचित होते तथा सतह भी ढ़की हुई होती। ऐसी स्थिति में वाष्पीकरण भी न्यूनतम होता तथा भूमि शुष्क होने से बच जाती। छायादार वृक्ष सूर्य के ताप को जमीन पर पड़ने से रोक कर वातावरण के तापमान में 2 से 3 डिग्री फार्नाहाइट तक कमी करते पाये गये हैं। दूसरे कुछ उष्णकटिबन्धीय जाति के पौधे गर्मियों के समय में पर्ण रहित रहते हैं जबकि भूमि में पानी की अत्यन्त कमी रहती है। इनके पूर्ण रहित होने के कारण भूमि से जल का वाष्पीकरण कम होता है।

जल का भूमिस्तर से चले जाना :

कुछ स्थानों पर जहां जल का समुचित उपयोग नहीं होता है, वनस्पति अनुपस्थित रहती है तथा मृदा की संरचना मुख्यतः बलुई (सैन्डी) होती है। उन स्थानों से जल भूमि के स्तर को पार करता हुआ जल स्तर में चला जाता है और भूमि सूख जाती है।

यदि भूमि पर पर्याप्त वन होते तो पानी का उपयोग उसके द्वारा कर लिया जाता और भूमि को वनस्पति से जल पुनः प्राप्त हो जाता ऐसे स्थानों पर यदि वन होते तो वहां की मृदा की संरचना भी जैविक गुणों वाली होती है।

पानी का सतह से बहकर नदियों में चले जाना :

जिन स्थानों में समुचित भूमि संरक्षण प्रबन्ध नहीं होता या वनस्पति का विकास नहीं हुआ होता है उन सतहों से वर्षा का पानी सतह की मिट्टी सहित नदियों में चला जाता है तथा भूमि को सूखा व गुणहीन बना देता है। यदि पर्याप्त वन हो तो इस स्थिति का सामना न करना पड़े।

अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सूखे की रोकथाम में वनों का मुख्य योगदान है। भविष्य में सूखे की स्थिति पैदा न हो इसके लिए वनीकरण की विशेष आवश्यकता है।

अब हम दूसरे पहलू पर आते हैं कि सूखा पड़ने पर वन हमारी किस प्रकार सहायता करते है। एक ओर जहां वन पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में विशेष भूमिका निभाते है। हमें प्राणदायक आक्सीजन देते हैं और कार्बनडाइआक्साइड वायुमण्डल में लेते हैं वही दूसरी ओर सूखा पड़ने पर ग्रामीण जनता के लिए पीने के पानी की, जलाने के लिए लकड़ी का, पशुओं के लिए चारे की तथा मनुष्य के लिए भोजन की जटिल समस्या होती है। वनों से मानव जाति सूखे की भयावह स्थिति से बच सकती है। चेरापूंजी एक समय घने उप उष्णकटिबन्धीय वनों से आच्छादित था और वहां पर दुनियां

की सबसे अधिक वर्षा होती थी परन्तु अब स्थिति बदलती जा रही है। यदि हिमालय पर्वत न होता तो आज हमारा भारत भी अरब देशों की तरह सूखा रेगिस्तान होता।

सूखे की स्थिति में वन हमें भोजन व चारा देते हैं जिसकी उस समय सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

वनों से भोजन

वनों से कई ऐसी वनस्पतियां पायी जाती हैं जिनके विभिन्न भागों को भोजन के रुप में प्रयोग किया जाता है। सूखे के समय इन खाद्य पदार्थों का महत्व और भी बढ़ जाता है। क्यों कि सूखे की स्थिति में सभी फसल नष्ट हो जाती है और खाद्य पदार्थों की कमी पड़ जाती है। बहुत से पेड़ पौधों का कोई न कोई भाग जैसे पत्तियों, जड़, तना, फल, फूल आदि भोजन के रुप में प्रयोग किया जाता है जैसे :

1. ***एरटोकारपस हिटरोफिलस (कटहल)*** : इस वृक्ष के फल व बीजों की सब्जी बनाई जाती है और पूर्वी व पश्चिमी घाटों में पाया जाता है।
2. ***बहुनिया बेरीगाटा (साधारण नाम कचनार)*** : यह एक छोटा झाड़ीदार वृक्ष होता है जिसकी कलियां एवं फल की सब्जी बनती है। सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है।
3. ***कोर्डिया डाइकोटोमा*** : जिसका साधारण नाम लसोडा है यह भी एक छोटा वृक्ष है तथा सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। इस के फल अचार आदि के रुप में खाये जाते हैं।
4. ***सेमल*** : इसके फल सब्जी बनाने के काम आते हैं।
5. ***सल्वाडोरा पर्सीका*** : छोटा पीलू शुष्क रेगिस्तानी क्षेत्रों में पाया जाता है और इसके फल खाये जाते हैं।
6. ***हिप्पोफी रैहमूनाइउस (घुरचुक)*** : यह झाड़ी वृक्ष है तथा उत्तर प्रदेश हिमालय में पाया जाता है। फल खाये व जैली बनाने के काम आते है।
7. ***अलाटा (खमालू)*** : यह सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है तथा इसके कन्द का सब्जी के रुप में उपयोग होता है।
8. ***डिलोनिया इन्डिका (चलता)*** : यह मध्यम आकार का वृक्ष होता है तथा हिमालय की तलहटी में पाया जाता है। इसके फलों से जेम–जैली बनती है।
9. ***कैलेमस रोतांग (बेंत)*** : यह मध्य प्रदेश व दक्षिण भारत में पाया जाता है तथा इसके मुलायम तने सब्जी के रुप में खाये जाते है।
10. ***बहुनिया रेसीमोसा (गुरियाल)*** : यह छोटा झाड़ीदार वृक्ष है तथा सम्पूर्ण भारत में पाया जाता है। इसके पुष्प कलियाँ एवं फल सब्जी के रुप में खाये जाते है।
11. ***एन्टीडेस्मा एक्युमिनाटम (कालू विलौनी)*** : यह वृक्ष असम, बिहार व बंगाल में पाया जाता है। इसके फल खाये जाते हैं।
12. ***कैन्थीयम पारवीफ्लोरम*** : यह झाड़ीदार छोटा वृक्ष होता है। इसकी पत्तियाँ एवं फल खाये जाते हैं।
13. ***सीरोपेजिया बल्बोसा (खप्पर झाडू)*** : यह पंजाब में पाया जाता है तथा इसकी मांसल पत्तियां खायी जाती है।
14. ***कैपैरिया डेसीडुआ (करीर)*** : यह काटेदार झाड़ीनुमा छोटा वृक्ष है और पंजाब में पाया जाता है। इसके कच्चे एवं पके फल खाये जाते है।
15. ***बेल*** : यह पर्वतीय एवं मैदानी दोनों जगह पाया जाता है इसका फल गर्मियों में पकता है। इससे शर्बत बनाया जाता है और इससे पेट के अल्सर दूर करने में मदद मिलती है।
16. ***बेर*** : यह भी पर्वतीय एवं मैदानी दोनों जगहों पर पाया जाने वाला विशिष्ट फल है। यह नदियों के किनारे, रेतीले भाग पर पाया जाता है। यह अक्टूबर से जनवरी तक पकने वाला फल है। बेर खाने के काम आता है।
17. ***आँवला*** : आँवला विटामीन सी का प्रमुख स्रोत है। यह मैदानी तथा पर्वतीय दोनों जगह पाया जाता है इसका उपयोग अचार, मुरब्बा, सब्जी बनाने, तथा बालों को चमकदार बनाने में होता है। आँवला दाँतों, आँखों तथा अतिसार रोग के लिए विशेष रुप से लाभदायक है।

वनों से चारा

सूखा पड़ने पर जहां तक हो पाता है, सरकार खाद्य पदार्थों का प्रबन्ध करने की कोशिश करती है। परन्तु हमारे पशु सूखे से सबसे अधिक प्रभावित होते है क्योंकि सूखा पड़ने पर इनके लिए चारे की जटिल समस्या उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में हमारे साथी होते हैं हमारे वन जिनके ऊपर हमारे पशुओं का जीवन निर्भर रहता है। कई इस प्रकार की जातियां पायी जाती है जो सूखे की स्थिति में हमें चारा देती हैं। इसमें से कुछ मुख्य रुप से इस प्रकार है। 1. इजरायली बबूल, खेजडी, सिरिस, नीम, पीपल, छोकड, बेर रोहिडा आदि। ये बहुत ही उपयोगी पेड़ है जिससे सूखा पड़ने पर भी चारा मिलता रहता है। क्योंकि ये ऐसी स्थिति में भी हरे रहते हैं। कुछ खास प्रकार की घास भी ऐसी है जो हमें चारा देती है। जैसे अजना घास (चखी) जनेवा घास, ब्लयू पैनिक घास, सेवन, सैकरम घास इत्यादि। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सूखे की स्थिति में वनों का विशेष महत्व है। वन हमें जीवन रक्षक आक्सीजन प्रदान करने के साथ ही साथ जैव मण्डल में जलीय क्रम को संचालित करते है। हमें चारा, भोजन, लकड़ी हरी खाद, रेशे, वसा शहद आदि देकर मानव की महत्वपूर्ण दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, और पर्यावरण संतुलन बनाये रखने में भी विशेष भूमिका निभाते हैं।

बहुऔद्योगिक तरु : सेमल

डॉ. ममता पुरोहित
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

सेमल बाम्बेकेसी कुल का वृहदाकार पर्णपाती वृक्ष है। इसका वानस्पतिक नाम *बाम्बेक्स सीबा* है। संस्कृत में इसे शल्मली, अंग्रेजी में सिल्क काटन ट्री तथा स्थानीय भाषा में सेमल, सेमर, सावरी, शिकुल या सीमल कहते हैं। सेमल के वृक्ष 40 मीटर ऊँचे तथा 6 मीटर तक व्यास के होते हैं। वृक्षों की अधिक ऊँचाई के कारण ही मधुमक्खियाँ सेमल के वृक्षों पर अपने छत्ते बनाकर निर्भीकता पूर्वक अपना जीवन चक्र पूरा करती हैं। तने तथा शाखाओं पर शंकु आकार के कांटे पाये जाते हैं। पत्तियाँ संयुक्त प्रकार की होती हैं, जिनमें 3 से 7 तक पर्णक होते हैं। पर्णवृन्त पत्तियों से लम्बा होता है। शाखायें शिखर पर चारों तरफ फैलकर विरला छत्र बनाती हैं। पुष्प शाखाओं के सिरे पर गुच्छों में पाये जाते हैं। बसंत ऋतु (माह फरवरी–मार्च) के आगमन पर वृक्ष पत्रविहीन होकर चटक लाल रंग के फूलों से लद जाता है। फूल लगभग 8 से. मी. लम्बाई के होते हैं तथा मीठे, लसलसे मकरंद से भरे होने के कारण मधुमक्खियों, तितलियों, भौरों, चिड़ियों जैसे – फ्लावर पेकर, छोटा बसंत, छोटा शकर खोरा आदि का प्रिय भोजन होते हैं। फल (कैप्सूल) पाँच कपाटीय, काष्ठीय तथा सफेद रेशमी रेशों से भरे होते हैं। फल माह अप्रैल–मई में पक जाते हैं। बीज गोलाकार तथा काले या कत्थाई रंग के होते हैं।

वास स्थान : सेमल अत्यधिक प्रकाशप्रिय वृक्ष है। यह रेतीली एल्यूवियल मृदा में अच्छी तरह वृद्धि करता है। दोमट और दलदली भूमि से इसकी बढ़वार रुक जाती है। यह समुद्र तल से 200 मीटर की ऊँचाई से 1200 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। तापमान और वर्षा की दृष्टि से सेमल का वितरण व्यापक है परन्तु नम उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में इसकी वृद्धि सर्वोत्तम होती है। यह 0° से. (या इससे भी नीचे) से 45° से. तापमान तथा 780 मि.मी. से 4570 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है।

वितरण : सेमल के वृक्ष भारत, पाकिस्तान, म्यनमार, श्रीलंका, अफ़गानिस्तान तथा चीन आदि देशों में पाये जाते हैं। भारत में यह शुष्क क्षेत्रों को छोड़कर प्रायः सभी क्षेत्रों के मैदानी तथा पहाड़ी भागों के मिश्रित पर्णपाती वनों में पाया जाता है।

वृक्षारोपण : बहुऔद्योगिक प्रजाति होने के कारण वानिकी कार्यक्रमों में इसे सड़कों के किनारे, खेतों की मेढ़ों पर तथा सार्वजनिक बाग–बगीचों में बहुतायत से लगाया जा रहा है।

सेमल

उत्तरांचल के रुद्रपुर, रामनगर तथा ऊधमसिंह नगर की सड़कों के किनारे लगे सेमल वृक्षों की छटा देखते ही बनती है। माँग को देखते हुए निजि भूमि पर भी बड़े पैमाने पर सेमल लगाया जा रहा है।

वृक्षारोपण हेतु पौध तैयार करना :

1. **प्राकृतिक पुनरुत्पादन** :

सेमल के बीज वायु द्वारा विकरित होकर शीशम, खैर आदि वृक्षों के साथ उगते हैं। अग्नि, चराई व अत्यधिक खरपतवार से यदि सुरक्षा की जाये तो सेमल के बहुत से पौधे अपने आपको भूमि में स्थापित कर लेते हैं। प्राकृतिक रूप से

यह कॉपिस द्वारा भी पुनरुत्पादित होता है। यह देखा गया है कि यदि कोई पौधा किसी कारणवश टूट जाता है तो कॉपिस द्वारा उसकी वृद्धि बिना टूटे पौधे के बराबर या उससे अधिक भी हो जाती है। उत्तरप्रदेश में इसे रूटशकर द्वारा पुनरुत्पादित करने में सफलता मिली है।

2. रोपणी में पौध तैयार करना :

(i) **बीज एकत्रित करना** : मध्य मार्च से मध्य मई के बीच सेमल के फल एकत्रित करके तार की जाली के नीचे धूप में तब तक सुखाते हैं जब तक फल चटक न जाये। फलों को बोरे में भरकर कूटने से, बीज कपास से अलग हो जाते हैं। एक किलो बीज में बीजों की संख्या 21000 से 39000 तक, अंकुरण 15 प्रतिशत से 75 प्रतिशत तक तथा पौध उत्तरजीविता 5 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक देखी गई है। अच्छी तरह से सील किये गये टिन के डिब्बों में रखे बीजों की अंकुरण क्षमता एक वर्ष बाद धीरे–धीरे कम होने लगती है तथा दो वर्ष के पश्चात बीज पूर्णतः मृत हो जाते हैं। बुआई पूर्व बीजों को उपचार की आवश्यकता नहीं है।

(ii) **बीज बुआई** : माह मार्च के प्रथम सप्ताह में मृदा मिश्रण (मिट्टी : खाद : रेत = 1:1:1) से भरी 20 × 40 से.मी. माप की पॉलीथीन थैलियों में 2 से 3 से.मी. की गहराई पर बीजों की बुआई करते हैं। बुआई पश्चात 15 से 20 दिनों में बीजों का अंकुरण पूरा हो जाता है। नवोदभिदों की जड़ें जमीन में प्रवेश न करे इसके लिए पॉलीथीन थैलियों को पॉलीथीन सीट पर जमा देते हैं। माह जुलाई तक 50 से 60 से.मी. लम्बाई के पौधे वृक्षारोपण के लिए तैयार हो जाते हैं। सेमल में यह देखा गया है कि बार–बार जड़ तन्त्र टूटने पर भी पौधे कॉपिस द्वारा पुनः स्थापित हो जाते हैं।

3. वर्धी प्रजनन द्वारा:

बीज के अलावा वृक्ष के अन्य भागों जैसे जड़, शाखाओं, कलिकाओं आदि से पौध तैयार करने की प्रक्रिया को वर्धी प्रजनन कहते हैं। इस विधी से पौध तैयार करने के लिए जनवरी के अन्तिम सप्ताह में किसी भी स्वस्थ्य वृक्ष से जिसकी आयु लगभग 10 से 12 वर्ष हो आधार से 2 फुट ऊँचाई पर काटकर ऊपरी भाग को अलग कर देते हैं तथा ठूंठ के चारों तरफ लगभग 1 मी. व्यास का थाला बनाकर आवश्यकतानुसार गोबर खाद तथा एन.पी.के. (500 ग्राम) का मिश्रण डालकर थाले को पानी से भर देते हैं। थाले में दोबारा पानी आवश्यकतानुसार डालते हैं। माह फरवरी के अंतिम सप्ताह से लेकर मार्च के द्वितीय सप्ताह तक ठूंठ से 15 से 20 से.मी. ऊँचाई की अनेक शाखायें (कॉपिस सूट) विकसित हो जाती हैं। अब इन कॉपिस सूट को प्रातः काल, आधार से तेज धारदार हथियार द्वारा काटकर पानी से भरी बाल्टी में रखते जाते हैं। धुंधकक्ष में लगाने से पहले इन कॉपिस सूटस को पानी की बाल्टी से निकालकर आधार भाग को रूटेक्स पाऊडर (सूखा या घोल बनाकर) से उपचारित कर रेत से भरी 100×75×30 से.मी. माप की गेल्वेनाइज्ड ट्रे में 10–10 से. मी. की दूरी पर लगाते जाते हैं। धुंध कक्ष की आद्रता 70 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तथा तापमान 25° से 30° से. तक रखते हैं। मिस्टिंग सिस्टम से आवश्यकतानुसार सिंचाई करते हैं। इस तरह से लगाई हुई शाखाओं (कॉपिस सूट) में 25 से 30 दिनों के अन्दर जड़ें निकल आती हैं। इस विधि से 30 से 35 प्रतिशत पौधे प्राप्त हो जाते हैं जो गुणों में मातृ पौधे के समान ही होते हैं।

सावधानियाँ : ठूंठ से शाखायें (कॉपिस सूट) लेते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

1. कॉपिस सूट की लम्बाई 9 से 12 से. मी. एवं गोलाई 0.5 से 1.0 से. मी. तक होना चाहिए।
2. कॉपिस सूट फफूंद, कीड़ों, आदि से ग्रसित नहीं होना चाहिए।
3. कॉपिस सूट हमेशा प्रातः काल के समय ही काटना चाहिए जिससे पोषक तत्वों की हानि न हो।
4. कॉपिस सूट काटकर कटे भाग को तुरन्त पानी से भरी बाल्टी में डुबो देना चाहिए जिससे वायु प्रवेश न कर सके।
5. कॉपिस सूट को रुटेक्स पावडर से उपचारित करने से पहले सतह पर पाये जाने वाले जीवाणुओं आदि को नष्ट करने के लिए इन्हें मरक्यूरिक क्लोराइड के 0.5 प्रतिशत के घोल में 15 मि. मी. तक डुबोकर साफ पानी से अच्छी तरह धो लेना चाहिए।
6. उपचारित कॉपिस सूट को रेत में लगाने से पहले कॉपिस में लगी पत्तियों को आधा–आधा काट देना चाहिए जिससे वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाये।
7. ठूंठ से कॉपिस सूट काटने के बाद दो से तीन घंटो के अंदर कॉपिस सूट धुंध कक्ष में लग जाना चाहिए।

पौध स्थानान्तरण : धुंध कक्ष में कॉपिस सूट से तैयार किये गये पौधों को अप्रैल माह में मृदा मिश्रण (मिट्टी : रेत : खाद = 1:1:1) से भरी 15×30 से.मी. माप की पॉलीथीन थैलियों में स्थानान्तरित कर छायादार स्थान में पॉलीथीन सीट पर जमाकर रख देते हैं तथा वृक्षारोपण होने तक इनमें आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहते हैं।

पौध रोपण : बीज या वर्धी प्रजनन से तैयार किये गये पौधों को लगाने से पहले चयनित स्थल में माह मई–जून में 60×60×60 से.मी. माप के गढढे खुदवा लेने चाहिए जिससे सूर्य की तेज किरणें मिट्टी को भुर–भुरी एवं कीटाणु रहित कर दें। सघन वृक्षारोपण के लिए गढढे से गढढे की दूरी 5 मी. तथा खेतों की मेढ़, सड़कों के किनारे आदि पर लगाने के लिए गढढे से गढढे की दूरी 7 मी. रखना चाहिए। जुलाई के प्रथम सप्ताह में बीजों से तैयार किये गये पौधे या धुंध कक्ष में

यह कॉपिस द्वारा भी पुनरुत्पादित होता है। यह देखा गया है कि यदि कोई पौधा किसी कारणवश टूट जाता है तो कॉपिस द्वारा उसकी वृद्धि बिना टूटे पौधे के बराबर या उससे अधिक भी हो जाती है। उत्तरप्रदेश में इसे रूटशकर द्वारा पुनरुत्पादित करने में सफलता मिली है।

2. रोपणी में पौध तैयार करना :

(i) **बीज एकत्रित करना** : मध्य मार्च से मध्य मई के बीच सेमल के फल एकत्रित करके तार की जाली के नीचे धूप में तब तक सुखाते हैं जब तक फल चटक न जाये। फलों को बोरे में भरकर कूटने से, बीज कपास से अलग हो जाते हैं। एक किलो बीज में बीजों की संख्या 21000 से 39000 तक, अंकुरण 15 प्रतिशत से 75 प्रतिशत तक तथा पौध उत्तरजीविता 5 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक देखी गई है। अच्छी तरह से सील किये गये टिन के डिब्बों में रखे बीजों की अंकुरण क्षमता एक वर्ष बाद धीरे–धीरे कम होने लगती है तथा दो वर्ष के पश्चात बीज पूर्णतः मृत हो जाते हैं। बुआई पूर्व बीजों को उपचार की आवश्यकता नहीं है।

(ii) **बीज बुआई** : माह मार्च के प्रथम सप्ताह में मृदा मिश्रण (मिट्टी : खाद : रेत = 1:1:1) से भरी 20 × 40 से.मी. माप की पॉलीथीन थैलियों में 2 से 3 से.मी. की गहराई पर बीजों की बुआई करते हैं। बुआई पश्चात 15 से 20 दिनों में बीजों का अंकुरण पूरा हो जाता है। नवोदभिदों की जड़ें जमीन में प्रवेश न करे इसके लिए पॉलीथीन थैलियों को पॉलीथीन सीट पर जमा देते हैं। माह जुलाई तक 50 से 60 से.मी. लम्बाई के पौधे वृक्षारोपण के लिए तैयार हो जाते हैं। सेमल में यह देखा गया है कि बार–बार जड़ तन्त्र टूटने पर भी पौधे कॉपिस द्वारा पुनः स्थापित हो जाते हैं।

3. वर्धी प्रजनन द्वारा:

बीज के अलावा वृक्ष के अन्य भागों जैसे जड़, शाखाओं, कलिकाओं आदि से पौध तैयार करने की प्रक्रिया को वर्धी प्रजनन कहते हैं। इस विधी से पौध तैयार करने के लिए जनवरी के अन्तिम सप्ताह में किसी भी स्वस्थ्य वृक्ष से जिसकी आयु लगभग 10 से 12 वर्ष हो आधार से 2 फुट ऊँचाई पर काटकर ऊपरी भाग को अलग कर देते हैं तथा ठूंठ के चारों तरफ लगभग 1 मी. व्यास का थाला बनाकर आवश्यकतानुसार गोबर खाद तथा एन.पी.के. (500 ग्राम) का मिश्रण डालकर थाले को पानी से भर देते हैं। थाले में दोबारा पानी आवश्यकतानुसार डालते हैं। माह फरवरी के अंतिम सप्ताह से लेकर मार्च के द्वितीय सप्ताह तक ठूंठ से 15 से 20 से.मी. ऊँचाई की अनेक शाखायें (कॉपिस सूट) विकसित हो जाती हैं। अब इन कॉपिस सूट को प्रातः काल, आधार से तेज धारदार हथियार द्वारा काटकर पानी से भरी बाल्टी में रखते जाते हैं। धुंधकक्ष में लगाने से पहले इन कॉपिस सूटस को पानी की बाल्टी से निकालकर आधार भाग को रूटेक्स पाऊडर (सूखा या घोल बनाकर) से उपचारित कर रेत से भरी 100×75×30 से.मी. माप की गेल्वेनाइज्ड ट्रे में 10–10 से. मी. की दूरी पर लगाते जाते हैं। धुंध कक्ष की आद्रता 70 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तथा तापमान 25° से 30° से. तक रखते हैं। मिस्टिंग सिस्टम से आवश्यकतानुसार सिंचाई करते हैं। इस तरह से लगाई हुई शाखाओं (कॉपिस सूट) में 25 से 30 दिनों के अन्दर जड़ें निकल आती हैं। इस विधि से 30 से 35 प्रतिशत पौधे प्राप्त हो जाते हैं जो गुणों में मातृ पौधे के समान ही होते हैं।

सावधानियाँ : ठूंठ से शाखायें (कॉपिस सूट) लेते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

1. कॉपिस सूट की लम्बाई 9 से 12 से. मी. एवं गोलाई 0.5 से 1.0 से. मी. तक होना चाहिए।
2. कॉपिस सूट फफूंद, कीड़ों, आदि से ग्रसित नहीं होना चाहिए।
3. कॉपिस सूट हमेशा प्रातः काल के समय ही काटना चाहिए जिससे पोषक तत्वों की हानि न हो।
4. कॉपिस सूट काटकर कटे भाग को तुरन्त पानी से भरी बाल्टी में डुबो देना चाहिए जिससे वायु प्रवेश न कर सके।
5. कॉपिस सूट को रुटेक्स पावडर से उपचारित करने से पहले सतह पर पाये जाने वाले जीवाणुओं आदि को नष्ट करने के लिए इन्हें मरक्यूरिक क्लोराइड के 0.5 प्रतिशत के घोल में 15 मि. मी. तक डुबोकर साफ पानी से अच्छी तरह धो लेना चाहिए।
6. उपचारित कॉपिस सूट को रेत में लगाने से पहले कॉपिस में लगी पत्तियों को आधा–आधा काट देना चाहिए जिससे वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाये।
7. ठूंठ से कॉपिस सूट काटने के बाद दो से तीन घंटो के अंदर कॉपिस सूट धुंध कक्ष में लग जाना चाहिए।

पौध स्थानान्तरण : धुंध कक्ष में कॉपिस सूट से तैयार किये गये पौधों को अप्रैल माह में मृदा मिश्रण (मिट्टी : रेत : खाद = 1:1:1) से भरी 15×30 से.मी. माप की पॉलीथीन थैलियों में स्थानान्तरित कर छायादार स्थान में पॉलीथीन सीट पर जमाकर रख देते हैं तथा वृक्षारोपण होने तक इनमें आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहते हैं।

पौध रोपण : बीज या वर्धी प्रजनन से तैयार किये गये पौधों को लगाने से पहले चयनित स्थल में माह मई–जून में 60×60×60 से.मी. माप के गढढे खुदवा लेने चाहिए जिससे सूर्य की तेज किरणें मिट्टी को भुर–भुरी एवं कीटाणु रहित कर दें। सघन वृक्षारोपण के लिए गढढे से गढढे की दूरी 5 मी. तथा खेतों की मेढ़, सड़कों के किनारे आदि पर लगाने के लिए गढढे से गढढे की दूरी 7 मी. रखना चाहिए। जुलाई के प्रथम सप्ताह में बीजों से तैयार किये गये पौधे या धुंध कक्ष में

कॉपिस सूट से तैयार किये गये एवं पॉलीथिन थैलियों में स्थानान्तरित किये गये पौधों को खोदे गये गढढों में रखकर गढढों को मृदा से भरकर मृदा को पैरों से चारों तरफ से अच्छी तरह दबा देते हैं जिससे वर्षा का पानी गढढों में एकत्रित होकर पौधों को सड़ा न सके ।

सावधानियाँ :

1. पॉलीथिन थैलियों को सावधानी पूर्वक रेजर ब्लेड से लम्बाई में काटकर पौधों को अलग करना चाहिए।
2. पौधों को ज्यों का त्यों गढ्ढे में रख देना चाहिए।
3. प्रारम्भिक सुरक्षा के लिए पौधे के चारों तरफ ट्री गार्ड लगा देना चाहिए।

औद्योगिक महत्व : रंग की दृष्टि से सेमल की सेपवुड और हार्डवुड में कोई अंतर नहीं होता है। इसकी लकड़ी बहुत हल्की (स्पेसिफिक ग्रेविटी 0.333) तथा सफेद या हल्के पीले–गुलाबी रंग की होती है। अत्यधिक मुलायम होने के कारण इसे आसानी से आरी से काट सकते हैं। काष्ठ का औसत जीवन मात्र 10–12 महीने होने तथा कीड़ों और फफूंद से जल्दी नष्ट होने के कारण इसे धूप में सुखाकर तुरन्त उपयोग में ले लेना चाहिए। मुलायम काष्ठ तथा काष्ठ का बहुत कम जीवन होने के बाद भी सेमल विभिन्न उद्योगों का मुख्य स्रोत है :

1. **माचिस उद्योग** : हल्की होने के कारण सेमल की लकड़ी दियासलाई की काड़ी तथा माचिस की डिब्बी बनाने के काम आती है।
2. **प्लाईवुड उद्योग** : सेमल बड़े पैमाने पर प्लाईवुड बनाने में उपयोग किया जाता है।
3. **कागज उद्योग** : सेमल की लुगदी कागज उद्योग का मुख्य आधार है।
4. **खिलौना उद्योग** : मुलायम, हल्की व आरी से आसानी से मनचाहे आकार में काटे जाने के कारण सेमल की लकड़ी खिलौने बनाने के काम आती है।
5. **दवाई उद्योग** : सेमल वैदिक काल से औषधियों के रूप में उपयोग किया जा रहा है। इसका प्रत्येक भाग विभिन्न प्रकार की औषधियाँ बनाने के काम आता है। इसकी गोंद पौष्टिक तथा बलवर्धक होती है जिसका व्यापारिक नाम 'मोचरस' है। यह डायरिया, डिसेन्ट्री, मुख के छाले, लीवर की कार्यक्षमता बढ़ाने तथा अत्यधिक ऋतु स्राव के उपचार में उपयोगी है। फूल रक्तशुद्धि, ल्यूकोरिया, कोलाइटिस तथा साँप के काटने पर औषधि के रूप में उपयोग किये जाते हैं। फूलों का पेस्ट फोड़ा–फुन्सी एवं खुजली वाली त्वचा पर लगाया जाता है। फल भी रक्त शोधक, कोढ़ के उपचार व सांप के काटने पर औषधि के रूप में उपयोग किये जाते हैं। तपेदिक के उपचार में जड़ का उपयोग होता है। छाल तथा जड़ से टानिक बनाया जाता है। बीज गोनोरिहआ, क्रॉनिक सिस्टीसिस आदि बीमारियों में उपयोग किये जाते हैं। कांटों को पानी में घिसकर कील–मुहासों पर लगाने से लाभ मिलता है। पत्तियों का दूध में बना पेस्ट त्वचीय विकारों पर लगाया जाता है।
6. **कॉटन उद्योग** : सेमल की रुई का व्यापारिक नाम 'कपोक' है। सेमल की सफेद चमकदार रुई बहुत मुलायम होती है। यह हल्की, प्लावल, लचीली तथा जलरोधी होती है। यह रजाई, तकिया, गद्दा आदि भरने के काम आती है। ताप की उत्तम कुचालक होने के कारण हवाई जहाज की दीवारों में भरी जाती है। इससे जीवन रक्षक उपकरण, लाइफ बेल्ट्स तथा कपोक टेक्सटाइल यार्न बनाये जाते हैं।

अन्य महत्वपूर्ण उपयोग :

1. सेमल की लकड़ी पैकिंग बाक्स, सीलिंग बोर्ड, पिक्चर फ्रेम, वाद्य यंत्र, आटा गूंथने की थाली (राजस्थान), कॉफीन आदि बनाने के काम आती है।
2. इसका महीन बुरादा जिसे अंग्रेजी में 'वुडवूल' कहते हैं, बहुमूल्य पैकिंग मैटेरियल है।
3. पहाड़ी इलाकों में सेमल की लकड़ी मकान बनाने में उपयोग की जाती है।
4. यह नाव बनाने के काम आती है।
5. लकड़ी ईंधन के रूप में उपयोग की जाती है।
6. प्रायः सभी प्रकार की पत्तियाँ खाने वाली बकरी, सेमल की पत्तियाँ नहीं खाती परन्तु यह भैंसों का उत्तम चारा है। बीजों को दलकर जानवरों को खिलाया जाता है।
7. गाँव के बुजुर्ग आज भी सेमल की रुई और चकमक पत्थर से चिलम जलाते हैं।
8. कलियाँ सब्जी के रुप में खाई जाती हैं।
9. स्वर्ण खदानों में इसकी लकड़ी के कुशन उपयोग किये जाते हैं।
10. सेमल के बीजों से निकलने वाला पीला तेल खाने के काम में, रोशनी करने में तथा साबुन बनाने में काम आता है।
11. इसके ठूंठ कत्था सुखाने में उपयोग किये जाते हैं।
12. कांटों का नुकीला सिरा तोड़कर पान में कत्थे के रूप में खाया जाता है।
13. कांटे मेंहदी की पत्तियों के साथ पीसकर मेंहदी रचाने के काम में आते हैं।

उपसंहार : सेमल का उपयोग मुख्यतः दियासलाई उद्योग, पेपर पल्प, प्लाईवुड, पैकिंग केस तथा पैकिंग मटेरियल आदि के निर्माण में होने के कारण इसके वृक्षों की निरन्तर घटती

शेष भाग पृष्ठ 31 पर

झारखण्ड में केन्दु पत्तियों के उत्पादन का आकलन

डॉ. संजय सिंह, श्री राजीव पाण्डेय एवं श्री रामेश्वर दास
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

भूमिका

तेन्दु (केन्दु) पत्ता का उत्पादन *डायोसपायरोस मेलेनोजायलोन* (परिवार :– एबेनेसी) वृक्ष से होता है। केन्दु पत्ता एक अतिमहत्वपूर्ण गैर काष्ठ वनोपज एवं एक राष्ट्रीय उत्पाद भी है। पत्तियों का उपयोग बीड़ी बांधने में किया जाता है जो विशेष तौर पर गरीब देशवासियों के बीच देशी सिगरेट के रूप में लोकप्रिय है, फलतः इसका उच्च कोटि का आर्थिक महत्व है। यह मुख्य रूप से मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, झारखण्ड, गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्यों से संग्रह किया जाता है। सम्पूर्ण भारत में केन्दु पत्तियों एवं बीड़ी से अनुमान के तौर पर संग्रह क्रिया–कलाप में 106 मिलियन एवं उत्पाद निर्माण में 675 मिलियन व्यक्ति दिवस का रोजगार उपल्बध होता हैं। केन्दु पत्ता राष्ट्रीय गैर काष्ठ उत्पाद की सूची में है, जिसका अभिप्राय इसका सम्पूर्ण क्रय–विक्रय राज्य वन विभाग, वन्य संबधित क्रय–विक्रय करने वाले निगम अथवा आधिकारिक व्यापारी जो राज्य की ओर से संचालन करते हैं के द्वारा होना अनिवार्य है।

झारखण्ड देश के कुल वनाच्छदित क्षेत्र का 3.4% हिस्सा समाहित किए हुए है एवं इस दृष्टि से देश के सभी राज्यों के बीच इसका 10$^{वाँ}$ स्थान है। झारखण्ड के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 29.61% वन क्षेत्र है। केन्दु पत्तियाँ झारखण्ड के सभी जिलों में वन क्षेत्रों से संग्रह की जाती है।

प्रजाति का विवरण

सामान्य विवरण

पत्तियाँ एबेनेसी परिवार से संबंधित केन्दु वृक्ष (*डायोसपायरोस मेलेनोजायलोन* रॉक्सब.) से प्राप्त होती हैं। भारत के उत्तरी एवं पूर्वी हिस्सों में इसे विभिन्न प्रकार जैसे– तेन्दु, एबोनी, आबनुस, केन्द इत्यादि नामों से सूचित किया जाता हैं। ट्रूप (1921) के अनुसार *डायोसपायरोस मेलेनोजायलोन* (*डी. टोमेनटोसा* एवं *डी. टुप्रु* सहित) सम्पूर्ण भारत के उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन का एक अतिमहत्वपूर्ण विशिष्ट गुणों वाला वृक्ष हैं जो सम्पूर्ण भारतीय प्रायद्वीप को आच्छादित किए हुए है। इसके वितरण का विस्तार नेपाल में उप–हिमालयी प्रदेश तक, भारत के समतलीय मैदानों को सम्मिलित करते हुए गंगा का मैदान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिमी घाट तक तथा पूर्वी घाट से कोरोमंडल तक है। यह दक्षिण में नीलगिरी एवं सेरावाली पहाड़ियों पर भी पाया जाता है।

जीव–भौतिक सीमाएँ

ऊँचाई – 0–900 मी.

औसत तापमान – 0–48°C

औसत वार्षिक वर्षा – 500–1500 मि.मी.

वानस्पतिक विशेषताएँ

यह 25 मी. तक लम्बा एवं 1.9 मी. तक मोटा एक मध्यम आकार का वृक्ष है। वृक्ष की छाल बत्तख (पेलिकन) के रंग में, आयताकार पपड़ी के परतों में उखड़ती हैं। पत्तियाँ 35 से.मी. तक लम्बी, एक दूसरे के विपरीत या एकांतर क्रम में, चीमड़, युवावस्था में दोनों ओर से रोयेदार परन्तु पूर्ण विकसित होने पर चिकनी हो जाती हैं।

यह पर्णपाती वृक्ष है। उष्ण स्थानों में यह वृक्ष ग्रीष्म काल में अल्प समय के लिए पर्ण–विहीन हो जाता है तथा मई–जून के महीनें इसमें पुनः पत्तियाँ लग जाती हैं। अप्रैल से जून के महीनें के दरम्यान नयी डाली पर फूल प्रकट होते हैं एवं फल एक साल पश्चात् पकते है। खाने योग्य फलों को व्यापक तौर पर खाया जाता है तथा चमगादड़ एवं पक्षियों द्वारा प्रसारित होता है।

पारिस्थितिकी

यह प्रजाति शुष्कता से अप्रभावित एवं पाला से हल्का प्रभावित है परंतु जल जमाव के प्रति संवेदनशील है। यह सामान्य तौर पर उष्ण कटिबंधीय पतझड़ वन जैसे– सागौन, साल प्रजातियों के घटकों तथा *अकासिया ल्युकोसेफाला* (रोंझ), *बोसवेलिया सेर्राटा* (सलाई) *ब्युटिया मोनोस्पर्मा* (पलास), *टर्मिनेलिया टोमेनटोसा* (आसन) के मिश्रित वनों में पाया जाता है ।

मिट्टी

केंदु वृक्ष अनुपजाऊ बेकार मिट्टी, सुखे पर्वतों के ढ़ाल, मोटे रवेदार, मुलायम एवं रेतीले पत्थर युक्त कंकड़ीली मिट्टी पर उगते हैं तथा विस्तृत तौर पर पाये जाते हैं। किन्तु यह वृक्ष

ढ़ीली तथा झरझरी मिट्टियों में अच्छी तरह से उगता है तथा विकसित होता है एवं ठंड़ तथा नम छायेदार घाटियों मे पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

बीड़ी उद्योग मे योगदान

केन्दु पत्ती के विस्तृत तौर पर उपलब्धता तथा इसके सुगमता से लिपट सकने के वास्ते सर्वाधिक उपयुक्त आवरण के रुप में जाना जाता है। देश के अन्य हिस्सों मे बहुत से अन्य पौधों जैसे– पलास, साल आदि की पत्तियों का उपयोग बीड़ी बांधने में होता है परन्तु केंदु पत्तियों की प्रकृति, स्वाद एवं सुकार्यता अभिन्न है। वृहत् पैमानें पर केंदु पत्तियों का उपयोग बीड़ी उद्योग में मुख्य रुप से इसके पर्याप्त उत्पादन, मनभावन स्वाद, कोमलता, क्षय प्रतिरोधकता तथा प्रज्ज्वलन ग्रहण करने की क्षमता के आधार पर होता है। बीड़ी बनाने के लिए पत्तियों का चयन पत्तें के आकार, मोटाई, संरचना, मध्य शिरा की आपेक्षित मोटाई, पार्श्व धारी के आकृति मूलक गुणों के आधार पर होता है।

बीड़ी बांधना एक प्राथमिक पेशा है जो अति साधारण है तथा किसी समय किसी स्थान पर किया जा सकता है। यह लाखों गरीब ग्रामीण समुदाय के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत है। बीड़ी उद्योग कृषि आदि हेतु दुष्कर मौसम में बीड़ी पत्तियों के संग्रह द्वारा ग्रामीण समाज के लिए रोजगार उपलब्ध कराता है। स्पष्टतः बीड़ी उद्योग का ग्रामीण कल्याण एवं ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान है।

केंदु पत्तियों का संग्रहण एवं प्रसंस्करण

संग्रह कार्यप्रणाली एवं प्रक्रिया

केन्दु पत्तियों की संग्रह कार्यप्रणाली एवं प्रक्रिया मूलरुप से एक समान है तथा करीब–करीब सभी जगह इसी प्रक्रिया का उपयोग होता हैं। केन्दु पौधों की छंटाई फरवरी एवं मार्च महीने मे होती हैं तथा लगभग 45 दिन पश्चात् तैयार पत्तियों का संग्रह किया जाता हैं। पत्तियों का संग्रह 50–50 पत्तों के बंडलों में होता है जो लगभग एक सप्ताह तक सूर्य के प्रकाश में सुखाया जाता हैं। सुखी पत्तियों को मुलायम रखने के लिए पानी का छिड़काव किया जाता है एवं पटुएँ के थैलियों में कसते हुए भरा जाता हैं तथा दो दिनों के लिए प्रत्यक्ष रुप से सूर्य के प्रकाश में डाला जाता हैं। थैली को इस प्रकार बाँधा जाता है कि बीड़ी निर्माण के कार्य तक सुरक्षित रखा जा सकता हैं। पत्तियों को तोड़ने, सुरक्षा तथा भंडारण में व्यापक सावधानी की आवश्यकता होती हैं। यह एक संवेदनशील उत्पाद है तथा इस प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की हल्की से हल्की चूक से इसका समर्पित गुण नष्ट हो जाता है तथा बीड़ी बनाने के लिए अनुपयुक्त हो जाता हैं।

परिणाम

वर्तमान अध्ययन राज्य को पाँच प्रशासनिक भागों पलामू (गड़वा और डाल्टनगंज समाहित) हजारीबाग, गिरिडीह, सिंहभूम और राँची में बाँटकर समस्त 45 गौण उपज क्षेत्रों के

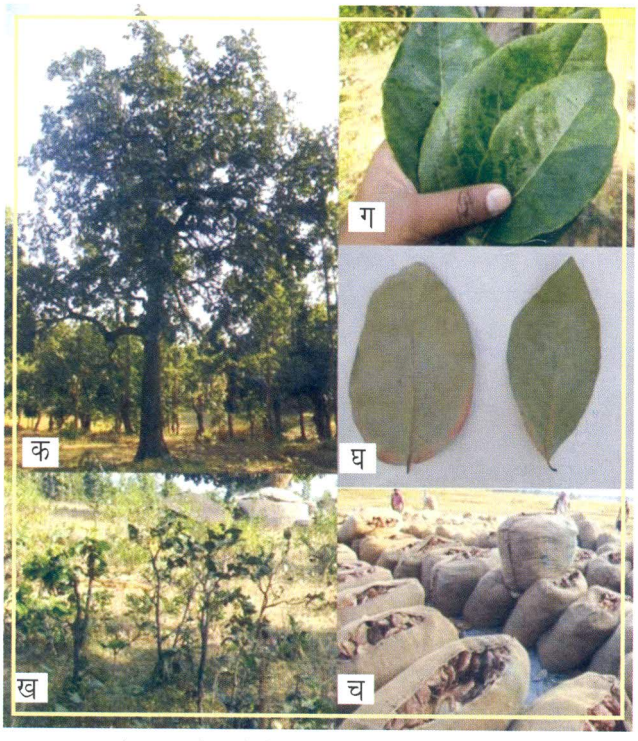

क. *डायोसपायरोस मेंलेनोजायलोन* का परिपक्व वृक्ष **ख.** छंटाई किये गयें पौधें जिनसे पत्तियों का संग्रह किया जाना है **ग.** संग्रह की गयी हरी पत्तियां **घ.** पत्तियों का संरक्षण प्रक्रिया के पश्चात् **च.** गठरी में पटुएँ की थैली मे पत्तियों का भंडारण

295 उत्पाद समूहों में अवस्थित 686 संग्रह इकाइयों में एक से डेढ़ माह में किया गया।

कुल 52 प्रतिशत संग्रह समूह जिनका क्षेत्रफल लगभग 12,00,000 वर्ग मीटर था, का सर्वेक्षण किया गया।

अध्ययन से पता चला कि राज्य में बीड़ी पत्तियों का कुल उत्पादन लगभग 11,55,000 मानक बोरों का है। हालाँकि उचित प्रबन्धन जैसेः कटाई–छँटाई एवं अन्य वानिकी क्रियाकलापों के अभाव में यह कम हो सकता है।

निष्कर्ष

झारखण्ड में केन्दु पत्तियों का संग्रह राज्य के लिए आय का पर्याप्त स्रोत होने के साथ–साथ ग्रामीण एवं जनजातीय लोगों के जीविकोपार्जन में विशेष स्थान रखता है। भारतवर्ष में प्रथम बार वैज्ञानिक विधि से उत्पादकता का आंकलन एवं निर्धारण किया गया है, जो भविष्य में अन्य क्षेत्रों में दोहराया जा सकता है।

पृष्ठ 28 का शेष भाग

सँख्या चिंता का विषय है। उपरोक्त उद्योगों की आवश्यक मांग को निरन्तर पूरा करने के लिए विभिन्न राज्यों के वन विभागों, ग्राम पंचायतों तथा निजी भूमि स्वामियों द्वारा उपलब्ध भूमि पर सेमल के वृक्षारोपण को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए। चूंकि वर्धी प्रजनन द्वारा पौध तैयार करने में सफलता मिल चुकी है, अतः केवल बीजों पर ही आधारित न होकर कॉपिसिंग द्वारा पौध तैयार कर वृक्षारोपण लक्ष्य पूरा करना चाहिए।

मौत तो आनी है तो फिर मौत का क्यों डर रखूँ
जिंदगी आ, तेरे क़दमों पर मैं अपना सर रखूँ

जिसमें माँ और बाप की सेवा का शुभ संकल्प हो
चाहता हूँ मैं भी काँधे पर वही काँवर रखूँ

हाँ, मुझे उड़ना है लेकिन इसका मतलब यह नहीं
अपने सच्चे बाजुओं में इसके–उसके पर रखूँ

आज कैसे इम्तहाँ में उसने डाला है मुझे
हुक्म यह देकर कि अपना धड़ रखूँ या सर रखूँ

कौन जाने कब बुलावा आए और जाना पड़े
सोचता हूँ हर घड़ी तैयार अब बिस्तर रखूँ

ऐसा कहना हो गया है मेरी आदत में शुमार
काम वो तो कर लिया है काम ये भी कर रखूँ

खेल भी चलता रहे और बात भी होती रहे
तुम सवालों को रखो मैं सामने उत्तर रखूँ

– कुँअर बेचैन

भूतजोलोकिया - सुपारी कृषिवानिकी मॉडल

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, श्री पवन कुमार कौशिक एवं श्री नीरेन दास
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

ब्रह्मपुत्र घाटी में पाई जाने वाली भूतजोलोकिया (कैप्सिकम चाईनेसिस *जैक.*) दुनिया की सबसे तीखी मिर्चों में त्रिनिनाद स्कोर्पियन के साथ संयुक्त रूप से प्रथम स्थान पर है। पूर्वोत्तर भारत में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता हैं जैसे 'घोस्ट पिपर चिली', 'नागा रेड चिली', 'नागा वाइपर' इत्यादि। यह मिर्च आनुवांशिक रूप से *कैप्सिकम फ्रूटीसेंस* के जीन्सों का *कैप्सिकम चाइनेन्सिस* में समावेश है। यह मिर्च अपनी विशेष सुगंध, औषिधि और कीटनाशी गुणों के कारण सारी दुनिया भर में प्रसिद्ध है। यह यहां की पारंपरिक औषधियों में शामिल है जैसे सिर दर्द, पेट की बीमारियों में, गठिया निवारण आदि में। निकट भविष्य में यह दंगे नियंत्रण में भी प्रमुख भूमिका निभाएगी क्योंकि इसके पाउडर में बहुत जलन भरी तीव्रता है और पर्यावरण की दृष्टि से यह रासायनिक अश्रु गैस से उत्तम है।

पूर्वोत्तर भारत में यह असम, नागालैंड एवं मणिपुर, मिज़ोरम में व्यापक रूप से उगाई जाती हैं एवं विभिन्न जलुवायों में उगने की वजह से इनका रंग, रूप, माप यहां तक तीखेपने में भी अंतर होता हैं। इनका आकार बहुत ही खुरदरा और रंग चटक लाल, चॉकलेट से लेकर संतरे की तरह, वजन 5 से लेकर 12 ग्राम तक होता है। अपने गुणकारी विशेषताओं की वजह से यह बाज़ार मूल्य में सभी मिर्चों में सबसे अधिक होती है।

भूतजोलोकिया पादप, उत्पाद और परिपक्व फल

जोरहाट स्थित वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान के झूम खेती प्रभाग ने भूतजोलकिया को कृषिकों के लिए अतिरिक्त आय के साधन के रूप में स्थापित किया है भूतजोलोकिया – सुपारी कृषिवानिकी डिजाइन के रूप में। सुपारी असम के ग्रामीण घरों के बागीचे का प्रमुख पेड़ है शायद ही कोई ऐसा घर हो जहाँ पर इसकी खेती ना की जाती हो। पाल्मी परिवार के उष्णकटिबंधीय जलवायु अनुकूलित यह पौधे बहुत ही कम जगह में अपनी वृद्धि करते है। एक पूर्ण वयस्क पौधा 7–8 वर्षों में सुपारी का उत्पादन शुरू कर देता है। सुपारी बागान बड़े हो या फिर बहुत छोटे, उनके दो पौधों के बीच का अंतर भूतजोलोकिया–सुपारी कृषिवानिकी के मापदंडो के लिए आदर्श होता है, सुपारी के दो पौधों के बीच तकरीबन 1 से 1.5 मीटर तक की जगह होती है एवं इनके बीच दो भूतजोलकिया के पौधों को आसानी से रोपा जा सकता है। इस तरह कम से कम 20 –25 पौधों की एक बहुत छोटे से सुपारी बागान में खेती की जा सकती है। भूतजोलोकिया–सुपारी कृषिवानिकी शुरू करने से पहले भूतजोलोकिया के आदर्श पौधों का होना बहुत जरूरी है।

भूतजोलकिया का नर्सरी प्रबंधन एक जटिल कार्य है, इसका पहला कारण है मृदा–जनित अनेक प्रकार के कवक एवं जीवाणु जनित रोग एवं बीजों की अंकुरण क्षमता, परिपक्व बीज बहुत जल्दी ही अपनी अंकुरण क्षमता खोने लगते है। इसलिए इनके बीजों को पकने के तुरंत बाद फलों से बाहर निकाल कर धूप में सुखा लेते है। अब खुली जगह मे समतल जमीन से 15–20 सेंटीमीटर मिट्टी को ऊपर उठाकर एक क्यारी तैयार करते है और 0.01 ग्राम प्रति लीटर बैवीस्टिन (कवकनाशी) का घोल तैयार क्यारी में अच्छी तरह से मिला देते है, फिर 3–4 दिनों बाद बीजों को बो देते है और समय–समय पर पानी का हल्का सा छिड़काव करते रहते है। कुछ दिनों बाद अंकुरण शुरु हो जाता है दो–तीन सप्ताहों के भीतर इन्हें क्यारी से निकाल कर पॉलीबैग में स्थान्तरित कर देते है जिसमें की 1:1:1::वर्मीकंपोस्ट : रेत : मृदा का मिश्रण रहता है। इन पौधों का रोपण अप्रैल–मई माह में सुपारी के बागानों में कर देते है वहाँ भी इनकी क्यारियां सतह से कुछ ऊपर बनायी जाती है जिससे बारिश का पानी इनकी जड़ों में एकत्रित न रह सके। पौधों में बीमारी के बचाव के लिए जरूरी है कि ताज़ा गोबर का इस्तेमाल खाद के रूप में ना हो जिससे निमैटोड

इत्यादि के आक्रमण से पौधों की रक्षा की जा सके। 2.5–3 महीनों में पौधे परिपक्व हो कर उत्पादन हेतु मिर्चों का निर्माण शुरू कर देते है। एक समान्य पौधे में एक सप्ताह में 200–250 ग्राम तक मिर्चे लगती है और यह पौधा 4–5 (6) माह तक मिर्चों का उत्पादन करता रहता है परंतु बाद के महीनों में उत्पादन में गिरावट आ जाती हैं। जून से अक्टूबर तक इसका बाज़ार मूल्य 160–200 रुपये प्रति किलो ग्राम रहता है जो बाद में उत्पादन कम होने के समय 250 से 350 रुपये प्रति किलो तक पहुँच जाता है। इस प्रकार एक पौधे से एक फसल चक्र में कम से कम 300–400 रुपये तक की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती हैं।

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान के झूम खेती प्रभाग ने जोरहाट जिले के अंतर्गत गिब्बन वन्य अभ्यारण की सीमा से लगे गोबिंदपुर, मधुपुर, एवं भोगपुर ग्रामों में इस मॉडल की सफलता पूर्वक स्थापना की है एवं ग्रामीणों के लिए अतिरिक्त आय के स्रोतों का सृजन किया है।

भूतजोलोकिया नर्सरी के विभिन्न चरण, मिर्च परिपक्क के चरण और कृषक खेत में भूतजोलकिया–सुपारी कृषिवानिकी मॉडल का विस्तारण

भूख के एहसास को शेरो–सुख़न तक ले चलो
या अदब को मुफ़लिसों की अंजुमन तक ले चलो

जो ग़ज़ल माशूक के जल्वों से वाक़िफ़ हो गयी
उसको अब बेवा के माथे की शिकन तक ले चलो

मुझको नज़्मो–ज़ब्त की तालीम देना बाद में
पहले अपनी रहबरी को आचरन तक ले चलो

गंगाजल अब बूर्जुआ तहज़ीब की पहचान है
तिशनगी को वोदका के आचमन तक ले चलो

खुद को ज़ख्मी कर रहे हैं ग़ैर के धोखे में लोग
इस शहर को रोशनी के बाँकपन तक ले चलो.

– अदम गोंडवी

कृषि वानिकी : एक परिचय

डॉ. चरन सिंह एवं श्री रामबीर सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

कृषि वानिकी क्या है ?

कृषि वानिकी का अर्थ है "एक ही भूमि पर कृषि फसल एवं वृक्ष प्रजातियों को विधिपूर्वक रोपित कर दोनों प्रकार की उपज लेकर आय बढ़ाना।" कृषि वानिकी के अन्तर्गत काष्ठीय बहुवर्षीय प्रजातियां एक ही भूमि पर कृषि फसलों के साथ उगाई जाती हैं। यह पद्धति आर्थिक रूप से लाभप्रद, सामाजिक रूप से स्वीकार्य तथा समस्त भूमि सुधारक प्रक्रियाओं का समेकित नाम है।

कृषि वानिकी क्यों ?

हमारे देश की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित है। प्राकृतिक आपदा–यथा बाढ़ व सूखा से फसल नष्ट होने पर कृषकों को आर्थिक क्षति पहुँचती है तथा उनकी अर्थ व्यवस्था की रीढ़ टूट जाती है। उत्पादन अधिक होने पर मूल्य न्यून हो जाने से कृषक को लागत भी प्राप्त नहीं होती है। कृषि के साथ वृक्ष रोपित करने से उपयुक्त समय व बाजार मूल्य प्राप्त होने पर काटने व बेचने की सुविधा है। इसके साथ ही फसल के साथ रोपित वृक्ष प्राकृतिक आपदा को झेलते हुए कृषक के लिए निवेश व "बीमा" जैसे लाभकारी सिद्ध होते हुए कृषक की आवश्यकता– यथा शादी जैसे पारिवारिक उत्सवों–पर धन उपलब्ध करवाते हैं। कृषि वानिकी को अपनाकर कृषक खेती में विविधता लाकर अनाज के साथ ही जलाऊ लकड़ी, कृषि औजारों की लकड़ी, पशुओं के लिए चारा आदि निवास के समीप खेतों से प्राप्त कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ ही अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर सकते हैं। ईंधन के रूप में प्रयुक्त किए जाने वाले गोबर को जलाने के बजाय बचा कर खाद के रूप में प्रयुक्त किये जाने से कृषि उत्पादन बढ़ने के साथ ही रासायनिक उर्वरक में व्यय होने वाली धनराशि की बचत कर सकते हैं।

कृषि वानिकी के विभिन्न प्रकार :

कृषि वानिकी के अन्तर्गत खेत के चारों तरफ मेड़ों पर दो या तीन पंक्तियों में अथवा खेतों के अन्दर पंक्तियों में एक निश्चित दूरी में फसलों के साथ वृक्षों को रोपित किया जाता है। इस पद्धति में रोपित वृक्षों के मध्य दूरी इस प्रकार रखी जाती है कि उनके मध्य में कृषि फसलों को उगाया जा सके तथा कृषि कार्य हेतु उनके मध्य से ट्रैक्टर आदि चलाया जा सके। कृषि वानिकी पद्धति को उपलब्ध स्थल एवं स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के अनुसार विभिन्न स्वरूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. कृषि वानिकी पद्धति
2. कृषि बागवानी पद्धति
3. कृषि बागवानी वानिकी पद्धति
4. पुष्प बागवानी, कृषि एवं वानिकी पद्धति
5. सब्जी वानिकी पद्धति
6. मत्स्य पालन वानिकी पद्धति
7. गृह वाटिका पद्धति
8. चारागाह वानिकी पद्धति।

खेती के साथ रोपित वृक्षों में निम्न विशेषतायें होनी चाहिए:

1. शीघ्र बढ़ने वाला :

कृषि वानिकी के अन्तर्गत ऐसे वृक्षों को उगाना चाहिए जो अपेक्षाकृत तेज बढ़ने वाले हो जिससे आप अपने लाभ हेतु उनसे कम समय में ही उपज प्राप्त कर सकें।

2. सीधा तना :

कृषि वानिकी में रोपण हेतु सीधे तने, कम शाखाओं, विरले छत्र व शाख तराशी सहने वाली वृक्ष प्रजातियों को चयन में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

3. गहरी जड़ें :

कृषि वानिकी में लम्बी जड़ों वाले वृक्षों को उगाना बहुत लाभदायक होता है। यह जड़ें भूमि में जाकर नीचे से लाभदायक पदार्थ ऊपर लाती हैं जो कृषि फसलों को फायदा पहुँचाते हैं। वृक्षों की मूसला जड़ों की बढ़त इस प्रकार हो कि वे जल से खनिज लवणों के अवशोषण व फसलों की आवश्यकता के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकें।

4. द्विदलीय बीजीय वृक्ष :

कृषि वानिकी के अन्तर्गत द्विदलीय बीज वाले वृक्ष उगाना अधिक लाभदायक है, क्योंकि ऐसे वृक्ष हवा से नाइट्रोजन लेकर भूमि में जमा करते है, जो कि कृषि फसलों के लिए लाभदायक है।

कृषि वानिकी पद्धति

इसके अन्तर्गत कृषि क्षेत्र में प्लाट के चारों तरफ मेड़ों पर दो या तीन पंक्तियों में वृक्षों को 3 मीटर के अन्तराल में रोपित करते हैं। इसके अतिरिक्त खेतों के अन्दर पंक्तियों में एक निश्चित दूरी में भी वृक्षों को रोपित किया जाता है। इस पद्धति में रोपित वृक्षों के मध्य अन्तराल इस प्रकार रखा जाना चाहिए कि उनके मध्य में कृषि फसलों को उगाया जा सके तथा कृषि कार्य हेतु उनके मध्य से ट्रैक्टर आदि चलाया जा सके। इस पद्धति में साधारणतः 5 मी. × 4 मी. अथवा 5 मी. × 5 मी. की दूरी अधिक उपयुक्त होती है। कृषकों द्वारा उक्त प्रकार के वृक्षारोपण हेतु पॉपलर (*पी. डेल्टाइडिस*) प्रजाति सर्वोत्तम पायी गयी। इस पद्धति में यूकेलिप्टस, सागौन तथा शीशम का रोपण भी क्षेत्र विशेष के अनुसार कृषकों द्वारा अपनाया जा रहा है।

कृषि बागवानी पद्धति

इस पद्धति का सबसे अधिक प्रचलन तराई व दोआब क्षेत्र में है। इस पद्धति को अपनाने के निम्न उद्देश्य है :

1. उत्पादकता में वृद्धि
2. ग्रामीण बच्चों को कुपोषण से मुक्ति
3. फलों द्वारा स्वास्थ्य वर्धन
4. फलों की बिक्री से निरन्तर अत्यधिक आय।

यह पद्धति भी किसानों में अधिक लोकप्रिय होती जा रही है। इसके अन्तर्गत खेतों में फलदार वृक्ष जैसे आम (कलमी) अमरूद, आँवला (कलमी), बेर, बेल, किन्नू तथा कटहल आदि को एक निश्चित दूरी पर रोपित करते हैं जो सामान्यतः 6 मी. से 10 मी. होती है। वृक्षों के मध्य में कृषि फसलों की उपज प्राप्त की जाती है। वृक्षों के बड़े हो जाने पर उनकी आवश्यकतानुसार कटाई भी करते रहते हैं जिससे फलों की अधिक उपज प्राप्त हो सके।

कृषि बागवानी वन पद्धति

पूर्वी उत्तर प्रदेश, तराई व पश्चिमी गांगेय क्षेत्र में यह पद्धति अत्यन्त ही लोकप्रिय है। इसका मुख्य कारण बागवानी से होने वाला अत्यधिक लाभ तथा ग्रामीणों की वनों पर निर्भरता की कमी है। इस पद्धति के निम्न लाभ हैं :

1. सीमित क्षेत्र से अधिक लाभ की प्राप्ति।
2. ग्रामीण बच्चों की कुपोषण से बचाने हेतु पोषक तत्वों व विटामिन की कमी की पूर्ति।
3. फलों से निरन्तर आर्थिक लाभ की प्राप्ति।
4. वनों पर निर्भरता कम होना।
5. चारा पत्ती की आवश्यकता की पूर्ति।
6. जलाऊ लकड़ी की आवश्यकता की पूर्ति।

इसके अन्तर्गत कृषि फसलों के साथ–साथ फलदार प्रजातियां जैसे पपीता, आँवला, नींबू, अमरूद के साथ काष्ठ प्रजातियां जैसे यूकेलिप्टस, सागौन आदि को मेड़ों पर रोपित करते हैं और तीनों प्रकार के उत्पाद कृषि, फल तथा काष्ठ एक ही स्थान पर प्राप्त हो जाते हैं। यह पद्धति पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तराई व हरियाणा में अत्यधिक लोकप्रिय है।

पुष्प बागवानी कृषि एवं वन पद्धति

यह पद्धति उन्नतशील किसानों में अत्यन्त लोकप्रिय है। इस पद्धति से उगने वाले पुष्पों से किसी भी अन्य पद्धति से अधिक होती है। इसकी देखभाल में आने वाले कम खर्च व अधिक लाभ के कारण जनमानस में लोकप्रिय हो रही है। इस पद्धति के निम्न लाभ हैं :

1. निरन्तर अधिक धन की प्राप्ति।
2. शहद उत्पादन की सम्भावना।
3. कम स्थान में भी लाभकारी।
4. कम लागत व समय में अधिक लाभ।

इसके अन्तर्गत कृषक फलदार एवं काष्ठ प्रजातियों के साथ पुष्प प्रजाति जैसे लिली, लैडियोलाई आदि की खेती करते हैं। यह शहरी क्षेत्रों के निकट अधिक लाभदायक होती है।

वन सब्जी पद्धति

इस पद्धति में कृषि फसल के स्थान पर सब्जी की फसल जैसे बैंगन, मिर्च, गोभी, भिण्डी आदि को रोपित करते हैं। काष्ठ प्रजातियों में पॉपलर, सागौन, यूकेलिप्टस आदि प्रजातियां रोपित की जाती हैं। इस प्रकार की खेती शहरी क्षेत्र के निकट करने पर ताजे उत्पाद को विपणन हेतु शीघ्र पहुंचाया जा सकता है।

वन मत्स्य पद्धति

यह पद्धति हरियाणा व पंजाब में अधिक लोकप्रिय है। उत्तर प्रदेश में इसके लोकप्रिय न होने का मुख्य कारण उत्तर प्रदेश में बड़े जलाशयों का अभाव है। मत्स्य विभाग, उ.प्र. ने एक हैक्टेयर क्षेत्र के माडल विकसित कर लिये हैं जिससे किसानों को प्रतिवर्ष 1–2 लाख रूपये प्राप्त हो सकते हैं। उत्तम मछली के बीज व बच्चे स्थानीय सहायक निदेशक (मत्स्य) से प्राप्त कर व उच्च गुणवत्ता की खाद इत्यादि डालकर अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

इस पद्धति में तालाबों के किनारों पर बहुउद्देशीय वृक्ष लगाये जाते हैं तालाबों में उन्नत किस्म की मछलियों जैसे : रोहू, कतला, ग्रासकार्प, सिल्वर कार्प आदि प्रजातियों का उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार की पद्धति देश के दक्षिणी प्रदेश में बहुत पहले से प्रचलित है जहाँ तालाब की

मेड़ों पर नारियल के वृक्षों का रोपण करते हैं। धीरे–धीरे यह पद्धति उत्तर प्रदेश के कृषकों में भी लोकप्रिय होती जा रही है। वृक्षारोपण से तालाब के किनारे की मेड़ों की मिट्टी का क्षरण नहीं हो पाता तथा इनसे पानी में गिरने वाली पत्तियां, पुष्प व फल आदि मत्स्य के भोजन में काम आता है।

गृह वाटिका पद्धति

यह पद्धति एशिया महाद्वीप में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस पद्धति के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं :

1. आवास के समीप दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति
2. मृदा संरक्षण
3. वायु–प्रदूषण एवं ध्वनि प्रदूषण से मुक्ति
4. आवास के आसपास उत्तम वातावरण तैयार करना।

क्षेत्र के अनुसार इस पद्धति में प्रजातियों का चुनाव किया जाता है। सामान्यतः इन प्रजातियों की देखभाल गृहणी द्वारा की जाती है। इस प्रकार यह पद्धति गृहणियों, वृद्धों तथा परिवारों में अत्यन्त लोकप्रिय है। इसके अन्तर्गत कृषक अपने आवास के समीप के खाली क्षेत्रों में अपनी आवश्यकतानुसार आम, जामुन, पपीता, बेल, सहजन, नीम, पीपल, पाकड़, गूलर, बाँस आदि का रोपण करते हैं। इस प्रकार के रोपण से कृषक अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, और उनके घरों के आसपास छाया व पशुओं के बांधने के लिये उपयुक्त स्थान प्राप्त हो जाता है और पशुओं की धूप व वर्षा आदि से रक्षा भी होती है।

वन चारागाह पद्धति

यह पद्धति मुख्य रूप से अवनत भूमि के विकास तथा चारे की समस्या के निदान हेतु कृषकों द्वारा अपनायी जा रही है। चराई के दबाव को कम करने के उद्देश्य से इस पद्धति में बहुउद्देशीय वृक्षों का रोपण किया जाता है। यह पद्धति देश के बीहड़ क्षेत्रों के विकास के लिये भी उत्तम है। ऐसे क्षेत्रों में मुख्य रूप से घास की सिकरस, क्राइसोपोगान, दीनानाथ, डाइकेथियम तथा दलहन की स्टाइलों व सिराटो प्रजाति उपयुक्त होती है। यह पद्धति पश्चिमी व पूर्वी गांगेय क्षेत्रों में अधिक प्रचलित नहीं है।

संक्षेप में कृषि वानिकी तथा इसके अन्तर्गत अपनाई जाने वाली पद्धतियों के माध्यम से किसान भाई सभी प्रकार की भूमि में अधिक से अधिक लाभ कमाकर आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन सकते है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण सुधार में भी सहायक हो सकते हैं। कृषि वानिकी अपनाते समय ध्यान रखना जरूरी है कि पारम्परिक कृषि वानिकी पद्धतियों के साथ–साथ वैज्ञानिक तरीकों पर आधारित कृषि वानिकी पद्धतियों को भी समावेश हो तभी सीमित भूमि अधिक से अधिक आय अर्जित की जा सकती है।

मदिरालय जाने को घर से
चलता है पीने वाला,
'किस पथ से जांऊ?' असमंजस
में है वह भोला भाला,
अलग–अलग पथ बतलाते सब,
पर मैं यह बतलाता हूं–
'राह पकड़ तू एक चलाचल,
पा जाएगा मधुशाला'

धर्मग्रंथ सब जला चुकी है
जिसके अंतर की ज्वाला,
मंदिर, मस्जिद, गिरजे सबको
तोड़ चला जो मतवाला,
पंडित, मोमिन, पादरियों के
फंदों को जो काट चुका,
कर सकती है आज उसी का
स्वागत मेरी मधुशाला।

– हरिवंश राय 'बच्चन'

वानिकी रोपवन कार्यक्रमों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली प्रजातियों का महत्व एवं तकनीक

डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल एवं कुमारी पल्लवी भाटिया
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सभी जीवित प्राणियों की वृद्धि एवं विकास में नाइट्रोजन एक अति महत्वपूर्ण तत्व है। अधिकतर पेड़–पौधे नाइट्रोजन को संयुक्त अवस्था में ग्रहण करते हैं जैसे नाइट्रेट या अमोनिया। वातावरण में नाइट्रोजन की मात्रा लगभग 80 प्रतिशत होती है परन्तु पेड़ पौधे उसे सीधे ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। जमीन में सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा वातावरणीय नाइट्रोजन को स्थिर करने का पारिस्थितिक नाइट्रोजन चक्र में महत्वपूर्ण स्थान होता है। आणविक नाइट्रोजन या तो प्राकृतिक अजीवाणीय (non-biological) या फिर जीवाणीय (biological) प्रक्रम या व्यापारिक विधि द्वारा स्थिर की जाती है जिसमें कि जीवाणीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण प्रक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पिछले 40 वर्षों में कृषि उत्पादन में पहले से तीन गुणा की वृद्धि हुई जिसका मुख्य कारण नाइट्रोजनीय उर्वरकों का बढ़ता हुआ उपयोग रहा है। फिर भी दूसरे देशों की तुलना में हमारे देश में उर्वरकों का उपयोग बहुत कम मात्रा में हुआ। भविष्य में अधिक उत्पादन के लिए उर्वरकों की अधिक मात्रा उपयोग में लानी पड़ेगी। फलीदार (legume) पेड़ पौधों के द्वारा स्थिर नाइट्रोजन का पूर्ण रुप से मापना कठिन है फिर भी यह 10–600 कि.ग्रा./हैक्टेयर/वर्ष के बीच में मापी गयी है, जो कि प्रजाति तथा वातावरणीय परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है।

बंजर भूमि में कम उर्वरकता होना एक सामान्य समस्या है वहाँ पर वनस्पति प्रवर्द्धन स्थापित करना मुश्किल होता है। इस प्रकार की भूमि में नाइट्रोजन की सामान्यतः कमी पायी जाती है। अतः इस तरह की प्रजातियों का उपयोग करके हम जंगल लगाने का कार्य कर सकते हैं, जो कि अपनी वृद्धि एवं विकास के लिए नाइट्रोजन को स्थिर कर सकते हैं। यदि मिट्टी की उर्वरकता को बनाये रखना है तो या तो उर्वरक समय–समय पर डालने पड़ेगें, जो अत्याधिक मंहगे हैं या उन पौधों को लगाना चाहिए जो वातावरणीय नाइट्रोजन का उपयोग करके मिट्टी वाली नाइट्रोजन की अवस्था को बनाये रखते हैं। जैव उर्वरक मिट्टी में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं की सहायता से वातावरणीय नाइट्रोजन को स्थिर करते हैं। ये सूक्ष्म जीवाणु या तो मिट्टी में स्वतंत्र अवस्था में या फिर पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी अवस्था में पाये जाते हैं तथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष नाइट्रोजन से पोषण देते हैं। नाइट्रोजन स्थिरण सहजीविता का उचित प्रयोग तथा लकड़ी के जैव ईंधन की बढ़ती जरुरतों के लिए अति आवश्यक है। उदाहरण के लिए जैसे कुछ पौधों को पांच मिलियन हेक्टेयर बंजर भूमि में प्रति वर्ष लगाना है तथा यदि इस तरह के कार्यक्रम यहां सफलता पूर्वक हो जायें, तब नाइट्रोजन स्थिर करने वाली प्रजातियों को विभिन्न वातावरणीय क्षेत्रों के आधार पर उन्हें रोपण से पहले छाँटा जा सकता है। इस तरह के नाइट्रोजन स्थिरीकरण तंत्र का विकास जैव ईंधन तथा उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिऐ सुअवसर हो सकता है। प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य वृक्ष उत्पादकों का ध्यान वानिकी कार्यक्रमों में जैवीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण की तरफ ध्यान आकर्षित करना है, जैसे कृषि, सामाजिक तथा वानिकी कार्यक्रमों में उत्पादकता को बढ़ाना।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण तंत्रों के प्रकारः सहजीवी की अनुपस्थिति में नाइट्रोजन स्थिर करने वाले उच्च पादप अभी तक ज्ञात नहीं हैं। अत्याधिक अम्लीय तथा क्षारीय परिस्थिति को छोड़कर शेष सभी परिस्थितियों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण पाया जाता है। नवीन तकनीक विकसित होने के कारण नाइट्रोजन स्थिर करने वाले तंत्रों व जातियों की खोज हुई है जो कि निम्नलिखित है :

(अ) सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरक प्राणी :

(I) **फलीदार/लेग्यूम पौधे** : इस जाति के पेड़ पौधे राइजोवियम (Rhizobium) जाति की जीवाणुओं के साथ नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जड़ों में नोडयूल (Nodule) ग्रन्थि बनाते हैं। ये समूह विश्व में सबसे महत्वपूर्ण नाइट्रोजन स्थिर करने वाला समूह है। बहुत से लेग्यूम वन पारिस्थितिकी तंत्र में पाये जाते हैं। 14,000 ज्ञात लेग्यूम पौधों में से लगभग 20 प्रतिशत प्रजातियों की नोड्यूलेशन (nodulation) के लिए परीक्षण किया गया, जिनमे लगभग 90 प्रतिशत पौधों में नोड्यूल/ग्रन्थियां पायी गयी। फलीदार/लेग्यूम में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की दर 1–500 कि.ग्रा./हैक्टेयर के बीच पायी गयी जिनमें कि शाकीय पौधों में उच्च तथा काष्टीय पौधों में निम्न दर होती है।

(II) **बिना फलीदार/एक्टिनोराइजल (Actinorhizal Angiosperm) पौधे** : कुछ बिना फलीदार पेड़–पौधे

विभिन्न प्रकार के नाइट्रोजन स्थिरक सूक्ष्म जीवाणुओं के साथ सम्बन्ध बना सकते हैं जिसमें कि *फ्रेंकिया* (*Frankia*) नामक जीवाणु इस तरह का सहजीवी सम्बन्ध बनाता है। इस प्रकार के जीवाणु में नाइट्रोजन स्थिरण की दर 0.1–320 कि.ग्रा./हेक्टेयर पायी जाती है।

(III) **पत्ती तथा जड़ के साथ सम्बन्धित जीवाणु वाले बिना फलीदार पौधे** : कुछ ट्रॉपिकल घासों में नाइट्रोजन स्थिरक जीवाणु उनके जड़ तथा पत्ती के साथ पाये जाते हैं, जीवाणु *बीजरंकिया* (*Beijerinckia*), ट्रॉपिकल तथा *एजोस्पारिलम लीपोफेरम* (*Azodpirillum lipoterum*) *डीजीटेरिया डीकमबेन्स* (*Digitari decumbens*) के जड़ के बाह्य आवरण में नाइट्रोजन स्थिर करते हैं।

(IV) **नील हरित शैवाल के साथ सम्बन्धित पौधे** : कुछ निम्न पादपों के साथ नाइट्रोजन स्थिरक नील हरित शैवाल सहजीवी सम्बन्ध बनाते हैं। नाइट्रोजन स्थिरक फाइकोबायोन्ट (Phycobiont) के कारण कुछ लाइकेन (lichen) अव्यवस्थित रुप से नरम सतहों पर उग आते हैं। सामान्यतः वृद्धि बहुत धीरे–धीरे होती है, परन्तु मृदा निर्माण प्रारम्भ हो जाता है तथा नाइट्रोजन स्थापित होने लगती है। लीवरवार्टस (liverworts) से सम्बन्धित नील हरित शैवाल नास्टॉक (Nostoc) नाइट्रोजन स्थिर करता है तथा नाइट्रोजन पौधों में जमा होने लगती है। अति सूक्ष्म जलीय टेरिडोफाइट (Pteridophyte) *एजोला* (*Azolla*) नील हरित शैवाल *एनाबिना* (*Anabaena*) को अपनी पत्ती जैसे आकार वाले अंग में शरण देता है। इस प्रकार के सम्बन्ध धान की फसल को नाइट्रोजन प्रदान करता है जो कि बहुत अधिक लाभदायक है।

(V) **अन्य पादप जीवाणु सम्बन्ध** : एक सबट्रॉपिकल (Subtropical) एन्जिोस्पर्मा (Angiosperm) वृक्ष *गनेरा* (*Gannera*) नील हरित शैवाल *नॉस्टॉक* (*Nostoc*) को अपनी पत्ती के आधार पर पाये जाने वाले नोड्यूल में रखता है जो कि अद्‌भुत है। यह भी पाया गया है कि *पैरास्पोनिया* (*Parasponia*) ट्रापिकल वृक्ष, जो कि एक बिना फलीदार (nonlegume) वृक्ष है के जड़ नोड्यूल में *राइजोबियम* (*Rhizobium*) जाति का जीवाणु नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है।

(बी) असहजीवी जीव :

(I) **एईरोब (Aerobes)** : इस समूह के अन्तर्गत बैक्टीरिया एवं नील हरित शैवाल आते हैं जैसे कि *एजेटोवेक्टर* (*Azotobacter*) व *बीजरंकिया* (*Beijerincki*) तथा *एनाबिना* (*Anabaena*) व *नॉस्टाक* (*Nostoc*) शैवाल हैं। इन सभी में केवल *बीजरंकिया* ही वन क्षेत्र में पायी जाने वाली मृदा की अधिक अम्लीयता को सहन कर सकता है, जबकि नील हरित शैवाल मृदा की 5.5 पी. एच. से अधिक अम्लता पर नहीं पाये जाते। साथ ही फोटोट्रोफिक (phototrophic) होने के कारण ये वन क्षेत्र के वन्द आच्छादन में अधिक सक्रिय नहीं होते हैं।

(II) *फेकल्टेटिव एनेइरोब्स* (*Facultative anaerobes*) एवं *माइक्रोएरोफिल्स* (*microaerophilles*) : इस समूह के अन्तर्गत वे ही जीवाणु पाये जाते हैं जिसमें कुछ मृतजीवी (saprophytes) जैसे *बैसीलस* (*Bacillus*), *क्लेबसिला* (*Klebsilla*), *रियोबैसीलस* (*Rhiobacillus*) एवं *एजोस्प्रीलम* (*Azospirillum*) तथा अन्य फोटोट्रोफिक *रोडोस्प्रीलम* (*Rhodospirillum*) हैं।

(III) **एनेइरोब्स (Anaerobes)** : इसके अन्तर्गत भी केवल जीवाणु ही पाये जाते हैं जिनमें कि कुछ मृतजीवी तथा कुछ स्वजीवी होते हैं। मृतजीवी में क्लोस्ट्रिडियम तथा डिसल्फोविबो, क्लोस्ट्रिडियम तथा वैसीलस जाति इन्डोस्पोर (endosphore) बनाते हैं अतः ये प्रतिकूल वातावरण में भी जीवित रह सकते हैं तथा मृदा की पी. एच. 2.0 से भी कम पी.एच. (pH) सहन कर सकते हैं। ये वन की कई प्रकार की मृदा में पाये जाते हैं तथा मुक्त अवस्था में पाये जाने वाले जीवाणुओं द्वारा वन मृदा में स्थिर की गयी नाइट्रोजन के लिये मुख्य भूमिका निभाते हैं।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया : नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वातावरणीय नाइट्रोजन का अमोनिया में अपचयन होता है तथा यह एक जैवीय पारिस्थितिकीय प्रक्रम है। सभी हरे–भरे पौधों को अमीनो अम्ल/प्रोटीन के संश्लेषण के लिए नाइट्रोजन, अमोनियम (NH_4+) तथा नाइट्रेट (NO_3-) के रूप में आवश्यक होती है। नाइट्रोजन अणु में अतिस्थिर त्रिसहसंयोजक वन्ध (N≡H) पाया जाता है। सभी प्राणियों में केवल जीवाणु तथा साइनोबेक्टीरिया जिनमें हिटरोसिस्टस (Heterocysts) पाया जाता है इस वन्ध को अपचयित कर सकते हैं अभी तक एक भी उच्च पादप ज्ञात नहीं है जो कि सिम्बियोन्ट (Symbiont) की अनुपस्थिति में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर सकता हो। इनमें अधिकांशतः या तो पादपों के साथ या संयुक्त अवस्था में या स्वतंत्र अवस्था में पाये जाते हैं जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु पादपों की जड़ों में जीवाणीय तन्तुओं के रूप में मूलरोम के द्वारा प्रवेश करते हैं। जब संक्रमित तंतु कोशिका के प्लाज्मा/तरल में प्रवेश करता है तब इसकी भित्ति घुल जाती है तथा जीवाणु को कारटिकल कोशिका के तह में छोड़ दिया जाता है जो कि बाद में वृद्धि करके जड़ नोड्यूल/ग्रन्थि में परिवर्तित हो जाता है। नोड्यूल

में बैक्टीरिया मध्य भाग में रहता है तथा जड़ की परिधि का भाग एन्डोडर्मिस तथा वैस्कूलर वण्डल (bundle) की तरह कार्य करता है जो कि जड़ के प्रवाहक तंत्र के साथ सम्बन्ध बनाकर भोजन को ग्रहण करता है। नोड्यूल के अन्दर गुलाबी रंग का एक पिगमेन्ट (pigment) होता है जिसको लैगिमोग्लोबिन नाम दिया गया है। यह पिगमेन्ट रक्त में पाये जाने वाले हीमोग्लोविन के समान आक्सीजन वाहक के रूप में कार्य करता है तथा बिना किसी नुकसान के बैक्टीरिया को ए. टी.पी. निर्माण के लिए प्रचुर मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध कराता है भिन्न–भिन्न प्रकार के लैगिमोग्लोविन में भिन्न प्रोटीन मियोटीस पायी जाती है जो कि अमीनो अम्लों का निर्माण करती है। उनकी ऑक्सीजन उपलब्ध कराने की क्षमता भी अलग–अलग तथा अलग–अलग जीन्स के द्वारा कोडिट किये जाते हैं। नाइट्रोजिनेज इन्जाइम के द्वारा नाइट्रोजन का अमोनिया में अपचयन होता है तथा नाइट्रोजन स्थिरिकरण एक वायवीय प्रक्रम है। अतः प्रत्येक नोड्यूल में ऑक्सीजन को रोकने के लिऐ एक प्रक्रम का होना आवश्यक है क्योंकि यही नाइट्रोजन स्थिरिकरण का स्थान है।

लेग्यूम द्वारा नाइट्रोजन स्थिरिकरण की मात्रा नोड्यूल में पाये जाने वाले लैगिमोग्लोविन तथा बैक्टीरिया को ऊत्तक की मात्रा पर निर्भर करता है। मृदा को पोषण देने वाले लेग्यूम, राइजोवियम की जनसंख्या को बढ़ाते हैं। कभी–कभी तो 10,00,000 कोशिका/ग्राम तक जो कि इस उपज के लिये असरदार या बेअसरदार हो सकते हैं। सहजीविता में राइजोबियम या फ्रैंकिया दोनों ही उच्चदर से नाइट्रोजन स्थिरण करते हैं। नाइट्रोजन स्थिरीकरण एक अत्यन्त ऊर्जा उपभोगी प्रक्रम है। अतः इसके लिये अधिक मात्रा में प्रकाश संश्लेषण की दर प्रकाश की तीव्रता तथा प्रकाश संश्लेषण के लिए प्राप्त स्थान से प्रभावित होती है। कोई भी प्रक्रम जो प्रकाश संश्लेषण में पौधे की वृद्धि को प्रभावित करता है वह नाइट्रोजन स्थिरिकरण को भी प्रभावित करता है। मृदा की पी. एच. (pH) बहुत ही महत्वूपर्ण होती है। 4.5–5.5 से कम पी. एच. होने पर नोड्यूल का निर्माण रूक जाता है। कुछ एक्टिनोराइजल पेड़ जैसे कि अतीस (*Alnus*) तथा काफल (*Myrica*) में पी.एच. 4.5 से कम होने पर ही नोड्यूल बनते हैं जबकि नाइट्रोजन स्थिरिकरण कम हो जाता है। उच्च आन्तरिक एवं बाह्य अमोनियम (NH_4+) की सांन्द्रता भी नाइट्रोजन स्थिरिकरण को रोकता है।

नाइट्रोजन स्थिरिकरण की महत्ता : कृषि के प्रारम्भ से ही लेग्यूम के द्वारा मृदा को उपजाऊ बनाने में इसकी महत्ता को जाना गया है। लम्बे समय से ही यह जाना जाता है कि बिना लेग्यूम पादपों की लगातार खेती से मृदा की उर्वरक क्षमता घट जाती है तथा कृषि उत्पाद भी कम प्राप्त होता है। परन्तु एल्फा–एल्फा (Alfalta), सोयाबीन, क्लोवर आदि जैसी उपज की सहायता से इसे पुनः स्थापित किया जा सकता है। बिना फलीदार तथा फलीदार पादपों के साथ–साथ खेती करने से अधिक उपज मिलती है। नाइट्रोजन स्थिरिकरण तंत्र को रखने वाले वृक्षों का बंजर भूमि तथा कृषि वानिकी कार्यक्रमों में उपयोग करके मृदा को सुधारा तथा जैवभार का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के लिये *पापुलस ट्रिकोकार्पा* (*Populus trichocarpa*) का रेड एल्डर के साथ लगाने पर इसके शुष्क भार में सामान्य की तुलना से 35 प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी तथा मृदा में नाइट्रोजन की भी वृद्धि पायी गयी। चीड़ (*Pinus roxburghii*) को काफल (*Myrica rubra*) के साथ उगने पर चीड़ में वृद्धि प्राप्त होती है। *इलेग्नस अम्बैलाटा* (*Elaeagnus umbellata*) को जब अखरोट के साथ लगाते हैं तब इसकी लम्बाई तथा व्यास में क्रमशः 70% तथा 76% वृद्धि पायी गयी।

असहजीवी की वार्षिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण की दर 1–2 कि.ग्रा. प्रति है. होती है जबकि जैविक नाइट्रोजन स्थिरिकरण अजैविक नाइट्रोजन स्थिरिकरण से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इसके अर्न्तगत नाइट्रोजन एक विविध कार्बनिक पदार्थ के रूप में बाहर निकलती है जो कि अन्य जीवाणवीय प्रक्रमों को बढ़ा सकती है। सड़े गले पदार्थ (जिनमें कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात उच्च होता है) के साथ पाये जाने वाले नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु वैसीडियोमाइ– सिटिस प्रकार के कवकों को नाइट्रोजन की कमी वाले पदार्थों पर आक्रमण करने के लिये नाइट्रोजन स्त्रोत उपलब्ध कराते हैं। लेग्यूम के द्वारा लगभग 14–35 मिलियन टन प्रति वर्ष जबकि लेग्यूमविहीन पादपों द्वारा 5 मिलियन टन प्रति वर्ष नाइट्रोजन स्थिर किया जाता है। आजकल उर्वरक के स्थान पर लेग्यूम मृदा में अधिक नाइट्रोजन स्थिर करते हैं।

बंजर भूमि, सामाजिक कृषि तथा वानिकी कार्यक्रमों के अन्तर्गत उच्च स्तर पर नाइट्रोजन स्थिर करने वाले पेड़ों की जाति लगाने के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाये जा सकते हैं :

(I) घातक कारकों की रोकथाम जैसे कि अत्यधिक जल भराव, क्षारीयता, अम्लीयता, एलिलोपैथी तथा जल रिसाव रोकथाम अच्छे निकास द्वारा तथा मेजवान पौधों के मध्य सहजीविता द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने के लिये पहले ही अति आवश्यक है।

(II) यदि मेजबान परजीवी सम्बन्ध स्थापित करने में असक्षम हो तो तब निम्नलिखित तरीके अपनाये जा सकते हैं।

(अ) बीजों को व्यावसायिक रूप से प्राप्त इनोकुलम से युक्त करके लेग्यूम पौधों को लगाया जा सकता है।

(ब) मुख्य पौधे की जड़ की मिट्टी को इकट्ठा करके नये पौधों को लगाने वाले स्थान में मिला देना चाहिए।

(स) एक ही उपजाति के पेड़–पौधों से प्राप्त नाड्यूल इकट्ठा करके, पीसकर उनके जलीय मिश्रण को नयी जगह पर लगने वाले पौधों की जड़ के पास मृदा में मिला देना चाहिए।

(III) यदि सम्भव हो तो पौधे की स्थापना की प्रारम्भिक अवस्था में नाइट्रोजन की फोस्फोरस एवं पोटेशियम के साथ कुछ मात्रा मिला देनी चाहिए, जो कि पौधों की वृद्धि के लिये एक उत्प्रेरक का कार्य करती है, साथ ही साथ मेजमान–परजीवी सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए भी प्रेरक की तरह कार्य करती है।

नाइट्रोजन स्थिरिकरण के लाभ :

1. लम्बे समय तक नाइट्रोजन की लगातार आपूर्ति होना
2. रिसाव तथा वाष्प के द्वारा हानि कम होती है।
3. यह कार्बनिक पदार्थों का स्त्रोत है।
4. भूमि अधिधारकों के पास नाइट्रोजन उर्वरकों की कमी तथा इन्हे प्रयुक्त करने के तरीकों की कमी के कारण यह आकर्षक होता है।

हानि

1. नाइट्रोजन स्थिरक जातियों के संवर्द्धन तथा विज्ञान की कमी के कारण भली भांति उपयोग नहीं होता है।
2. उर्वरकता के बढ़ने में लम्बे समय की आवश्यकता होती है।
3. मुख्य वनस्पति के लिए वेजीटेटिव स्त्रोत का संघर्ष बढ़ जाता है।
4. व्यवस्थित करने में जटिल होता है।

निष्कर्ष :

सामान्यतः यह माना जाता है कि नाइट्रोजन स्थिरक से प्राप्त तुरन्त लाभ अकार्बनिक नाइट्रोजन उर्वरक के उपयोग से भली प्रकार से बराबरी नहीं कर पाता है किन्तु लम्बे समय के लाभ के लिये जैसे कि मृदा सुधार के साथ बढ़ी उपज तथा सुरक्षा, नाइट्रोजन उपयोग की बढ़ी क्षमता कम वायु तथा जल प्रदूषण में कमी इत्यादि में इसके लाभ अकार्बनिक उर्वरक की अपेक्षा अधिक है।

यद्यपि वन कर्मियों के पास वानिकी कार्यक्रमों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण तंत्र को लागू करने के लिए बहुत से अवसर हैं, परन्तु सहजीविता (symbiosis) को प्रभावित करने वाले कारक तथा भिन्न–भिन्न क्षेत्रों पर सही संर्वधन पद्धतियों की तकनीकी में बहुत अन्तर है। सूक्ष्म जीवाणुओं के विशालतम भण्डार से स्थिर स्ट्रेन्स (strains) को छांटकर उनकी पहचान करने की आवश्यकता है, जो कि आसानी से वातावरणीय नाइट्रोजन को स्थिर कर सके। पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए विपरीत जलवायवीय स्थिति में भी आसानी से वातावरणीय नाइट्रोजन को स्थिर कर सकें। बंजर भूमियों के वनीकरण और ईंधन काष्ट उत्पादन में विशाल लक्ष्यों को पूरा करने के सन्दर्भ में जैविकीय नाइट्रोजन स्थिरक को उपयोग में लाने के लिए इस समय नाइट्रोजन स्थिरक वृक्ष जातियों का अत्यधिक उपयोग तथा वन संवर्धन प्रणालियों में अन्य सहजीवी पद्धतियों को व्यवहार में लाना बहुत आवश्यक है।

अब देखिये न मेरी कारगुज़ारी
कि मैं मँगनी के घोड़े पर
सवारी कर

ठाकुर साहब के लिए उन की रियाया से लगान
और सेठ साहब के लिए पंसार हट्टे की हर दुकान
से किराया

वसूल कर लाया हूँ।
थैली वाले को थैली
तोड़े वाले को तोड़ा
और घोड़े वाले को घोड़ा

सब को सब का लौटा दिया
अब मेरे पास यह घमंड है
कि सारा समाज मेरा एहसानमन्द है।

— अज्ञेय

उच्च उपज देने वाली क्लोनीय वृक्षारोपण के लिये नये विलायती सारूँ

डॉ. रेखा आर. वारियर एवं श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

भारत में 1868 के दौरान ईंधन काष्ठ की माँग को पूरा करने के लिये विलायती सारूँ को पेश किया गया। विलायती सारूँ अब दक्षिण भारत में काफी क्षेत्र में फैला हुआ है क्योंकि इसमें मिट्टी की विस्तृत श्रृंखला एवं जलवायु परिस्थितियों में बढ़ने की क्षमता है। यह उच्च घनत्व वृक्षारोपण (प्रति हैक्टेयर 10000) के लिये उपयुक्त है और सिंचाई एवं पोषक तत्वों के होने पर यह अच्छी प्रतिक्रिया देता है। विलायती सारूँ की खेती तकनीक सरल है और श्रम गहन नहीं लगता है। इसकी लागत भी कम है।

नये क्लोन का विकास :

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान ने पिछले 10 वर्षों में दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों से जनन द्रव्य (Germplasm) के विकास के लिये बकाया 100 पेड़ों को चुनकर परीक्षण किये, जिसमें से व्यावसायिक खेती के लिये चार अच्छे क्लोनों का चयन किया है। ये क्लोन वानस्पतिक रूप में प्रवर्धित किये जाते है। यह वृक्षारोपण एक–समान तेजी से बढ़ता है और लकड़ी की उत्पादन में भी वृद्धि होती है।

उपज में वृद्धि :

काष्ठ का उत्पादन स्थान, उत्पादन तरीके और कटान पर निर्भर है। 4 साल का वृक्षारोपण सिंचाई और उर्वरक अनुप्रयोग से प्रति हैक्टेयर 100 से 150 टन (40 से 60 टन प्रति एकड़) सूखी लकड़ी (20 से.मी. परिधि) की उपज प्राप्त होती है। सिंचाई न होने की स्थिति में 6 साल में प्रति हैक्टेयर 75 से 100 टन की औसत उपज मिलती है। इसकी उपज खेती की अवधि, मिट्ठी की गुणवत्ता और वर्षा पर निर्भर करती है।

चार वर्ष तक सिंचाई वाले क्षेत्र में अमिथुनक की औसत ऊँचाई 45 फीट और 36 से.मी. परिधि होती है। एक पेड़ से करीब 45 किलो लकड़ी मिलती है और क्योंकि इसकी वृद्धि में समानता के कारण हर एकड़ से लगभग 81 टन काष्ठ मिलती है। इन चार क्लोनों का घनत्व स्थानीय विलायती सारूँ से बराबर या अधिक होता है। तेज वृद्धि के कारण इसके वजन में कोई कमी नहीं होती है। सीधे तने होने के कारण अधिक संख्या में डंडे प्राप्त होते है जिसकी लागत ईंधन या लकडी की लुगदी (Pulpwood) से भी अधिक है।

वानस्पतिक प्रचार :

नये प्ररोह को विकसित करने से उत्कृष्ट विलायती सारूँ पेड़ों को प्रचारित किया जा सकता है। ऐसे वृक्षरोपण में पौधे समानता एवं बेहतर वृद्धि दिखाते है। चयनित पेड़ से एकत्र डाली को 8–10 से.मी. लंबाई में काट दिया जाता है और उसे 5% कीटनाशक (बविस्टिन टी.एम.) से धोया जाता है। प्ररोह की निचले भाग को हार्मोन, इंडोल ब्यूटिरिक एसिड (व्यावसायिक नामः सेराडिक्स बी.टी.एम) में डुबाया जाता है। उसके बाद कटाई को खुरदरा रेशा (Coir pith) में पेश किया जाता है और उसे पालिथिन शीट से बने प्रवर्धन चेम्बर या मिस्ट चेम्बर में रखा जाता है। 15 से 20 दिनों में इसका विकास हो जाता है और फिर उसे पॉलिबेगों में प्रत्यारोपित किया जाता है। यह अंकुर के तरह ही बढ़ता है।

फ्रेन्किया का संरोपण :

एक्टिनोमैसिट नामक *फ्रेन्किया* के साथ सहजीवी सम्बन्ध होने के कारण विलायती सारूँ को एक नाइट्रोजन फिक्सिंग पेड़ कहा जाता है। यह पिंड नामक जडों में विशेष संरचना के साथ वायुमण्डलीय नाइट्रोजन तैयार करता है। ऊर्जायुक्त विकास के साथ–साथ रोपण स्थिति में अनुकूलनशीलता को बढ़ावा देने के लिये विलायती सारूँ वृक्षारोपण में फ्रेन्किया के संक्रमण को सुनिश्चित करना अत्यन्त आवश्यक है। विलायती सारूँ वृक्षारोपण के मुख्य क्यारी में ऊपरी मिट्ठी को मिलाने से फ्रेन्किया का संरोपण आसानी से किया जा सकता है। जैव ऊर्वरकों के अनुप्रयोग जैसे– फोस्फोबेक्टीरियम और ग्लोमस फेसिकुलेटम से भी वृक्षारोपण के गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है।

खेती करने की विधि :

सिंचाई उपलब्ध होने पर साल भर में सभी प्रकार के मिट्टी में चार नये अमिथुनकों को लगाया जा सकता है। वर्षा होने पर रोपण के बाद पहले वर्ष के दौरान सुरक्षात्मक सिंचाई करना आवश्यक है। एक घन फुट गढ्ढे में 1.5'1.5 मीटर की दूरी पर प्रति एकड़ 1800 पौधे लगाना चाहिए। प्रत्येक पौधों के लिये 10 ग्राम अधिभास्वीय बेसल खुराक की आवश्यकता है। उसके बाद प्रति एकड 11 किलो यूरिया और 94 किलो

अधिभास्वीय को चार चरणों में दिया जाना चाहिए : स्थापना के तुरंत बाद, रोपण के बाद 6,12,18 महिनों में। पहले वर्ष के दौरान कम से कम चार बार निराई की आवश्यकता है।

आई.एफ.जी.टी.बी.– सी.ई.– 1	
प्रकृति	आई.एफ.जी.टी.बी.– सीई 1
प्रजातियाँ	विलायती सारूँ
राज्य/क्षेत्र	तमिलनाडु, कर्नाटक और पुदुचेरी
वंशानुक्रम	पापुआ न्यू गिनी से इला बीच की उत्पत्ति (Ela Beach provenance from Papua New Guinea)
चयन की विधि	इन्डेक्स चयन विधि
लिंग	द्विलिंगी
विद्यमानत की आवृत्ति	100.0%
लम्बाई (7 'वा' वर्ष)	11.81 मी.
डी.बी.इच. (7'वा' वर्ष)	9.51 से.मी.
सीधापन	5.75
शाखन अभ्यस्तता	उर्ध्वाकार
बिमारी	शून्य
कीड़े	शून्य
सिफारिश की खेती स्थान	अन्तर्देशीय

आई.एफ.जी.टी.बी.– सी.ई.– 2	
प्रकृति	आई.एफ.जी.टी.बी.– सीई 2
प्रजातियाँ	विलायती सारूँ
राज्य/क्षेत्र	तमिलनाडु, कर्नाटक और पुदुचेरी
वंशानुक्रम	थाइलैंड से हद चाउ मइ ट्रेंग की उत्पत्ति (Had Chao Mai Trang provenance from Thailand)
चयन की विधि	इन्डेक्स चयन विधि
लिंग	स्त्रीलिंग
विद्यमानत की आवृत्ति	100.0%
लम्बाई (7 'वा' वर्ष)	10.91 मी.
डी.बी.इच. (7'वा' वर्ष)	8.76 से.मी.
सीधापन	4.73
शाखन अभ्यस्तता	क्षैतिज
बिमारी	शून्य
कीड़े	शून्य
सिफारिश की खेती स्थान	तटीय और अन्तर्देशीय

आई.एफ.जी.टी.बी.– सी.ई.– 3	
प्रकृति	आई.एफ.जी.टी.बी.– सीई 3
प्रजातियाँ	विलायती सारूँ
राज्य/क्षेत्र	तमिलनाडु, कर्नाटक और पुदुचेरी
वंशानुक्रम	थाइलैंड से बन कम पुअम रानो की उत्पत्ति (Ban Kam Phuam Rano provenance from Thailand)
चयन की विधि	इन्डेक्स चयन विधि
लिंग	स्त्रीलिंग
विद्यमानत की आवृत्ति	100.0%
लम्बाई (7 'वा' वर्ष)	12.1 मी.
डी.बी.इच. (7'वा' वर्ष)	10.14 से.मी.
सीधापन	4.46
शाखन अभ्यस्तता	क्षैतिज
बिमारी	शून्य
कीड़े	शून्य
सिफारिश की खेती स्थान	तटीय और अन्तर्देशीय

आई.एफ.जी.टी.बी.– सी.ई.– 4	
प्रकृति	आई.एफ.जी.टी.बी.– सीई 4
प्रजातियाँ	विलायती सारूँ
राज्य/क्षेत्र	तमिलनाडु, कर्नाटक और पुदुचेरी
वंशानुक्रम	अण्डमान द्वीप से कालिपुर की उत्पत्ति (Kalipur Provenance from Andaman Island)
चयन की विधि	इन्डेक्स चयन विधि
लिंग	द्विलिंग
विद्यमानत की आवृत्ति	100.0%
लम्बाई (7 'वा' वर्ष)	11.95 मी.
डी.बी.इच. (7'वा' वर्ष)	9.37 से.मी.
सीधापन	4.74
शाखन अभ्यस्तता	उर्ध्वाकार
बिमारी	शून्य
कीड़े	शून्य
सिफारिश की खेती स्थान	अन्तर्देशीय

विविधा

विविधा

मध्य प्रदेश के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में विलुप्त होती जड़ी बूटी प्रजातियों के विनाशविहीन विदोहन के लिये प्रसार-प्रचार का महत्व एवं संरक्षण

डॉ. राजीव राय
उष्ण कटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

विश्व में भारतवर्ष जिसके मध्य में एक ऐसा प्रदेश जो कि म.प्र. के नाम से प्रचलित है, एक आदिवासी बाहुल्य प्रदेश है, जहाँ वनों में ना केवल औषधियाँ की भरमार है, बल्कि प्रदेश को सर्म्पूण विश्व को रोग मुक्त करने का सामर्थ्य ईश्वर ने प्रदान किया है। म.प्र. में मुख्यतः 28 जनजातियाँ विभिन्न भूखण्डों में आदिकाल से निवास कर रही है। इस प्रदेश का वनौषधि उपयोग का इतिहास पुराना है। जंगलों में निवास करने वाले आदिवासी एवं वनवासी वनौषधियों से ही स्वास्थ्य की रक्षा करते आ रहे है।

म.प्र. के वन अंचलों के उत्तरी भाग में सहारिया, अगारिया, मझवार, भुमिया, दमोदर आदि निवास करते हैं, मध्य भाग में बैगा, गोद, झारिया, पारधी, कोरकू आदि निवास करते हैं, पूर्वी भाग में कोल, पनिका, खैरवार, परजा आदि निवास करते हैं, एवं पश्चिम भाग में भूलि, भिलाला , मीणा, आदि प्रमुख्य रूप से निवास करते हैं। वर्तमान में प्रदेश में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 12,233,474 है जो कि प्रदेश की जनसंख्या का 21 प्रतिशत है।

म.प्र. की पहाड़ी श्रृंखलाओं में पठार, पहाड़ों के तराई क्षेत्र, पहाड़ों के घाटिया व ढाल वाले स्थल है ऐसे वन आँचलों में यह आदिवासी आदिकाल से वर्तमान परिस्थितियों तक निवास कर रहे है। इन क्षेत्रों में मीलों दूर तक सड़क, बिजली, अस्पताल, बाजार, आधुनिक संसाधन उपलब्ध नहीं है। यह आदिवासी समूह के मानव गण घनें जंगलों में अकेले बिरले घूमते है एवं इस सदी में भी धनुष बाण के प्रयोग से अपनी रक्षा करते है व जंगली जानवरों का शिकार भी करते है।

वर्ष 2000 से 2007 तक इन जनजातियों के द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली वनोषधियों पर जानकारी एकत्रित की गई जिसमें सभी मुख्य जनजाति समूह से विभिन्न अंचलों में घूम–घूमकर पौधों के उपयोग की जानकारी ली गई व कैमरे से चित्र खीचे गये व रिपोर्ट बनाई गई जिसके कुछ मुख्य तत्व सारांश में प्रस्तुत किये जा रहे है। वन अंचलों में आदिवासी वैदराज, महिला व पुरूषों से चिकित्सा व्याधि, पौधों की स्थानीय पहचान व वनस्पति शास्त्र में नामकरण आदि की परख वैज्ञानिक पद्धति से की गई व शोध पत्र प्रसारित किये गये।

वर्तमान में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हर्बल वन उपज का प्रयोग एवं उनकी माँग धीरे धीरे विकासशील देशों के साथ ही विकसित देशों में बढ़ गई है। आज के वैज्ञानिक युग में कई तरह की औषधियाँ, सुगंधित पदार्थों, खाद्य पदार्थो तथा सौन्दर्य प्रसाधनों के कृत्रिम रसायनों का प्रयोग होने के कारण मानव जीवन में कई प्रकार की जटिलताएं उत्पन्न हो रही है। इससे औषधीय व सुगंधित पौधों का महत्व दैनिक जीवन में बढ़ गया है।

जटाशंकर, कचनार की जड़, सरई छाल, गुलकावली के फूल का विश्व स्तर पर औषधीय पौधों एवं चिकित्सा में महत्व बहुत तेजी से बढ़ गया है। हमारे प्रदेश के वन अँचलों में मुख्य रूप से पायी जाने वाली प्रजातियां वन प्याज, कियोकंद, बराही कंद, विदारी कंद, तोलिया कंद, तीखुर, वन सूरन, बायविदिशए गटारन, भिलवा, चित्रक, चिरायता, आडूसा, मालकॉगनी, अश्वगंधा, खस, कालिहारी, सर्पगंधा, चिरोंजी, हर्रा, बहेड़ा काली मूसली, सफेद मूसली, मरोड़फली, गिलोय, शंखपुष्पी, गुडमार, वन तुलसी, अमलतास, सतावर, धूप, शिकाकाई , इसबगोल, नीम, मोठी, पोदीना, कालाजीरा, केवाच, ब्रह्मही, भिलवा, इंद्रायण, कुसम फूल, अर्जुन छाल, कूड़ा छाल, भारंगी छाल, प्रियंगूफूल, गुलाब, फूल पलाश फूल, धवई फूल, गेंदा लकड़ी, कपूर कचरी, तेज बल, वनपषा, मेहंदी, रतनजोत, नागकेशर, महुआ, इमली, वन अदरक, गुरबेल, करौदा, पारस पीपर, निरगुण्डी, शिवलिंगी कुछ मुख्य प्रजातियाँ अलग–अलग वन अंचलों में प्रचलित है।

मुख्य औषधीय पौधों का उपयोग मानव आदिकाल से विभिन्न रोगों के निवारण के लिये करता आ रहा है। अधिकांश औषधीय पौधे वनों से ही एकत्रित किये जाते है, परंतु उनके लगातार उपयोग से इसकी उपलब्धता धीरे धीरे घटती जा रही है। विगत कुछ वर्षों से बहुत से पौधों की माँग काफी बढ़ गई है। वनों में भ्रमण के दौरान आमतौर से विभिन्न अंचलों में देखा गया कि परिवार इनके एकत्रीकरण में जुड़े है, ऐसे संग्रहणकर्ता इनके पुनरूत्पादन के बारे में न ही चिन्तन करते हैं न ही कोई ठोस प्रयास करते है, जिनके कारण ऐसे पौधे जिनकी वनोषधि निमार्ण में माँग राष्ट्रीय / अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिक है धीरे–धीरे विलुप्त होने के कगार पर हैं।

वन औषधीय पौधे का नाम जड़ी बूटियों के गुण व उपयोग विवरण

क्र. सं.	पौधे का नाम	उपयोग में लाया जाने वाला भाग	गुण व उपयोग विवरण
1.	अर्जुन चूर्ण	छाल	उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, लीवर के रोग, उपचार में, खून की कमी, कमजोरी
2.	आँवला चूर्ण	फल	आम्लता, कब्ज, आंखों की रोशनी, रक्त पित्त, धातुवर्धक बदहजमी, प्रमेय हरने वाले रसायन के उपचार में उपयोगी
3.	शिवलिंगी चूर्ण	बीज फल	बलवर्धक, शुकाणुओं में वृद्धि, महावारी के तीसरे दिन करेले के साथ बाँझ स्त्री को बासी मुँह, दो चम्मच संतान प्राप्ति के लिए गर्मपानी या गर्म दूध के साथ गुड़ / शक्कर युक्त दूध 2–3 दिन गर्भधारण तक
4.	चिरायता (चूर्ण)	फल व पत्ती पाउडर	ज्वार, मलेरिया बुखार, खुजली, चर्म रोग, उपचार में उपयोग
5.	चिरचिटा	पंचाग	सिर दर्द के साथ ज्वर व मलेरिया बुखार आदि मे उपयोग
6.	कालमेघ	पंचाग	पीलिया, मोतीझिरा, बुखार मलेरिया ज्वर के उपचार में उपयोग
7.	वनझुरिया	जड़ का काढ़ा	चक्कर, कमजोरी, पीलिया ग्रस्त मरीज के उपचार में उपयोग
8.	काली मूसली	जड़	नपुंसकता, कमजोरी, शीघ्रपतन के उपचार में उपयोग
9.	बच	राईजोम पेस्ट	सर्दी, खाँसी, आँखों की कम रोशनी
10.	मालकॉगनी	बीज से तेल	रूयेमेटिक दर्द, लकवा रोग, गाठियावात, जोड़ों का दर्द, लकवा ग्रस्त
11.	रतन जोत (तेल)	बीज से तेल	गठियावात, जोड़ों का दर्द कमर दर्द के उपचार में उपयोग
12.	निर्गुण्डी तेल	बीज पत्ती का तेल	जोड़ों का दर्द लकवा रोग में 2–3 महीने में लाभ। तेल का उपयोग
13.	आमा हल्दी (पेस्ट)	पत्ती व पंचाग	खुजली, दाद, खाज आदि में बाब्राईटीस , खाँसी, सर्दी जुखाम के उपचार में उपयोग
14.	एलोवेरा (पेस्ट)	पत्ती का पेस्ट (जैल का प्रयोग)	सौंदर्य प्रसाधन, चेहरे से दाग व झुर्रियां हटाना
15.	गिलोय चूर्ण	जड़, पत्ती, फल	पीलिया रोग में लाभ ,गठिया रोग, जीर्ण ज्वर के उपचार में उपयोग
16.	भुई आँवला चूर्ण	पंचाग व पत्ती	पीलिया रोग में लाभ, कमजोरी, शीध्रपतन बदहजमी व उपचार व
17.	कसौधी	पंचाग	उपयोग पीलिया रोग में उपयोगी, शक्तिवर्धक
18.	केवाच	बींज, जड़, पत्ता	काम शक्ति वर्धक, कमजोरी के उपचार में उपयोगी
19.	ब्रह्मही	पंचाग	स्मरण शक्ति वृद्धि अनिद्रा, मिर्गी के उपचार में उपयोगी
20.	गुणभार	पत्ता, जड़	पेचिस, मधुमेह, खाँसी के उपचार में उपयोगी
21.	पीपल	जड़, छाल	कफ, पित्त, स्त्रियों का बांझपन दूर करने में उपयोगी
22.	जामुन	गुठली, छाल	एक्जीमा, खूनी पेचिस आदि मे उपचार हेतु
23.	भृंगराज	पंचाग	बालों को झड़ने से बचाना, धने करना, बालों में काला रंगरोगन के लिय उपयोग
24.	विलवा	फल, गूदा	बवासीर, कब्ज, खूनी पेचिस आदि में उपचार में उपयोगी
25.	सनाय	पत्तियाँ	कब्ज, उदर विकार उपचार में उपयोगी
26.	सतावर	कंदमूल	वीर्य वृद्धि, स्त्रियों में दूध की वृद्वि, रक्त प्रदाय उपचार में उपयोगी
57.	सतावर	कंदमूल	वीर्य वृद्धि, दुबलापन दूर, माता में दूध में वृद्धि, प्रसव के बाद के रोगों से मुक्ति आदि

क्र. सं.	पौधे का नाम	उपयोग में लाया जाने वाला भाग	गुण व उपयोग विवरण
28.	आपामीग	पंचाग	पथरी, दमा, सूखी खाँसी, बिच्छू के काटने से दर्द में कमी के उपचार में उपयोगी
29.	कलिहारी	कंद, बीज	चोट, जख्म, कट फटे स्थल के घाव भरने के उपचार में उपयोगी। सर्पदंश में जहर कम करने में उपयोगी
30.	मुनगा	वृक्ष का तना व छाल पेस्ट	पेस्ट का प्रयोग सर्दी, जुखाम, अस्थमा आदि रोग में उपयोगी
31.	मुलेठी	कंद मूल, जड़	पानी में तैयार एकेटेवट का उपयोग दमा, सर्दी व जुखाम हेतु
32.	जंगली हल्दी	रायजोम	पत्तियों का उपयोग झाला जखम, कटे फटे अंगों के उपचार–गाँठ का उपयोग, दूध में सर्दी, दमा आदि में प्रयोग
33.	करंज	फल का तेल (बीज से तेल)	तेल का उपयोग सूजन, दर्द, गठियाबात्, चर्म रोग, खुजली आदि में
34.	सेमल	फल	किडनी में फोडा, महिलाओं में श्वेत प्रदर के उपचार में प्रयोग।
35.	बैचाँदी चूर्ण	पंचाग कंद	रक्तचाप, बीपी, आदि में उपयोग
36.	बायबिड़िग	बीज	पेट के कीड़े, दांतों का दर्द उपचार में उपयोगी
37.	चित्रक	जड़	लेप का प्रयोग सिर दर्द, बदन दर्द, सूजन, आदि रोग के उपचार में उपयोगी।
38.	शंख पुष्पी	पंचाग	याददाशत में लाभ, ब्रेन टानिक के रूप में उपयोगी
39.	सनाय	पत्ती, फल	चूर्ण का उपयोग पेट में मरोड दस्त पाचन क्रिया में सुधार के लिये उपयोगी
40.	हथजोड़	पत्तियाँ	पेस्ट बनाकर हड्डी जोडने में उपयोगी
41.	चितवार	लकड़ी	चितावर व केवकंद का लेप बनाकर टूटी हड्डी जोड़ने में उपयोगी
42.	नागदाना व करई	पंचाग	लेप बनाकर खुजली के स्थान पर प्रयोग
43.	इंद्रावन	जड़ लेप	सर्पदंश में जड़ का उपयोग व लेप काटे स्थान पर खून निकाल कर लगाने से पीड़ा व जहर के निष्कासन में लाभ
44.	हर्रा	पत्तियों का रस	खाँसी के उपचार में पत्तियों के रस का उपयोग
45.	अश्वगंधा	जड़	मोटापन, शक्ति वर्धक, वीर्यवर्धक, गठियावात के उपचार में उपयोगी
46.	हर सिगार	पत्ती छाल	दमा रोग, जलन, गंजापन के उपचार में उपयोगी
47.	सर्पगंधा	जड़	उच्च रक्तचाप, पागलपन, मिर्गी रोग के उपचार में उपयोगी
48.	बच	जड़	श्वेत दाग, अतिसार, स्मरण शक्तिवर्धक रोग के उपचार में उपयोगी
49.	गुग्गल	गोंद	रक्तशोधक, बवासीर, कृमिनाशक
50	गुलकावली	अर्क	आँख दर्द, आँख सूजन, जलन के उपचार में उपयोगी
51.	गुड़मार	पत्ती	मधुमेह, पेशाब जलन, सर्पविष के उपचार में उपयोगी
52.	पुनर्नवा	पंचाग	बिच्छू दंश, उदर रोग, पीलिया बात आदि के उपचार में उपयोगी
53.	केवकंद	कंद	सर्पदंश, भूख बढ़ाने में

विश्व के कई विकासशील देशों में जिसमें जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, स्वेजरलैण्ड आदि में अधिक माँग है म.प्र. राज्य में गुग्गल, सर्पगंधा, सफेद मूसली, चिरायता, कालेहारी, अर्जुन वृक्ष आदि के अस्तित्व को भारी खतरा है। ऐसी 21 प्रजातियों के देश से निर्यात पर भारत सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया है। जंगलों से बेल, आँवला, अर्जुन छाल, वाले वृक्ष भी विलुप्त के खतरे पर है हमारे वन सम्पदा पर सतत् प्रबंधन की आवश्यकता है संरक्षण की आवश्यकता है।

वित्तीय संस्थायें यदि ऐसी परियोजनाओं पर वित्तीय सहायता की अनुशंसा करे तभी हम सतत् प्रबंधन की दशा में पथ पर कार्यवार हो सकेंगे और अपनी धरोहर आने वाली पीढ़ी को सौप सकेंगें। अतः इनके संरक्षण पर ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि जड़ी बूटियों का विदोहन विनाशविहीन हो। उपर्युक्त विषय काफी महत्व का है क्योंकि इससे वनस्पति के पुनरूत्पादन व गुणवत्ता पर सीधा असर पड़ता है तथा इनका संरक्षण भी आवश्यक है।

सौ बातों की एक बात है।
रोज़ सवेरे रवि आता है
दुनिया को दिन दे जाता है
लेकिन जब तम इसे निगलता
होती जग में किसे विकलता
सुख के साथी तो अनगिन हैं
लेकिन दुःख के बहुत कठिन हैं
सौ बातो की एक बात है।
अनगिन फूल नित्य खिलते हैं
हम इनसे हँस–हँस मिलते हैं
लेकिन जब ये मुरझाते हैं
तब हम इन तक कब जाते हैं
जब तक हममे साँस रहेगी
तब तक दुनिया पास रहेगी
सौ बातों की एक बात है।

सुन्दरता पर सब मरते हैं
किन्तु असुंदर से डरते हैं
जग इन दोनों का उत्तर है
जीवन इस सबके ऊपर है
सबके जीवन में क्रंदन है
लेकिन अपना–अपना मन है
सौ बातो की एक बात है ।

–रमानाथ अवस्थी

आहारीय वनस्पतियों की प्रतिआक्सीकारक एवं पोषण-भेषजीय उपादेयता

डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी, सुश्री निशात अन्जुम, श्री विकास
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

आक्सीकरण एवं व्याधियाँ

यद्यपि आक्सीकरण अभिक्रियाएँ जीवन के लिए अति महत्वपूर्ण हैं, तथापि ये हानिकारक भी हो सकती हैं। ऑक्सीकरण अभिक्रिया से मुक्तमूलक (फ्री रेडिकल) उत्पन्न होते हैं, जिनके द्वारा कोशिकाओं को क्षति पहुंचाने वाली श्रृंखला अभिक्रिया आरंभ हो जाती है। ऑक्सीकरण की सामान्य उपापचय क्रिया के दौरान मानव शरीर की कोशिकाओं में उत्पन्न होने वाले रासायनिक रूप से अत्यधिक क्रियाशील आक्सीजन मूलक रक्त संवहन क्रिया से संबंधित रोगों, शोथकारक व्याधियों, असमय वार्द्धक्य, डी.एन.ए. की क्षति, उत्परिवर्तन और कैंसर उत्पन्न करने वाली कोशिका–वृद्धि के मुख्य कारण होते हैं।

प्रतिआक्सीकारक

प्रतिआक्सीकारक (एंटीऑक्सीडेंट) ऐसे पदार्थ होते हैं, जो आक्सीकरण अभिक्रियों के घातक प्रभावों को रोकते हैं। ये स्वयं मुक्त मूलकों से ऑक्सीकृत हो जाते हैं, जिससे श्रृंखला अभिक्रिया को तोड़ने में मदद मिलती है। अतएव एंटीऑक्सीडेंट प्रायः रिड्यूसिंग एजेंट्स होते हैं, जैसे थायोल, एस्कॉर्बिक अम्ल, पॉलीफिनॉल, आदि।

पादपों एवं जन्तुओं में विविध प्रकार के प्रतिआक्सीकारकों के निर्माण एवं संग्रह की जटिल व्यवस्था पायी जाती है। इनमें ग्लुटाथिओन, विटामिन–सी, विटामिन–ई, एंजाइम (जैसे कैटालेज, सुपराक्साइड, डिस्मुटेज तथा विविध प्रकार के पेराक्सीडेज), आदि आते हैं। प्रतिआक्सीकारकों की अपर्याप्त मात्रा होने पर या प्रतिआक्सीकारक एंजाइमों के नष्ट होने से आक्सीकरण तनाव पैदा होता है, जिससे कोशिकाओं को क्षति हो सकती है या उनकी मृत्यु हो सकती है। ऐसा समझा जा रहा है कि आक्सीकरण तनाव ही अनेकों रोगों का कारण है। शरीर में स्वाभाविक रूप से कुछ प्रतिआक्सीकारक एंजाइम अभिकारक की भूमिका निभाकर मुक्त हुए मूलकों को निष्क्रिय कर देते हैं। ऐसे प्रतिआक्सीकारक भोजन के माध्यम से ग्रहण किये जा सकते हैं। दैनिक आहार में उपस्थित विटामिन ए, सी, ई, बीटा केरोटीन, सूक्ष्म मात्रिक खनिज जैसे सेलेनियम, ग्लूटैथिओन, यूरिक अम्ल एवं पॉलिफिनॉल, जैसे अवयव प्रतिआक्सीकारक की भूमिका निभाते हैं।

वनस्पतियों से प्रतिआक्सीकारक

खाद्य वनस्पतियों में उपस्थित रासायनिक यौगिकों में म्यूटाजेनिकीकरण एवं कार्सिनोजेनीकरण की प्रक्रिया को बाधित करने की प्रबल क्षमता होती है। ऐसे रासायनिक यौगिकों में प्याज एवं लहसून में पाया तने वाला एलिल सल्फाइड; बंद गोभी व पत्ता गोभी जैसी गांठदार सब्जियों में पाया जाने वाला इंडोल; सोयाबीन में पाया जाने वाला आइसोफ्लेवोन; अन्य गांठदार सब्जियों में पाया जाने वाला आइसोथियोसाइनेट; टमाटर एवं नींबू प्रजाति के फलों; गाजरों सभी प्रकार के अनाजों और गिरीदार फलों में पाये जाने वाले इलेगिक एवं फेरूलिक अम्ल; हरी चाय, काली चाय तथा अंगूर में पाया जाने वाला पॉलीफेनॉल; चेरी एवं नींबूदार फल के छिलकों में पाया जाने वाला लाअमोनीन एवं पेरिलिल अल्कोहल; टेनेपींस, हल्दी का सक्रिय रंग घटक कुर्कुमिन, आदि प्रमुख रुप से शामिल हैं। ये पादप रसायन (फाइटोकेमिकल्स) एक या अनेक प्रकार की जैवरासायनिक अभिक्रियाओं के माध्यम से प्रतिआक्सीकारक गुण प्रदर्शित करते हैं। ये या तो मुक्त हुए आक्सीजन मूलकों का अपमार्जन कर देते हैं अथवा साइटोक्रोम पी–450 एवं अन्य औषधीय चयापचयी एंजाइमो का उत्सर्जन कर सम्भावित म्यूटाजेनों तथा कार्सिनोजो को समाप्त किये जाने की प्रक्रिया को तीव्र कर देते हैं। वनस्पतिक खाद्य पदार्थों में अत्यधिक मात्रा में पाये जाने वाले फिनॉल यौगिक अपनी प्रतिआक्सीकारक

गतिविधियों के माध्यम से प्रतिरक्षात्मक प्रभाव उत्पन्न कर शरीर का ह्रास करने वाली बीमारियों को बाधित करने वाले वृहत् पादप रसायन समूह का निर्माण करते हैं। ये विशेषकर सभी ताजे फलों, सब्जियों, अनाजों, चाय, गिरीदार फलों और बीजों में पाये जाते हैं। सोयाबीन में प्रचुरता से पाये जाने वाले लिग्नान आंत्र में उपस्थित जीवाणुओं के माध्यम से हार्मोन जैसे यौगिकों का सृजन करते हैं। लिग्नान की ये चयापचयी क्रियायें एस्ट्रोजेन ग्राहियों को कुछ दुर्बलता के साथ आबद्ध कर लेती हैं। इन क्रियाओं का प्रतिआक्सीकारक प्रभाव भी होता है। बेरी, अखरोट तथा पेकैन में उपस्थित फेनोलिक लेक्टान, कार्सिनोजेन उत्पन्न करने में सहायक पदार्थों विशेषकर नाइट्रोसो यौगिकों, एफ्लोटॉक्सिन, पॉलीसाइक्लिक हाइड्रोकार्बनों की चयापचयी सक्रियताओं को बाधित करता है। अनेक प्रकार के फलों और सब्जियों में व्यापक स्तर पर

पोषक तत्व	प्रतिआक्सीकारक व अन्य स्वास्थ्यकर अभिक्रियायें
	विटामिन
विटामिन ए	शारारिक संवर्धन एवं विकास हेतु अनिवार्य तथा निश्चित प्रकार के कैंसर की रोकथाम एवं उपचार में प्रभावी
विटामिन बी 1	खाद्य के ऊर्जा में संपरिवर्तन तथा तंत्रिकीय प्रकार्यों में सहायक
विटामिन बी 2	स्वस्थ आँखें, त्वचा तथा स्नायु–प्रकार्यों में सहायक
विटामिन बी 3	खाद्य के ऊर्जा में संपरिवर्तन तथा तंत्रिकीय प्रकार्यों में सहायक
विटामिन बी 6	अत्यावश्यक प्रोटीनों का उत्पादन
विटामिन बी 12	कोशिकाओं की आनुवांशिक सामग्री के उत्पाद, आर बी सी के विरचन में सहायक, विभिन्न उपापचय–प्रतिक्रियाओं हेतु सहायक
विटामिन सी	प्रतिआक्सीकारक; स्वस्थ हड्डियों, मसूड़ों तथा दांतों का विरचन
विटामिन डी	हड्डियों एवं दांतों का निर्माण; कैलशियम का अवशोषण
विटामिन ई	प्रतिआक्सीकारक; व्याधिरोध क्षमता तंत्र का अभिवर्धन
विटामिन के	रूधिर–स्कंधन में सहायक
विटामिन के	कोशिकाओं की आनुवांशिक सामग्री के उत्पाद, आर बी सी के विरचन में सहायक, विभिन्न उपापचय–प्रतिक्रियाओं हेतु सहायक
पेंटोथैनिक अम्ल	कोलेस्ट्रॉल, स्टीरोवायड्स व वसीय अम्लों के संश्लेषण में सहायक
	खनिज
कैलशियम	हड्डियों एवं दांतों का निर्माण, स्नायु चालन
लोहा	ऊर्जा उत्पादन, उत्तकों मे ऑक्सीजन का संचरण
मैग्नीशियम	स्वस्थ स्नायु एवं पेशी प्रक्रिया के लिए आवश्यक
फास्फोरस	दृढ़ अस्थियाँ तथा दाँत, आनुवांशिक सामग्री का निर्माण
	सूक्ष्म मात्रिक तत्व
क्रोमियम	इन्सुलिन के साथ मिलकर कार्बोहाइड्रेट व वसा को ऊर्जा में परिवर्तित करने में सहायक
कोबाल्ट	विटामिन बी 12 का आवश्यक घटक
तांबा	हीमोग्लोबिन व कोलेजन का उत्पादन, पाचक पथ से लोहे का अवशोषण
आयोडीन	थायरॉएड के सही प्रकार्य के लिए आवश्यक
सिलीनियम	प्रतिआक्सीकारक; हृद–पेशियों का स्वस्थ प्रकार्य
जिंक	कोशिकाओं का पुनरूत्पादन, बच्चों का संवर्धन एवं विकास

पाये जाने वाले ट्राइहाइड्रॉक्सी साइनेमिक व्युत्पादों में शामिल पी–काउमेरिक अम्ल, कैफिक अम्ल और फेरूलिक अम्ल में नाइट्रीकरण की प्रक्रिया को रोकने की क्षमता पायी जाती है। इसी प्रकार हरी एवं किण्वित चाय में प्रचुरता से उपलब्ध फ्लेवोनाएड यौगिकों में मुक्त आक्सीजन मूलकों के अपमार्जन की क्षमता पायी जाती है। लहसुन एवं प्याज की विशिष्ट गंध का कारण क्षारीय सल्फर यौगिकों जैसे डायलिल सल्फाइड, डायलिल डिसल्फाइड, डायलिल पॉली सल्फाइड और एस–एलिल सिस्टिन में भी प्रतिआक्सीकारक गुण पाये गये हैं। एक अन्य पादप रसायन समूह इंडोल अनाक्सीकरण की प्रक्रियाओं के माध्यम से कैंसरकारी पदार्थों एवं अभिक्रियाओं को बाधित करता हैं। शरीर में आक्सीकरण तनाव तब उत्पन्न होता है, जब उत्पन्न होने वाले आक्सीजन मूलकों की मात्रा शामिल किये जा सकने वाले आक्सीजन मूलकों की मात्रा से अधिक होती है। ऐसी अवस्था में स्वास्थ्य रक्षा के लिए दैनिक आहार में प्रतिआक्सीकारक अवयवों से परिपूर्ण वानस्पतिक खाद्यों को शामिल करना अपरिहार्य हो जाता है।

पोषण–भेषजीय खाद्य

न्यूट्रास्यूटिकल शब्द न्यूट्रीशन (पोषण) तथा फार्मास्यूटिकल (भेषजीय) दो शब्दों के योग से बना है जिसका तात्पर्य ऐसे खाद्य पदाथों से है, जो रोग निवारण या इलाज सहित चिकित्सीय स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं। न्यूट्रास्यूटिकल (पोषण– भेषजीय) के उपयोग का मूल आशय यह है कि कुछ निश्चित जैव–सार तत्व मन एवं शरीर पर सीधा एवं स्पष्ट प्रभाव डालने की क्षमता रखते है, जो अनेक बीमारियों से संघर्ष करने तथा उनसे मुक्ति दिलाने में सहायक होते हैं। न्यूट्रास्यूटिकल के अंतर्गत पृथक्कृत एकल पोषक तत्वों, आहार पूरक एवं विशिष्ट आहार से लेकर आनुवांशिक आधार पर तैयार किये गए अभिकल्पक खाद्य तथा अनाज, सूप और पेय पदार्थ जैसे प्रसंस्कृत उत्पाद तक आते हैं। निःसंदेह, इनमें से कई उत्पादों में संगत मनोवैज्ञानिक प्रकार्य एवं बहुमूल्य जैव वैज्ञानिक सक्रियता होती है। अमेरिकन फूड एवं ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन के आहारीय पूरक स्वास्थ्य एवं शिक्षा अधिनियम 1994 ने विटामिन, एमिनो एसीड, खनिज, जड़ी–बूटियों एवं मानव द्वारा आहार को पूरा करने के लिए प्रयुक्त वानस्पतिक खाद्य– पदार्थों को सम्मिलित करके न्यूट्रास्यूटिकल की परिभाषा को विस्तृत किया है। इनके उपयोग में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। ज्यों–ज्यों नए–नए न्यूट्रास्यूटिकल प्रस्तुत हो रहे हैं, उनका उपयोग करते हुए पोषण एवं स्वास्थ्य में वांछित अथवा उच्चतम अवस्था प्राप्त करना अब बढ़ती हुई चुनौती बन गई है।

न्यूट्रास्यूटिकल के संवर्ग

न्यूट्रास्युटिकल्स को मोटे तौर पर निम्नलिखित व्यापक संवर्गों में रखा जा सकता हैं :

पोषक तत्व : प्रमाणित पोषक प्रकार्यों जैसे विटामिन, खनिज, एमिनो एसीड, वसीय अम्ल आदि से युक्त पदार्थ। विटामिन एवं प्रतिआक्सीकारक सामान्यतः अत्यधिक ज्ञात पोषक तत्व माने जाते हैं। आहार में या आहार पूरकों के रूप में प्रतिआक्सीकारकों के उपयोग से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं।

शाकीय पदार्थ : इस श्रेणी में वानस्पतियों एवं जड़ी–बूटियों के अर्क, निष्कर्ष, कॉन्सनट्रेट्स एवं निचोड़ जैसे उत्पाद आते हैं। जड़ी–बूटियों में असंख्य न्यूट्रास्युटिकल प्रमुख घटकों के रूप मे मौजूद रहते हैं। जुकाम और फ्लू से लेकर प्रोस्ट्रेट ग्रंथि के विवर्धन तक विभिन्न जड़ी–बूटियों के निचोड़ लाभकारी पाए गये हैं। सब्जी, फल, साबुत अनाज, जड़ी–बूटियाँ, दृढ़फल नट और बीज आदि में फिनॉल यौगिक, वर्णक एवं अन्य प्रतिआक्सीकारक प्रचुर मात्रा में मौजूद होते हैं, जो हृद्–वाहिका रोग व कैंसर जैसी स्थितियों के उपचार या उनके रोकथाम में फायदेमंद हैं। प्रतिकैंसर सक्रियता से युक्त खाद्य एवं जड़ी–बूटियों में लहसुन, सोयाबीन, पत्ता–गोभी, अदरक, निकोरिस मूल तथा अजमोदा, गाजर, सौंफ, जीरा व अजवायन जैसे पुष्पछत्री शाक शामिल हैं। अध्ययन बताते हैं कि ब्रोकोली से कैंसर की रोकथाम में मदद मिल सकती है।

आहारीय पूरक : इसके अंतर्गत अन्य स्रोतों से प्राप्त अभिकर्मक, स्पोर्ट न्यूट्रीशन, तथा वजन में कमी एवं आहार प्रतिस्थापक जैसे विशिष्ट गुणों से युक्त उत्पाद आते हैं। विभिन्न प्रकार की बीमारियों के उपचार के लिए अनेक आहारीय पूरक विकसित किये गये हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने पाया है कि निम्नतम रूप से परिष्कृत अनाज, मधुमेह के आपतन को कम कर सकते हैं तथा जठरांत्र कैंसर में लाभदायक होते हैं। प्रतिआक्सीकारकों से परिपूर्ण खाद्य पादपों का पूरक आहार के रूप में प्रयोग स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

लाल अंगूर के उत्पादों से प्राप्त रेस्वेराट्रॉल, नींबू वंश के फलों में पाया जाने वाला फ्लैवनॉयड, जामुन में उपलब्ध एन्थोसाइनिन्स को ऑक्सीकरण–रोधी पाया गया हैं। साइलियम के बीज की भूसी में निहित घुलनशील आहारीय रेशेदार उत्पाद, रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम करता हैं। सोया में पाये जाने वाले आइसोफ़्लैवनॉयड्स हृदय धमनी के बेहतर स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होते हैं। सन या चिया के बीजों से उपस्थित अल्फा–लाइनोलेनिक अम्ल, हृदय और रक्तवाहिनी संबंधी रोग का जोखिम कम करता है। इसके अलावा बहुत से वानस्पतिक एवं जड़ी–बूटी संबंधी सार–तत्व जैसे कि

जिनसेंग, लहसुन का तेल आदि को पोषण–भेषजीय (न्यूट्रास्युटिकल) के रूप में विकसित किया गया है। पोषण–भेषजीय का उपयोग अक्सर पोषक तत्व संबंधी पूर्व मिश्रणों या भोजन में पोषक तत्व संबंधी प्रणालियों और औषधि–निर्माण उद्योगों में किया जाता है।

बाज़ार और मांग

सम्पूर्ण एशियाई देशों में सदियों से लोक परंपरागत औषधी के रूप में प्रयोग की जा रही प्राकृतिक जड़ी–बूटियों, खाद्य वनस्पतियों और मसालों के विपरीत, न्यूट्रास्युटिकल उद्योग का काफी विकास हुआ है। औषधीयों की तुलना में पोषण–भेषजीय पदार्थों की खोज और उत्पादन, औषधि–निर्माण और जैव–प्रौद्योगिकी कंपनियों की प्राथमिकता बन गई है। अमेरिका में न्यूट्रास्युटिकल उद्योग लगभग 86 अरब डॉलर का है, जबकि यूरोप में यह आंकड़ा इससे भी अधिक है। जापान में यह 6 बिलियन डॉलर की कुल वार्षिक खाद्य बिक्री के लगभग एक चौथाई को दर्शाता है। जापान की 47 प्रतिशत जनसंख्या न्यूट्रास्युटिकल का खपत करती है। इन उत्पादों पर लोगों की निर्भरता और उनकी बढ़ती उपलब्धता इस बात का संकेतक है कि इन उत्पादों की मांग एवं बाजार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी।

अपनी सियाह पीठ छुपाता है आईना
सबको हमारे दाग दिखाता है आईना

इसका न कोई दीन, न ईमान ना धरम
इस हाथ से उस हाथ में जाता है आईना

खाई ज़रा–सी चोट तो टुकड़ों में बँट गया
हमको भी अपनी शक्ल में लाता है आईना

हम टूट भी गए तो ये बोला न एक बार
जब खुद गिरा तो शोर मचाता है आईना

शिकवा नहीं कि क्यों ये कहीं डगमगा गया
शिकवा तो ये है अक्स हिलाता है आईना

हर पल नहा रहा है हमारे ही खून से
पानी से अब कहाँ ये नहाता है आईना

सजने के वक्त भी ये हमें दे गया खरोंच
बस नाम का ही भाग्य विधाता है आईना

– कुँअर बेचैन

कवक विष के दुष्प्रभाव

डॉ. एन. के. बोहरा, डॉ. डी के. मिश्रा,
श्री लखपत सिंह एंव श्री एच.के. पाण्डेय
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

कवक विष से तात्पर्य विभिन्न फंफूदों द्वारा द्वितीयक उपापचयी क्रियाओं द्वारा बनने वाले उस विषैले रसायन से है, जो शरीर में जाने पर एकत्र होता रहता है, तथा एक निश्चित मात्रा के शरीर में एकत्र होते ही (जिसे "लीथल डोज" कहते है) विभिन्न प्रकार के भंयकर रोगों को जन्म देता है। सामान्यतः वर्षा ऋतु में खाद्य सामग्री पर हरे–पीले रंग एवं अन्य रंगों वाली फफूंद लगती रहती है। इसी प्रकार उपचार एवं अन्य लम्बे समय तक संग्रहित किये जाने वाले खाद्य पदार्थो पर भी विभिन्न प्रकार की फफूंद आक्रमण करती है। वास्तव में इन फफूंदो के बीज हवा में मुक्त अवस्था में धिरे रहते है तथा अनुकूल परिस्थितियों के होते ही अंकुरित हो जाते है। यदि ये फफूंद खाद्य सामग्री में कुछ समय तक रह जाती है तो वे अपनी जैविक क्रियाओं द्वारा कवक विष उत्पन्न कर देती है।

सम्पूर्ण विश्व में कई प्रकार के कवक विष तथा उनके हानिकारक प्रभाव तथा "लीथल डोज" के बारे में जानकारी प्राप्त हो चुकी है। विभिन्न प्रकार की कवकें, भिन्न–भिन्न प्रकार के कवक विष उत्पन्न करती है, इन सभी प्रकार के कवक विषों को "माइकोटाक्सिन्स" कहते है। मुख्यतः तीन प्रकार की कवकें, एसपरजिलस, पेनिसिलियम तथा फ्यूजेरियम हानिकारक कवक विष उत्पन्न करती है जिनके हानिकारक जैविक प्रभाव ज्ञात हो चुके है।

कवक विष की समस्या विकासशील एवं अल्प विकसित देशों में अधिक है। भारत में 1974 में राजस्थान के भीलवाडा प्रांत तथा गुजराज के पंचमहल में कवक लगे मक्का को खाने से कई लोग अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। "नेशनल इन्स्टीटयूट ऑफ न्यूट्रीशन", हैदराबाद के वैज्ञानिकों द्वारा तहकीकात करने पर ज्ञात हुआ कि यह "एसपरजिलस फ्लैक्स" नामक कवक लगे मक्का को खाने से हुआ। अनुसंधान द्वारा ज्ञात हुआ कि "एसपरजिलस फ्लैक्स" द्वारा उत्पन्न "ऐफलाटाक्सिन" नामक कवक विष इस दुर्घटना का मुख्य कारण था। वास्तव में विभिन्न प्रकार के कवक विषों में से "ऐफलाटाक्सिन" सबसे तीव्र एवं घातक जहर है। ये कवक विष मानव एवं जन्तुओं के लीवर, किडनी, फेफड़ों एवं हृदय आदि जैसे अंगों को हानि पहुँचाने के अतिरिक्त पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र तथा रक्त परिवहन तंत्र को भी बहुत हानि पहुँचाते है। इन कवक विष के प्रभाव से त्वचा में कई प्रकार की विकृतियां उत्पन्न हो जाती है, तथा रक्त का संगठन भी बदल जाता है।

विभिन्न प्रकार के कवक विष तथा उनसे प्रभावित होने वाले अंगों के बारे में कुछ वैज्ञानिक प्रयोग ज्ञात हो चुके है, ये हैः–

(1) **ऐफलाटॉक्सिन** : यह मुख्यतः "एसपरजिलस फ्लैवस" तथा "एसपरजिलस पेरासिटिकस" नाकम कवकों द्वारा उत्पन्न किया जाता है। ये अल्ट्रा वायलेट किरणों में नीली–हरी प्रतिदीप्ति उत्पन्न करते है। ये मुख्यतः चार प्रकार के होते है–

(क) ऐफलॉटाक्सिन $बी_1$
(ख) ऐफलॉटाक्सिन $बी_2$
(ग) ऐफलॉटाक्सिन $जी_1$
(घ) ऐफलॉटाक्सिन $जी_2$

इनमें ऐफलॉटाक्सिन $बी_1$ सबसे घातक है। विभिन्न प्रकार के ऐफलाटामक्सिन मक्का, चावल, गेहूँ, बाजरा, मूंग एवं उड़द आदि के अतिरिक्त विभिन्न सूखे मेवों, मसालों आदि में भी ज्ञात किये जा चुके है। ये कवक विष न केवल शरीर के विभिन्न अंगों को हानि पहुँचाते है, वरन् ये गुणसूत्रों में विषमता उत्पन्न कर आनुवंशिकी गुणों में विकृति कर देते है। ये कवक विष लीवर को मुख्यतः हानि पहुँचाते है।

(2) ***फ्यूजेरियम टाक्सिनस***: ये कवक विष फ्यूजेरियम की विभिन्न प्रजातियों द्वारा उत्पन्न होते है। इनमें प्रमुख हैः

(क) *फ्यूजेरियम ट्रिनिक्टकम* ट्राअकोथिसिन कवक विष
(ख) *फ्यूजेरियम सोलेनाई*
(ग) *फ्यूजेरियम ग्रेमिनिएरम* जिरेलीनॉन कवक विष
(घ) *फ्यूजेरियम रोसियम*

ये कवक विष त्वचा रोग, जननांग रोगों, आदि उत्पन्न करते है।

(3) ***पेनिसिलियल टॉक्सिनस*** : ये कवक विष पेनिसिलियम की प्रजातियों द्वारा उत्पन्न होते है, ये हैः

(क) *पेनिसिलियम विरिडिकेटम* सिट्रिनिन कवक विष
(ख) *पेनिसिलियम सिट्रिनम*
(ग) *पेनिसिलियम पटुलिन* पटुलिन कवक विष

क्र.सं.	प्रभावित होने वाला अंग	कवक विष का प्रकार	सुग्राही जानवर (जिन पर प्रायोगिक पुष्टि हो चुकी है)
1.	लीवर	क– ऐफलाटाक्सिन B_1, B_2 G_1 एवं M_1	टर्की पक्षी, चिकन, बत्तख, सुअर, कुत्ता, खरगोश, बंदर, चूहा आदि
		ख– स्ट्रिगमेटोसिस्टीन	चूहा, बंदर
		ग– लाइटियोस्काइरिन	चूहा, खरगोश, बंदर
		घ– ओकराटाक्सिन – "ए"	बत्तख, चूहा, मुर्गी
		ड– पटुलिन	चूहा
2.	किडनी	क– ऐफलाटाक्सिन B_1	बंदर
		ख– ऐफलाटाक्सिन G_1	चूहा
		ग–ओकरटाक्सिन "ए"	चूहा, कुत्ता
		घ– पटुलिन	चूहा
		ड– सिट्रिनिन	चूहा, खरगोश
3.	पाचन तंत्र	क– आकराटाक्सिन "ए"	
		ख– स्पोरीडेसमिन	भेड़
		ग– फ्यूसेरिनॉन –"एक्स"	चूहा, खरगोश
		घ– ऐफलाटाक्सिन B_1	मिनी पिंग (सुअर)
		ड– ट्राइकोथिसिन	मानव, चूहा, खरगोश, कुत्ता
4.	पिताशय	क– स्पोरीडेसमिन	भेड़
		ख– ऐफलाटॉक्सिन B_1	सुअर, कुत्ता
5.	रक्त मज्जा	क– ट्राइकोथिसिन	चूहा
6.	लिम्फ नोड़स	क– ऐफलाटॉक्सिन B_1	कुत्ता
		ख– ट्राइकोपिसिन	चूहा
7.	प्लीहा	क– ऐफलाटॉक्सिन B_1	गिनी पिंग
		ख– ओकराटॉक्सिन "ए"	मुर्गी
8.	तंत्रिका तंत्र	क– ऐफलाटॉक्सिन B_1	बंदर, मानव
		ख– सिट्रियोविरिडन	चूहा, कुत्ता, बंदर, खरगोश
		ग– पेनीट्रेम "ए"	चूहा
		घ– पटुलिन	चूहा
9.	स्त्री जनंनागों में	क– जिरेलीनॉन	हंस, पोल्ट्री में, बकरी
10.	फेफड़ों में	क– ऐफलाटॉक्सिन B_1	गिनी पिंग
		ख– ट्राइकोथिसिन	चूहा
11.	त्वचा	क– टाइकोथिसिन	मानव, बकरी, चूहा आदि

ये मुख्यतः वृक्क को हानि पहुँचाते है।

इनके अतिरिक्त 300 से अधिक प्रकार के कवक विष ज्ञात किये जा चुके है जो विभिन्न कवक प्रजातियों द्वारा उत्पन्न होते है। ये कवक विष इन कवकों की द्वितीयक क्रियाओं द्वारा बनते है तथा एक बार जब ये किसी पदार्थ में बन जाते है तो इन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता है। ये कवक विष 260 से.ग्रे. तापमान तक गर्म करने पर भी नष्ट नहीं होते है।

शरीर के विभिन्न भागों में कवक विष का प्रभाव :

(1) **त्वचाः** सभी प्रकार के ट्राइकोथिसिन (फ्यूजेरियम कवक विष) त्वचा पर हानिकारक प्रभाव डालते है। प्रायोगिक जानवरों पर इसे डालने पर त्वचा में सिकुड़न, तीव्र जलन आदि प्रभाव दृष्टिगोचर हुए है। ऐफलाटॉक्सिन की अधिक मात्रा से त्वचा में ट्यूमर (चूहे में) तथा हीमोरेज मिनी पिग में ज्ञात हो चुके है।

(2) **लीवर** : सभी प्रकार के माइकोटाक्सिन्स का सबसे पंसदीदा स्थान लीवर है तथा प्रायः हर टॉक्सिन लीवर पर धातक प्रभाव डालता है। इसके खराब होने से व्यक्ति/जानवर की मृत्यु भी हो सकती है। इन कवक विष के एकत्र होने से लीवर पहले पीला, फिर रंगहीन हो जाता है तथा आकार में बढ़ जाता है। शनैः शनैः व्यक्ति मृत्यु की और अग्रसर हो जाता है।

(3) **किड़नी** : किडनी पर मुख्यतः सिट्रिनीन तथा ओकराटॉक्सिन "ए" नामक कवक विष घातक प्रभाव डालते है। इनके प्रभाव से किडनी बड़ी होती है तथा उसका रंग पीला पड़ जाता है। इसके प्रभाव से म्यूकस झिली एवं गर्भाशय की उपत्वचा फैल जाती है। इसी प्रकार "सिट्रिनीन" प्रभाव से उत्सर्जन तंत्र की नलियां नष्ट हो जाती है तथा बोमन संपुट फैल जाता है।

(4) **हृदय** : ऐफलाटॉक्सिन बी$_1$, रुबराटाक्सिन आदि से वसीय वस्तुएँ हृदय की मॉसपेशियों में जमा होने लगती है तथा कार्डियक मांसपेशी नष्ट होने लगती है। यह प्रभाव कार्डियक मांसपेशियों के केन्द्रक पर अधिक पड़ता है, जिससे दायाँ आलिन्द एवं दायें निलय में फैलाव हो जाता है तथा इस प्रकार हृदय की कार्यप्रणाली गड़बड़ा जाती है।

(5) **फेफड़े** : ऐफलॉटाक्सिन के प्रभाव से गिनी पिग के फेफड़ों में हीमोरेज (रुधिर का स्त्राव बंद होना) की प्रायोगात्मक पुष्टि हुई है। इसी प्रकार "स्पोरीडेसमिन", "पटुलिन" तथा "ट्राअकोथिसीन" नामक कवक विष भी फेफड़ों पर हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करते है।

(6) **आहार नाल** : "इपोक्सी टाइकोथीसिन" नामक कवक विष मुख्यतः आहार नाल पर अधिक प्रभाव डालता है। इसके प्रभाव से रक्त प्रवाह बंद होना, हड्डियों का निर्जीव होना तथा आहारतंत्र की नाल एवं म्यूकस झिल्ली के प्रभावित होने के लक्षण दृष्टिगोचर होते है।

(7) **रक्त संगठन** : किसी प्रकार के रोगों में रक्त का परीक्षण सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। कवक विष के प्रभाव से रक्त का संगठन तथा गुणवता बदल जाती है। कवक विष "ऐफलाटॉक्सिन" के प्रभाव से लाल रुधिर कणिकाओं एवं श्वेत रुधिर कणिकाओं की संख्या में कमी तथा हिमोग्लोबीन के कम होने की पुष्टि "गिनी पिग" पर परीक्षण के दौरान हुई है। इसके अतिरिक्त चूहे में, फॉस्फोलिपिड एवं ग्लूकोज की मात्रा के कमी तथा नॉनस्टियराइड वसीय अम्लों की मात्रा में वृद्धि जैसे रक्त कोशिकाओं में प्रयोग के दौरान पाये गये है।

(8) **जननांगों में** : फ्यूजेरियम प्रजातियों द्वारा उत्पन्न कवक विष जननांगों को प्रभावित करते है। इसके प्रभाव से नर में सामान्य वृषण का विकास अवरुद्ध हो सकता है तथा मादा के जननांग में विकृतियां उत्पन्न हो सकती है जिससे फर्टीलिटी भी कम हो सकती है। कभी–कभी स्थायी बांझपन भी इन कवक विष के प्रभाव से हो सकता है।

ये माइकोटॉक्सिन्स (कवक विष) न केवल जन्तुओं पर हानिकारक प्रभाव डालते है वरन् पादपों में भी कई प्रकार की विकृतियां उत्पन्न कर सकते है। इनके प्रभाव से पादप प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्ल में कमी हो सकती है, अंकुरण क्षमता कम हो सकती है। ये कवक विष संग्रहित खाद्य पदार्थो में तथा वर्षा ऋतु में अधिक प्रभाव डालते है। इन कवक विषों को उत्पन्न करने वाली कवकों के बीज प्रतिकूल परिस्थितियों में भी नष्ट नहीं होते है, तथा कई बार वे गुण आनुवंशिक रुप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में चला जाता है। इस प्रकार की परिस्थितियों में यदि माइकोटॉक्सिन्स युक्त बीजों से पौधे तैयार किये जाये तो पौधे के सभी फलों में "माइकोटॉक्सिन्स" की संभावना हो सकती है।

सारांश में इन खतरनाक विष से बचाव ही इनसे सुरक्षा का एकमात्र साधन है, अन्यथा एक बार बन जाने पर ये पीढ़ी दर पीढ़ी आनुवंशिक गुणों के रुप में जा सकते है तथा उबालने पर (100° से.) भी नष्ट नहीं होते।

सहजन पत्तियों का जैव उत्प्रेरक प्रभाव:एक समीक्षा

श्री पंकज सिंह एवं डॉ. संजय सिंह
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

भूमिका :

पिछले कुछ वर्षों से जैविक खेती ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है क्योंकि इससे प्राप्त फसलें पारंपरिक विधि से प्राप्त फसलों से उत्तम होती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जैविक खाद न केवल भूमि की भौतिक व रासायनिक गुणवत्ता को बढ़ती है बल्कि भूमि में खनिजों की मात्रा को भी बढ़ाती है जो कि पौधों के विकास के लिए आवश्यक है।

ऐसी ही एक जैविक खाद है– सहजन पत्तियों का सार (*Moringa oleifera leaf extracts*) जिसका उपयोग कृषि एवं उद्यानों में करके बेहतरीन पैदावार प्राप्त की गई है। इस सार के इस्तेमाल से पौधों में विपरीत परिस्थितियों से लड़ने की क्षमता का भी विकास होता है। सहजन पत्तियों के सार में विभिन्न प्रकार के अमीनो अम्ल, पोषक तत्व, विटामिन के साथ–साथ साइटोकाइनिन, एबसिसिक अम्ल, आक्सिन जैसे वृद्धिकारक हार्मोन्स भी पाये जाते है। यह साइटोकाइनिन तरह के हार्मोन का कमाल है जोकि सहजन पत्तियों के सार में उपस्थित होने के कारण सब्जी उत्पादन के लिए जैविक खाद का काम करते है। सिंथेटिक रूप से साइटोकाइनिन तरह के हार्मोन्स जैसे ट्रान्स–जियाटीन, बेंज़ायल अमीनो पियूरिन आदि बाजार में उपलब्ध है, मगर इनकी कीमत बहुत ज्यादा है।

सहजन आमजन के मध्य एक लोकप्रिय पोषक (पत्ती, फूल, फल) और औषधीय वृक्ष है। इस वृक्ष की पत्तियों में काफी मात्रा में विटामिन्स (ए, बी, सी), आवश्यक खनिज तत्व (पोटेशियम, कैल्सियम, आइरन), आक्सीकरणरोधी पदार्थ, प्रोटीन और वृद्धिकारक हार्मोन्स पाये जाते है। इनकी पत्तियों का सार या तो 80% एथनोल या फिर जल में बनाकर प्राकृतिक वृद्धि प्रेरक के रूप मे प्रयोग किया जा सकता है। पत्तियों के सार के छिड़काव से यह भी पाया गया कि पौधों की रोग–प्रतिरोधक क्षमता, आयु, विभिन्न भागों (जड़ों, तनो, पत्ती और फल) की वृद्धि और पैदावार में 20–30% तक की बढ़त भी पायी गयी। इस सार को प्रयोग से कई प्रकार की सब्जियों की पैदावार में प्रभावी बढ़ोत्तरी देखी गई। इस आलेख में सहजन पत्तियों के सार का प्रभाव मटर के पौधों और पैदावार पर बताया गया है।

सामग्री एवं विधि :

सहजन पत्तियों के सार के प्रभाव को मटर के पौधों पर जानने के लिए एक प्रयोग जनवरी– मार्च 2012 माह में वन उत्पादकता संस्थान, राँची में किया गया। इस क्षेत्र की भूमि दोमट तथा इसका pH 5.5–6.5 तक होता है। मटर के एक तरह के बीजों को 6"×6" दूरी पर 12"×4" आकार की क्यारी में लगाया। इस प्रयोग में प्रत्येक उपचार (treatment) हेतु चार रेपलिकेशन (0% नियंत्रित और 12.5%, 25.0%, 50.0% v/v सहजन पत्तियों का सार/जल) किया गया। सहजन पत्तियों के सार का छिड़काव फूल के आने से लेकर फली के परिपक्व होने तक किया गया। प्रयोग के अंत में फली को ताजा और शुष्क भार की गणना की गई।

परिणाम :

12.5% सार के छिड़काव करने पर मटर फली के ताज़े व शुष्क भार में महत्वपूर्ण वृद्धि पायी गई। 25% सार में शुष्क भार का परिणाम, 12.5% के परिणाम के आस–पास पाया गया। नियंत्रण से तुलना करने पर यह पाया गया कि 12.5% के छिड़काव से मटर फली के ताज़े भार में 51.68% व शुष्क भार 67.29% में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई। फली की पैदावार में वृद्धि मुख्यतः सहजन पत्तियों के सार में अधिक मात्रा में पाये जाने वाले साइटोकाइनिन तरह के हार्मोन्स जैसे ट्रान्स–जियाटीन, बेंज़ायल अमीनो पियूरिन के कारण होती है जोकि फली के आकार और उनकी संख्या को बढ़ाने मे सहायक होते है। यह बात अनुसंधान द्वारा साबित हो चुकी है कि सहजन पत्तियों में साइटोकाइनिन तरह के हार्मोन्स काफी मात्रा में उपलब्ध रहते है।

इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि सहजन पत्तियों के ज्यादा सांद्रित सार का छिड़काव जड़ों के विकास को रोकता है, इसीलिए सहजन पत्तियों के सार की मात्रा के मानकीकरण की आवश्यकता है। हमने अपने प्रयोग में भी पाया की अधिक सांद्रित सार पौधों के विकास को रोकता है। निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि 12.5% सहजन पत्तियों के सार का जल में घोल सब्जी फसलों के उत्पादन हेतु उपयुक्त है।

आँवला : प्रकृति का एक अद्वितीय उपहार

डॉ. देवेन्द्र कुमार
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

आँवले से हम सभी लोग परिचित है जिसका उपयोग हमारे यहाँ आदिकाल से होता आ रहा है। यह छोटी बेरी एक बहुत शक्तिशाली प्राकृतिक कायाकल्पकारी के रूप में मनुष्य को ईश्वर की तरफ से अद्वितीय उपहार है। आँवला का उत्पत्ति स्थान भारत ही है। इसका वैज्ञानिक नाम *एमबलीका ओफीसेनेलिस* जी. है। इसके फलों को संरक्षित करके अचार, कैन्डीं, जैम, जैली आदि एवं आवश्यकतानुसार स्वास्थ्य लाभ के लिए भी उपयोग किया जा सकता है।

आँवला फल अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह से लेकर फरवरी तक भरपूर मात्रा में मिलता है। यह विटामिन–सी का एक शक्तिशाली अद्भुत प्राकृतिक स्त्रोत है। इसका फल विटामिन–सी का मुख्य स्रोत एवं भरपूर मात्रा में पाया जाता है। इसके फल के गुदे में 500–700 मिलीग्राम एस्कॉर्बिक एसिड़ पाया जाता है जो अन्य फलों की तुलना में जैसे अमरूद, टमाटर या नींबू से कहीं अधिक है। विटामिन–सी जो शरीर कोशिकाओं को संक्रमण से रोकता है अर्थात् व्यक्ति को प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है। इस खास किस्म के विटामिन में यह भी गुण है कि अन्य विटामिनों के अपव्यय को भी रोकता है, यहाँ तक के शरीर के कैल्शियम के साथ मिलकर हड्डियों में मिलने वाले बोन मैरो को दुरूस्त करता है।

इसके फलों का प्रयोग आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में 175 से ज्यादा योगों में सम्मलित पाया गया है। इसका फल त्रिफला एवं च्यवनप्राश का तो मुख्य घटक होता है। जब हम अन्य कृत्रिम विटामिन–सी को सप्लीमेन्ट के रूप सेवन करते है तो वह पूरी तरह अवशोषित नहीं होती है। परन्तु जब आप एक आँवला लेते है तो इसमें उपलब्ध सारा विटामिन–सी हमारे शरीर द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है जो एक महत्वपूर्ण तथ्य है, अतः आपसे अनुरोध है कि जब कभी विटामिन–सी का पूरक खरीदने जाएं तो एक बार पुनः एक आवँला लेने के बारे में जरूर सोचें।

विटामिन–सी एक उत्तम किस्म का एन्टी ऑक्सीडेन्ट (Anti Oxidant) है और आँवला के फलों में जैसा कि आप भलीभांति जानते है, कि विटामिन–सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो एक स्ट्रॉग एन्टी ऑक्सीडेंट गुणों वाला होता है। यह फ्री रेडीकल से लड़ने में सहायता प्रदान करता है। ये फ्री रेडीकल हमारे शरीर के अनस्टेवल आयनस होते है। जो हमारे शरीर के सेल डीजनरेशन और एजिग के लिए जिम्मेदार होते है। आंवला इन फ्री रेडीकल्स को स्थिर करता है और ऐसा माना जाता है कि यह प्रकृति से उपहार स्वरूप बहुत ही स्ट्रॉग रीजूवीनेटिग एजेन्ट मिला है। अन्य बेरीज की तरह इनमे भी शुगर की मात्रा कम पाई जाती है। परन्तु फाईबर की मात्रा बहुत ज्यादा मिलने से इसकों प्रतिदिन लिया जा सकता है इसलिए एक यह आदर्श फल की श्रेणी में भी आता है। हालांकि यदि किसी व्यक्ति को उच्च रक्त दाब है तो इसको प्रतिदिन लेने से पहले अपने डॉक्टर से अवश्य चेक करवाकर सेवन करें।

आँवला एक ऐसा फल है जो भोजन अवशोषण को बढ़ाता है और जो आप खाना खाते है उसका अधिकतम लाभ उठाते है। यह शरीर के पाचन क्रिया को बढ़ाता है और खनिज जैसे लौह का संश्लेषण करता है। आँवला कभी भी आपको गर्मी पैदा नहीं करता है, बल्कि सारी क्रिया को सुचारू रूप से चलने देगा। प्रतिदिन आवँला के सेवन व्यक्ति को शक्तिशाली व अच्छी पाचन प्रणाली एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता देता है। आँवला आपके मेटाबोलिज्म् को बढ़ाता है और यह तेजी से आपके वजन को भी घटाने में सहायता करता है।

आँवला लीवर को लम्बे समय तक चलने की शक्ति प्रदान करता है। लीवर के अन्दर पल रहे जहरीले पदार्थो को बाहर निकालता है, जिसका प्रभाव आपकी त्वचा पर भी पड़ता है एवं त्वचा को अच्छा रखता है। यदि आप आँवला और नीम साथ–साथ लेते है तो कील मुहासों का निकलना रूक जाता है। आँवला आपके लीवर, रक्त, पाचनशक्ति व त्वचा को ठीक करने के अलावा बालों के लिए भी बहुत ही फायदेमंद होता है। बालों की जड़ो को पोषण प्रदान करता है एवं ऐसा माना जाता है कि बालो को समय से पहले पकने से बचाता है। यह रक्त के कॉलस्ट्रोल को कम करता है, आँखों की रोशनी बढ़ाता है एवं फेफड़ो को शक्ति प्रदान करता है और पेट की गड़बड़ी को भी ठीक करता है।

आँवलें फलों का रोगों में निम्न प्रकार से सेवन किया जा सकता है :

1. **कब्ज का रहना** – आँवला का चूर्ण 10 ग्रा. रात को खाना खाने के पश्चात्, थोड़े गुनगुने पानी से लेने से लाभ मिलता है, तथा पाचन प्रणाली ठीक रहती है।
2. **अम्लता अत्यन्त होना** – आँवले के रस 20 ग्रा. दिन में 2 बार खाना खाने से पहले लेने से लाभ होता है।
3. **अल्सर होने पर** – आँवले का रस 5 ग्रा. दिन में तीन बार खाना खाने के बाद लेने से आशातीत लाभ होता है।
4. **कर्क रोगी के लिए** – आँवला चूर्ण बारीक पिसा 10 ग्रा. रात को सोने से पहले लेवे तथा आँवला का रस 10 ग्रा. दिन में चार बार ज्वारे के रस के साथ लेने से आशातीत लाभ होता है।
5. **पीलिया रोग के लिए** – आँवला का 10 ग्रा. गन्ने के रस के साथ दिन में तीन बार लेने से लाभ मिलता है।
6. **मूत्र रोग** – आँवला का रस 5 ग्रा. दिन में चार बार खीरे के साथ लेंने से लाभ मिलता है।
7. **नेत्र रोग** – आँवला का पानी 200 ग्रा. सुबह खाली पेट लेवें एवं आँखों पर धीरे–धीरे छींटे मारने से नेत्र रोग में लाभ मिलता है।
8. **मोटापे में** – आँवले का गर्म पानी 200 मिली ग्रा. दिन में चार बार और ऑवलें का रस 10 ग्रा. दिन में तीन बार अनार के रस के साथ ले तथा 10 ग्रा. चूर्ण रात को सोते समय लेने से मोटापे से निजात मिल सकती है।
9. **नपुसंकता होने पर** – रोगी आँवला का चूर्ण 10 ग्रा दोपहर में दूध के साथ ले तथा रात को 5 ग्रा आँवला चूर्ण सतावर चूर्ण के साथ लेने से लाभ होता है।
10. **शारीरिक कमजोरी के लिए**– आँवला का रस 05 ग्रा. शहद के साथ दिन में तीन बार लेने से शारीरिक कमजोरी दूर होती है।
11. **ओज/सुन्दरता बढ़ाने के लिए**– आँवलें का रस 10 ग्रा. शहद व पानी के साथ दिन में दो बार लेने से काफी प्रभाव पड़ता है।
12. **कील मुहांसे होने पर**– आँवला का 05 ग्रा. चूर्ण संतरे/गाजर के रस के साथ दिन में दो बार लेने से काफी हद तक कील मुहांसे कम हो जाते है।
13. **मानसिक रोगी के लिए** – आँवला रस 10 ग्रा. और अखरोट रात को सोने से पहले लेवे और आँवला चूर्ण दिन में खाना खाने के बाद लेवे।
14. **नक्सीर फूटने में** – बहुत दिनों से नाक से खून आना बंद नहीं होता है, तो आँवले के रस की कुछ बूदें नाक में डाल लेने मात्र से, पांच मिनट में खून बहना बंद हो जायेगा। नक्सीर की समस्या अक्सर बनी रहती है तो आँवले का जूस लेने से लाभ होता है और इसके पेस्ट को सिर पर लगाने से भी लाभ होता है।
15. **बालों को शक्ति प्रदान करना** – आँवला का पाउडर 5 ग्रा. नियमित रूप से लगाऐ जाने से, सिर के बाल काले रहते है और झड़नें की समस्या को किसी हद तक रोकते है तथा मनुष्य के अंदर वृद्धावस्था तक शक्ति बनी रहती है।
16. **मधुमेह नियंत्रण** – प्रतिदिन आँवलें का जूस पीने से व्यक्ति/रोगी का शुगर लेबल बिल्कुल नियंत्रण में रहता है और शनैः शनैः मधुमेह से पूर्णरूपेण छुटकारा मिल जाता है।
17. **सिरदर्द से निजात**– आँवले को पीसकर उसके लेप को रोगी के सिर पर लगाने से तुरंत सिरदर्द दूर हो जाता है।
18. **मस्तिष्क को तेज करता है** – प्रतिदिन आँवले का मुरब्बा खाने से मस्तिष्क में कुशाग्रता आती है।
19. **खुजली की समस्या से छुटकारा** – आँवला के पाउडर को खाने के तेल में मिलाकर खुजली वाली जगह पर हल्के हाथ से मालिश करें तो एक्जिमा जैसी बीमारी से छुटकारा मिल सकता है।
20. **निरोगी करता है** – जो व्यक्ति निरोगी रहना चाहते है, वे ताजा आँवला का रस शहद में मिलाकर पीने के बाद ऊपर से दूध पिएं। इससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है। व्यक्ति दिनभर प्रसन्न्ता का अनुभव करता है नई शक्ति एवं चेतन प्रदान करता है।
21. **श्वेत प्रदर** – आँवला पाउडर 3 ग्रा. एवं 6 ग्रा. शहद के साथ एक महीनें तक लेने से महिलाओं में वाइट डिस्चार्ज की समस्या को दूर करता हैं।

शास्त्रों के अनुसारः खास बात यह है कि आँवला अपने आप में पूर्ण फल है इसका प्रयोग सर्वाधिक हितकारी होता है। पाठक अपने विवेक अनुसार उपयोग कर आँवले से अत्यधिक लाभ उठा सकते है और यह कहा जा सकता है कि "सब कुछ छोड़ो आँवला से नाता जोड़ो''।

बोधि वृक्ष पीपल : आध्यात्मिक एवं औषधीय महत्व

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा एवं श्रीमती पूर्णिमा श्रीवास्तव
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

भारतीय संस्कृति में बहुत से वृक्ष हैं जो कि आध्यात्मिक दृष्टि से पूजनीय माने जाते हैं और उनकी पूजा बड़ी श्रद्धा से की जाती है। इनमें से कुछ तो संसार प्रसिद्ध एवं बहुसंख्यक व्यक्तियों द्वारा पूजित है, कुछ वृक्षों की पूजा गौण रूप से की जाती है और कुछ वृक्ष केवल पवित्र माने जाते हैं।

पीपल, आम, बरगद, आँवला, सिरस, गूलर, पलाश, नीम, बेल, बाँस, देवदार और चन्दन के वृक्ष पवित्र माने जाते हैं। इन सबमें पीपल का वृक्ष सबसे पवित्र माना जाता है और इसकी सर्वाधिक पूजा होती है। पीपल की जड़ से लेकर पत्ते तक में देवताओं का वास माना जाता है। यह वृक्ष ब्रह्मा, विष्णु और महेश का एकीभूत रूप माना जाता है। भागवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अश्वत्थ! सर्ववृक्षाणाम कहकर पीपल को अपना स्वरूप बताया है। बौद्ध लोग तो इसे बोधि वृक्ष कहकर पूजते है तथा हिंदू वासुदेव। तिब्बत में इसे लालचड़ कहा जाता है तथा इसके सामने पहुँचने पर सिर से टोपी उतार दी जाती है और शोलो–शोलो कहा जाता है। धौलागिरी पर्वत से 40 मील उत्तर, मुक्तिनाथ प्रदेश में पीपल के वृक्ष को शोलबो कहा जाता है और उसकी पूजा की जाती है। नेपाल में पीपल के वृक्ष को बंगल सिमा के नाम से जाना जाता है और इसका बड़ा सम्मान किया जाता है।

पीपल का वृक्ष

पीपल का वैज्ञानिक नाम *फाइकस रेलिजिओसा* एल., कुल नाम मोरेसी, अंग्रेजी नाम पीपल ट्री, सेक्रेड फिग, दि होली बिग ट्री, संस्कृत नाम बौधिटु, अश्वत्थ, पिप्पल चलपत्र, गजाशन, हिन्दी नाम पीपल, गुजराती नाम पीपलो, मराठी नाम पिपल, बंगाली नाम अश्ववक्थ, पंजाबी नाम पीपल, तेलगु नाम राविचेट्टु, तमिल नाम अश्वत्थम, अरश्म्भर एवं कन्नड़ नाम अश्रवक्थ है।

पीपल वृक्ष बहुवर्षायु होता है। पुराने पीपल वृक्ष की छाल तिडकी हुई श्वेत धूसर होती है। इसके पत्ते सिरायुक्त, चिकने नीचे की ओर झुके रहते हैं। इसके फल संवृत गोलाकार आधा इंच व्यास के होते हैं जो पकने पर बैंगनी या कालक रंग के हो जाते हैं। इसकी छाल में टैनिन पाया जाता है।

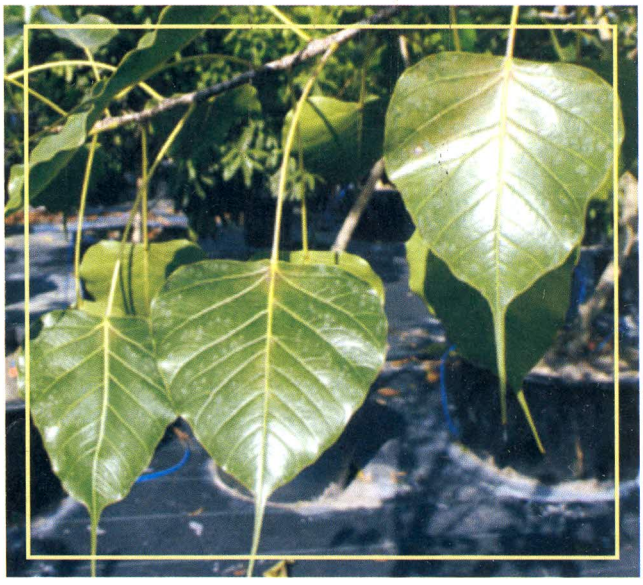

पीपल के कोमल पत्ते

पीपल जड़ी

पीपल अर्चना

यह शरीर के रंगत को निखारने वाला, व्रणरोपण, वेदनास्थावन, शोयहर तथा रक्तशोधक होता है। पीपल वृक्ष औषधी के काम में भी आता है। फोड़े, फुंसी तो इसकी छाल से ठीक हो ही जाते हैं। इसकी पत्तियों का तेल के साथ प्रयोग करने से बड़े से बड़े घाव भी ठीक हो जाते हैं।

पीपल की छाल से निकाले गए रंग को ही काषाय रंग कहते हैं, जिससे भिक्षुओं का चीवर रंगा जाता है। पीपल की छाल से रंग बनाना प्रत्येक भिक्षु जानता है। पीपल का हमारे जीवन में बड़ा ही महत्व है। हमारे देश में ऐसी मान्यता है कि पीपल के वृक्ष में ब्रह्मा का वास है। इसलिए उपनयन संस्कार के समय कहीं–कहीं इसकी पूजा की जाती है। पीपल वृक्ष के तने के चारों ओर सूत लपेटा जाता है। हिंदू नारियाँ पीपल को वासुदेव का रूप मानकर सोमवती अमावस्या को इसकी पूजा करती हैं। वे इसकी जड़ों पर जल गिरातीं हैं, तने पर सिंदूर के टीके लगाती हैं और साथ ही 108 बार परिक्रमा करतीं हैं। वृक्ष के नीचें एकत्र स्त्रियों में जो बुजुर्ग होती हैं वह अन्य सबको राजा निकुंजली और उसकी पत्नी की कहानी सुनाती हैं।

पीपल के कोमल पत्तों का मुरब्बा बड़ी शक्ति देता है। इसके सेवन से शरीर की कई प्रकार की गर्मी–संबंधी बीमारियॉ चली जाती है। यह किडनी की सफाई करता है। पित्त से होने वाली आँखों की जलन दूर होती है।

मुरब्बा बनाने की विधि – पीपल के 250 ग्राम लाल कोमल पत्तों को पानी से धोकर उबाल लें, फिर उसमें समभाग पिसी मिश्री व 50 ग्राम देशी गाय का घी मिलाकर धीमी आँच पर सेंक लें। गाढ़ा होने पर ठंडा करके सुरक्षित किसी साफ काँच की बर्नी में भर लें। प्रतिदिन सुबह–शाम 10–10 ग्राम दूध से लें।

वैशाख के अन्तिम पक्ष की चतुर्दशी को राजस्थान में पीपल और वटवृक्ष दोनों की पूजा की जाती है। पुराणों में वैशाख मास में प्रतिदिन पीपल वृक्ष के अभिषेक का बड़ा महत्व है। स्त्रियों का विश्वास है कि ये वृक्ष उसके सौभाग्य की रक्षा करते हैं। जब कुल बहुएँ पीपल वृक्ष के पास से गुजरती हैं तो आदर देने के लिए अपना धूँधट माथे से चिबुक तक डाल लेती हैं। गर्भवती स्त्रियाँ पीपल वृक्ष के नीचे से नहीं निकलतीं हैं। दीर्घ आयु वाले पीपल को उनके द्वारा ऐसा सम्मानित किया जाता है, जैसे वह उनका कोई पुरातन पुरूष हो।

किसी हिन्दू के मृत्यु के पश्चात पीपल की शाखाओं में घट बाँधने का भी नियम है।

पीपल वृक्ष का कोई भी भाग निरर्थक नहीं हैं। यह अपनी विशालता के कारण महान ही नहीं अपितु अनेक पशु–पक्षियों का निवास स्थल भी है। चिलचिलाती धूप और मूसलाधार बारिश से उत्पीड़ित मनुष्य का आश्रय निकेतन भी है। पीपल की लकड़ी, पत्तियों के डंठल, हरे पत्ते एवं सूखी पत्तियाँ सभी गुणकारी हैं। जिसका उपयोग रोगों के उपचार हेतु किया जा सकता है। पीपल का औषधीय प्रयोग निम्न रोगों में अत्यंत लाभकारी है–

रतौंधी – बहुत से लोगों को रात्रि में दिखाई नहीं देता है। शाम का धुंधलका फैलते ही आँखों के आगे अँधेरा छाने लगता है। इसकी सहज औषधी पीपल है। पीपल की लकड़ी का एक टुकड़ा लेकर गौमूत्र के साथ उसे शिला पर पीसकर उसका अंजन दो–चार दिन तक आंखों में करने से रतौंधी में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है ।

नेत्रपीड़ा – पीपल के पत्तों का रस आँख के चारों ओर लेप करने से सफेद भाग की पीड़ा मिट जाती है।

मलेरिया ज्वर – पीपल की टहनी का दातुन कई दिनों तक करने से तथा उसको चूसने से मलेरिया बुखार उतर जाता है।

सिरदर्द – पीपल के पत्तों को पीसकर सिर पर लेप करने से लाभ होता है।

दाँत दर्द – पीपल की ताजी टहनी से प्रतिदिन दातून करने से दाँत मजबूत होकर मसूड़ों की सूजन जाती रहती है एवं मुहँ से आने वाली दुर्गन्ध भी खत्म हो जाती है।

कर्णपीड़ा या बहरापन – पीपल की हरि ताजी पत्तियों को निचोड़कर उसका रस कान में डालने से कान दर्द दूर होता है। कुछ समय तक इसके नियमित सेवन से कान का बहरापन भी दूर हो जाता है।

खाँसी और दमा – पीपल के पत्तों को खूब कूटना चाहिए। जब बारीक चूर्ण हो जाए तो उसे कपड़े से छान लेना चाहिए। लगभग आधा चम्मच चूर्ण को आवश्यकतानुसार शहद मिलाकर प्रातः काल एक माह तक सेवन करने से दमा में बहुत लाभ मिलता है और खाँसी पूर्णतः ठीक हो जाती है।

सर्दी और सिरदर्द– सर्दी का सिरदर्द तो इससे मिनटों में ठीक हो जाता है। पीपल की दो चार कोमल पत्तियों को चूसने से सर्दी का सिरदर्द दूर हो जाता है।

रक्तस्राव– पीपल के पत्तों के रस में जीरा तथा दुगुनी मात्रा में घी मिलाकर दिन में तीन बार सेवन करने से रक्तस्राव बंद हो जाता है।

घाव– पीपल के पत्तों को थोड़ा सा गर्म करके मसलकर घाव पर बाँधने से घाव जल्दी भर जाते हैं और बाद में घाव का निशान भी नहीं पड़ता है।

उदरशूल– बच्चों के पेट की शूल को मिटाने के लिए पीपल के पत्तों के रस में आवश्यकतानुसार शक्कर मिलाकर प्रातः काल एवं सायं पिलाने से पेट की पीड़ा मिटती है। इसके पत्तों के रस में सौंठ का चूर्ण मिलाकर पिलाने से पेट की पीड़ा मिटती है।

हृदय मजबूत करने के लिए– 10–12 पीपल के कोमल पत्तों का रस और चौथाई चम्मच पीसी मिश्री सुबह–शाम लेने से हृदय मजबूत होता है। हृदयघात (हार्टअटैक) नहीं होता। इससे मिर्गी और मूर्च्छा की बीमारी में लाभ होता है।

स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए– पीपल के 4 से 6 ताजा पत्तों को 500 मि. ली. दूध में अच्छी तरह उबालकर, पर्याप्त मात्रा में मिश्री मिलाकर सेवन करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है तथा मानसिक कमजोरी दूर होती है।

पोलियो– इस रोग में पीपल के 2–4 ताजे पत्तों को इतने ही लसूढ़े के पत्रों के साथ घोट कर, छानकर नमक के साथ (मात्रा–क्वाथ 50–100 मि. ली./चूर्ण 1–3 माशा) नित्य लेने से अतिशीघ्र लाभ होता है।

पीपल वृक्ष की विशेषताएँ– यह धरती और आकाश की विषैली वायु को शुद्ध करता है तथा प्राणवायु का संचार आवश्यकतानुसार करता है। दमा तथा तपेदिक (टी.बी.) के रोगियों के लिए अमृत के समान है। कहा जाता है कि दमा तथा तपेदिक के रोगियों को पीपल के पत्तों की चाय पीनी चाहिए। पीपल की छाल को सुखाकर उसका चूर्ण शहद के साथ लेना चाहिए। जड़ को पानी में उबालकर स्नान करना चाहिए। ये गुण अन्य किसी वृक्ष में नहीं पाए जाते।

पीपल के पत्ते, कोपलें, फूल, फल, डाली, छाल, जड़ सभी अमृतरस बरसाते हैं। पीपल की प्रत्येक चीज व्यक्ति को बुद्धि, बल और स्वास्थ्य प्रदान करती है।

पीपल की एक विशेषता यह है कि यह चर्म–विकारों को जैसे–कुष्ठ, फोड़े–फुन्सी, दाद–खाज और खुजली को नष्ट करने वाला है। वैद्य लोग पीपल के छाल घिसकर चर्म रोगों पर लगाने की राय देते हैं। कुष्ठ रोग में पीपल के पत्तों को पीसकर लेप किया जाता है साथ ही पत्तों का जल सेवन भी किया जाता है। हमारे ग्रंथों में तो यहाँ तक लिखा गया है कि पीपल के वृक्ष के नीचे दो घण्टें प्रतिदिन नियमित रूप से आसन लगाने से हर प्रकार के त्वचा रोगों से छुटकारा मिल जाता है।

पीपल में और भी बहुत से गुण हैं। इन्हीं गुणों के कारण पीपल वन्दनीय और सेव्य है।

हर सुबह शाम की शरारत है
हर खुशी अश्क की तिजारत है

मुझसे न पूछो अर्थ तुम यूं जीवन का
जिंदगी मौत की इबारत है

– नीरज

साईलेज : आवश्यकता एवं उपयोगिता

डॉ. ममता पुरोहित
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

पशुओं को स्वस्थ बनाये रखने के लिए व अधिक दुग्ध उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि वर्ष पर्यन्त पशुओं को हरा चारा मिलता रहे परन्तु ग्रीष्म ऋतु एवं साधनों की अनुपलब्धता के कारण चारा प्रजातियाँ वर्ष भर उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। साथ ही ऋतुओं के अनुसार इनकी पैदावार, विशेष समयावधि में ही हो पाती है। अतः गेहूँ, चना, मसूर आदि फसलों से प्राप्त भूसा ही हरी घास उपलब्ध न होने पर पशु आहार का मुख्य स्रोत है। वर्षा ऋतु में उगी हरी घास आने वाले महीनों में जमीन में नमी की निरन्तर कमी होने व हवा का तापमान बढ़ने के कारण सूख जाती है जिससे उसकी पौष्टिकता व स्वाद में कमी आ जाती है। साईलेज एक ऐसी विधि या तरीका है जिसके द्वारा हरी घास को इस तरह भंडारित किया जाता है कि उसकी हरियाली और पौष्टिकता बनी रहे। भंडारण की यह विधि कब से अपनाई जा रही है यह बताना मुश्किल है परन्तु इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, अमेरिका आदि देशों में सन् 1780 के पहले से हरे चारे वाली फसलों को संभाल कर पशुओं के लिए रखा जाता था। भारत में ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने साईलेज द्वारा हरी घास को भंडारित करना शुरू किया। इसकी उपयोगिता से प्रभावित होकर विभिन्न प्रांतो के किसान भाई सफलतापूर्वक साईलेज द्वारा हरी घास संग्रहित कर रहे हैं। प्रस्तुत लेख में साईलेज द्वारा हरी घास को भंडारित करने की विधि को लिपिबद्ध किया गया है।

क्या है साइलेजः हरे चारे को काटने योग्य अवस्था में काटकर हवा रहित स्थान में संग्रहित करना साइलेज कहलाता है।

साइलेज का उद्देश्यः इसका मुख्य उद्देश्य चारे को बिना पौष्टिक तत्व नष्ट किये हरी अवस्था में संग्रहित करना है जिससे हरा चारा उपलब्ध न होने के समय (प्रायः अक्टूबर से नवम्बर तथा अप्रैल से जून माह तक) इस चारे का उपयोग किया जा सके।

साइलेज के लिए उपयुक्त प्रजातियाँः साइलेज बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की घासों तथा हरे चारे वाली फसलों का उपयोग किया जाता है। जैसे खरीफ के मौसम में मक्का, ज्वार, बाजरा, गिनी, शंकर, बरु, हाथी घास आदि व रबी के मौसम में बरसीम, जई, रिजका तथा बरसात के दिनों में प्राकृतिक रूप से उगनेवाली हरी घासों को मिलाकर उत्तम किस्म का साइलेज बनाया जा सकता है।

साइलेज बनाने के लिए स्थान तथा आकार : जिस हवा रहित सुरक्षित स्थान में साइलेज बनाया जाता है उसे साइलो कहते हैं। साइलो खाईनुमा, गढ्ढेनुमा व टावरनुमा आदि आकारों में बनाये जाते हैं। हमारे देश में साइलो प्रायः खाईनुमा व गढ्ढेनुमा आकार का बनाया जाता है। किसान भाई अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार मिट्टी की जुड़ाई से बने कच्चे या सीमेन्ट की जुड़ाई से बने पक्के साइलो बना सकते हैं। साइलो की लम्बाई–चौड़ाई दो बातों पर निर्भर होती है यथा पशुओं की सँख्या एवं साइलेज उपलब्ध कराने की अवधि। साइलो की गहराई अधिक से अधिक ढाई मीटर होना चाहिए तथा फार्म के सबसे ऊँचे स्थान पर बनाना चाहिए। साइलो की दीवारें वायुरुद्ध, मजबूत एवं कठोर होना चाहिए ताकि वे साइलो के अन्दर किण्वन से पैदा हुए दबाव को सह सकें। यदि साइलो का गढ्ढा कच्चा है तो नीचे व दीवारों के साथ–साथ धान की पुआल लगा देना चाहिए जिससे साइलो खराब न हो। एक घनफीट में 11.5 किलोग्राम चारा भरा जा सकता है।

साइलो में चारा भरना : साइलो को भरने से पहले साइलेज बनाने में उपयोग की जाने वाली फसल को सुबह के समय काटकर दिन भर के लिए खेत में फैला देना चाहिए जिससे नमी का कुछ भाग कम हो जाए। चारा भरते समय यह सावधानी रखी जाए कि चारा परतों में दाब–दाब कर भरें जिससे साइलों में कम से कम हवा शेष रहे। शेष बची हवा को भी ट्रेक्टर/रोलर आदि से चारे को दबा कर बाहर निकाल देना चाहिए। साइलो (गढ्ढा) भरने का काम ज्यादा से ज्यादा 5–6 दिनों के अन्दर पूरा कर लेना चाहिए। साइलो (गढ्ढे) की भराई जमीन की सतह से लगभग एक या डेढ़ मीटर ऊपर तक करना चाहिए। साइलो (गढ्ढा) भरने के उपरान्त इसे सूखे चारे या मिट्टी की 6 इंच मोटी परत से ढँक देना चाहिए।

साइलो में थोड़ा ढाल होना चाहिए जिससे वर्षा का पानी साइलो (गढ्ढे) के ऊपर इकट्ठा न हो सके। अब सूखे चारे या मिट्टी की 6 इंच मोटी परत पर पॉलीथीन शीट ढ़ककर

9 से 12 इंच तक मोटी सूखी मिट्टी बिछाकर पानी का अच्छी तरह छिड़काव कर गोबर से लीप देना चाहिए जिससे हवा अन्दर प्रवेश न कर सके। कुछ दिनों के बाद रासायनिक क्रिया होने से साइलेज अन्दर धसेगा व मिट्टी की परत में दरार पड़ जाएगी। पुनः इन दरारों को मिट्टी से भरकर गोबर से लीप देना चाहिए। लगभग 3–4 माह में साइलेज बनकर तैयार हो जाता है। साइलो का एक हिस्सा खोलकर आवश्यकतानुसार खड़ी परत में पूरी गहराई तक साइलेज निकालकर उपयोग में लाना चाहिए। यदि आधी परत निकालेंगे तो वायु प्रवेश होने से साइलेज का रंग काला व स्वाद खराब हो जाता है। चारा भरते समय कई बार खांचे बन जाते हैं जिससे उस स्थान पर फफूंदीयुक्त साइलेज बनता है जिसे पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए। साइलेज हमेशा दुधारु पशुओं को दुग्ध दोहन के पश्चात खिलाना चाहिए।

साइलेज के गुण : उत्तम किस्म का साइलेज हल्का, रुचिकर महकवाला, पीले रंग का व खट्टापन लिये होता है। इसमें पौष्टिक तत्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। अतः साइलेज पशुओं का स्वादिष्ट पौष्टिक आहार है।

शीरा मिलाना : यदि साइलेज बनाने वाली फसलों में शर्करा की मात्रा कम होती है तो ऊपर से और शर्करा मिलायी जाती है, जिससे जीवाणुओं को भोजन मिलने से किण्वन प्रक्रिया सामान्य रुप से चालू रहती है। घास प्रजातियों से साइलेज बनाते समय ऊपर से शीरा मिलाने पर साइलेज के गुण बढ़ जाते है।

अनाजों का मिश्रण मिलाना : घास वाली प्रजातियों से बनाये जाने वाले साइलेज को उत्तम किस्म का बनाने के लिए उसमें मक्का, जौ, गेहूँ आदि अधिक कार्बोहाइड्रेट वाले अनाजों को मिलाया जाता है। इससे साइलेज का शुष्क भार बढ़ जाता है तथा स्टार्च के अम्ल में बदलने से स्वाद बढ़ जाता है।

रासायनिक परिवर्तन : जब कटा हुआ हरा चारा साइलो में दाब दाब कर इकट्ठा किया जाता है तो चारे की जीवित कोशिकाओं के श्वांस लेने से साइलो की हवा में उपस्थित ऑक्सीजन 5–6 घंटों में पूरी तरह उपयोग कर ली जाती है तथा कार्बनडाइआक्साइड एवं अन्य गैसों की सान्द्रता बढ़ती जाती है। ऑक्सीजन की अनुपस्थिति से साइलो में फफूंदी नहीं पनप पाती है। चारे की कोशिकाओं में उपस्थित एन्जाइम चारे की शर्करा को अल्कोहल, कार्बनिक अम्ल तथा पानी में विघटित कर देते हैं। जैसे–जैसे कोशिकाओं में श्वांस–प्रश्वांस व एन्जाइम की क्रिया मन्द पड़ती जाती है अम्ल उत्पादक बैक्टीरिया स्ट्रेप्टोकोकस लेक्टिस, स्ट्रेप्टोकोकस बेसीलस आदि घुलनशील कार्बोहाइड्रेट को लेक्टिक अम्ल में बदल देते हैं साथ ही सूक्ष्म मात्रा में ब्यूटायरिक अम्ल व अल्कोहल भी बनता है। अल्कोहल, अम्लों के साथ मिलकर साइलेज में रुचिकर महक उत्पन्न करता है। जैसे ही साइलेज में अम्ल की मात्रा एक निश्चित मात्रा से अधिक बढ़ती है जीवाणुओं द्वारा किण्वन एवं अन्य प्रतिक्रियाएं मन्द पड़ जाती हैं तथा साईलेज बनकर तैयार हो जाता है। साईलेज में उपस्थित अम्ल के कारण हानिकारक बैक्टीरिया जो साईलेज को खराब करते हैं, पनप नहीं पाते। इस प्रकार रासायनिक विघटन द्वारा हरे चारे में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा स्टार्च विघटित होकर पशुओं के लिए शीघ्र पाचक एवं अधिक उपयोगी बन जाते हैं। रासायनिक विघटन एन्जाइम, बैक्टीरिया, यीस्ट आदि द्वारा होता है।

साईलेज के प्रकार : गुणों के आधार पर साईलेज के निम्नलिखित प्रकार निर्धारित किये गये हैं :

1. **सबसे अच्छी साइलेजः** शुष्क, हल्की बादामी या पीली, अम्लत्व की स्पष्ट गंध व स्वाद, पी. एच. मान 3.5 से 4.2, अमोनिया नाइट्रोजन 10 प्रतिशत, इसमें फफूंदी व ब्यूटायरिक अम्ल बिलकुल नहीं होता है।
2. **अच्छी साइलेजः** यह हरापन लिए, अम्लत्व के स्वाद व रुचिकर महकवाली होती है। पी. एच. मान 4.2 से 4.5, अमोनिया नाइट्रोजन 10 से 15 प्रतिशत व मामूली ब्यूटायरिक अम्ल होता है।
3. **मध्यम साईलेजः** मामूली से थोड़ा ज्यादा ब्यूटायरिक अम्ल होता है, पी. एच. मान 4.5 से 4.8 तथा अमोनिया नाइट्रोजन 15 से 20 प्रतिशत तक होती है।
4. **खराब साइलेजः** अधिक मात्रा में ब्यूटायरिक अम्ल होने से स्वाद बहुत खट्टा व दुर्गंध होती है।

साईलेज बनाने से लाभ : साईलेज अनेक प्रकार से पशुओं के लिए लाभकारी होता है :

1. हरे चारे की कमी के समय साइलेज रुपी हरा और पौष्टिक चारा पशुओं को उपलब्ध हो जाता है।
2. कम स्थान में लम्बे समय तक हरा चारा पौष्टिक तत्वों सहित सुरक्षित रखा जा सकता है।
3. बरसात के मौसम में प्राकृतिक रुप से उगा अत्यधिक चारा इस तरह से सुरक्षित रख चारे की कमी के समय काम आता है ।
4. मानसून के समय जब चारे का सूखना कठिन होता है साईलेज आसानी से बनायी जा सकती है।
5. ऐसी घास–पतवार जो चारे के रूप में अनुपयुक्त है, साईलेज द्वारा उपयोगी बन जाती है।
6. सूखे चारे की तुलना में साईलेज अधिक पौष्टिक होता है।

7. कुछ फसलों में पकने के समय कीड़ा लग जाता है परन्तु साईलेज हेतु फूलते समय ही फसल काट लेने से कीड़ों से फसल की रक्षा हो जाती है।
8. वह भूमि जो साईलेज फसल के लिए उपयोग की जाती है फसल कट जाने पर रबी फसल के लिए प्रयुक्त हो जाती है। अतः उसी भूमि से दो फसल ले सकते हैं।

उपर्युक्त विधि द्वारा बहुत ही कम खर्च में उपयुक्त व अनुपयुक्त घांस–पतवार प्रजातियों से उच्चकोटि का पौष्टिक साईलेज बनाकर किसान भाई तथा डेयरी व्यवसायी अपने पशुओं को स्वस्थ्य रख तथा दुग्ध उत्पादन बढ़ाकर स्वयं की आमदनी बढ़ा सकते हैं।

बेटियाँ–
शीतल हवाएँ हैं
जो पिता के घर बहुत दिन तक नहीं रहतीं
ये तरल जल की परातें हैं
लाज़ की उज़ली कनातें हैं
है पिता का घर हृदय–जैसा
ये हृदय की स्वच्छ बातें हैं

बेटियाँ –
पवन–ऋचाएँ हैं
बात जो दिल की, कभी खुलकर नहीं कहतीं
हैं चपलता तरल पारे की
और दृढता ध्रुव–सितारे की
कुछ दिनों इस पार हैं लेकिन
नाव हैं ये उस किनारे की

बेटियाँ–
ऐसी घटाएँ हैं
जो छलकती हैं, नदी बनकर नहीं बहतीं

– कुँअर बेचैन

मधुरता का वरदान : स्टीविया

श्री शम्भूनाथ मिश्र एवं श्री रामेश्वर दास
वन उत्पादकता संस्थान, लालगुटवा, रांची

परिचय :

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार देश में लगभग दो करोड़ दस लाख लोग मधुमेह की बीमारी से पीड़ित हैं। अनुमान है कि वर्ष 2020 में भारत का हर पांचवां व्यक्ति मधुमेह से पीड़ित होगा। मधुमेह की बीमारी महामारी का रूप लेती जा रही है। इसके बचाव व नियंत्रण के लिए वैसे तो कई उपाय हैं, लेकिन एक औषधीय पौधा ऐसा है जो इस खतरनाक बीमारी से राहत दिलाने में अहम भूमिका निभा रहा है। इस औषधीय पौधे का नाम है स्टीविया। मधुर पदार्थों के सेवन को त्यागकर कई लोग मिठास की अनुभूति तक भूल चुके हैं। ऐसे लोगों के लिए स्टीविया चीनी के स्वस्थ एवं *आदर्श विकल्प* के रूप में लोकप्रिय हो रहा है। *स्टीविया रेबोदियाना* वर्तोनी सूरजमुखी (एस्टरेसी) परिवार का सदस्य है जिसकी 240 से ज्यादा प्रजातियों का विस्तार पश्चिमी उत्तर अमेरिका से दक्षिण अमेरिका के उपोष्णकटिबंधीय और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों तक है। स्टीविया मूल रूप से पेरूग्वे का पौधा है। इसका एक्सट्रेक्ट मीठा होता है। इसका मुख्य घटक स्टेवियोल ग्लाइकोसाइड इसे शक्कर से तीस गुना एवं चीनी से तीन सौ गुना मीठा बनाता है। स्टीविया की मांग कम कार्बोहाइड्रेट कम चीनी वाले भोजन विकल्प के रूप में लगातार बढ़ रही है।

विवरण :

स्टीविया एक छोटा झाड़ीनुमा बहुवर्षीय पौधा है जिसकी ऊंचाई 40–60 सेंटीमीटर तक होती है। इसकी पत्तियां हलके हरे रंग की रोएंदार, मध्य से ऊपर दांतेदार, भालाकार तथा विपरीत दिशा में स्थित होती हैं। इसके पुष्प सफ़ेद, अत्यंत छोटे एवं गुच्छेदार होते हैं। यह द्विगुणित होता है और इसमें गुणसूत्रों के 11 जोड़े होते हैं।

स्टीविया की तैयार फसल

कृषि पद्धति :

इसे अर्द्ध नम उप उष्णकटिबंधीय जलवायु में आम तौर पर –6 डिग्री सेल्सियस से 43 डिग्री सेल्सियस तक तापमान में उगाया जा सकता है। यह लाल, काली, रेतीली दोमट, बांझ, एसिडिक मिट्टी पर अच्छी तरह से बढ़ता है साथ ही अधिक तटस्थ मिट्टी (pH 6.5–7.5) पर भी इसकी खेती की जा सकती है। खेती के लिए भूमि की चिकनी, फर्म रोपण सतह तैयार की जानी चाहिए। जल निकासी की उपयुक्त व्यवस्था के साथ लंबी अवधि के लिए नमी बरकरार रखने के लिए सतह से उठी हुई क्यारियाँ बनानी चाहिए।

स्टीविया की 150 स्पीशीज में से केवल 5 स्पीशीज खेती के लिये उपयुक्त है जिनमें रीबाऊदियाना सबसे उपयुक्त है क्योंकि इसमें पर्याप्त मात्रा में ग्लूकोसाइड पाये जाते है ग्लूकोसाइड के आधार पर विभिन्न जलवायु हेतु सनफ्रट्स लिमिटेड, पूना द्वारा तीन प्रजातियों का विकास किया गया है एस.आर.वी 123– स्टीविया की इस किस्म में ग्लाईकोसाइड की मात्रा 9–12 प्रतिशत तक पायी जाती है तथा वर्ष भर में इसकी पांच कटाईयां ली जा सकती है। एस.आर.वी. 512– स्टीविया की यह किस्म उत्तर भारत के लिये ज्यादा उपयुक्त है, वर्ष भर में इसकी चार कटाईयां ली जा सकती है तथा इसमें ग्लूकोसाइड की मात्रा 9–12 प्रतिशत तक होती है एस.आर.वी. 128–स्टीविया की यह किस्म सम्पूर्ण भारत वर्ष के लिये सर्वोत्तम है इसमें ग्लूकोसाइड की मात्रा 21 प्रतिशत तक पायी जाती है तथा वर्ष में चार कटाईयां भी ली जा सकती है। विभिन्न उपलब्ध प्रजातियों में उस प्रजाति का चयन महत्वपूर्ण है जिसमे स्टेवियोसाइड की मात्रा 9% या उससे ज्यादा हो जिससे किसानो को उचित व्यावसायिक लाभ मिल सके।

स्टीविया की खेती में किसी भी प्रकार की रसायनिक खाद या कीटनाशी का प्रयोग नहीं करते हैं। एक एकड़ में इसकी फसल को तत्व के रूप में नाईट्रोजन फास्फोरस एवं पोटाश

की मात्रा क्रमशः 110:45:45 कि. ग्रा. की आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति के लिये 70–80 कु. वर्मी कम्पोस्ट या 200 कु. सड़ी गोबर की खाद पर्याप्त रहती है। साथ ही साथ फसल की कटाई के पश्चात 0.2 प्रतिशत गोमूत्र का छिड़काव तथा एक कि.ग्रा. सी.पी.पी. (काऊ पैट पिट) खाद 150 ली. पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करना चाहिये।

स्टीविया की फसल सूखा सहन नहीं कर पाती है इसको लगातार पानी की आवश्यकता होती है। सर्दी के मौसम में 10–15 दिन के अन्तराल पर तथा गर्मियों में प्रति सप्ताह सिंचाई करनी चाहिये। स्टीविया की फसल में सिंचाई करने का सबसे उपयुक्त साधन स्प्रिंकलरर्स है। स्टीविया कम अवधि की फसल है जिसे एक वर्ष में 3–4 बार फूल आने से पहले काटा जाता है।

औषधीय गुण :

स्टीविया की पत्तियों में स्टीवियोसाइड, रेबाओदिस, रेबाओडायोसाइड, डुल्कोसाइड, जैसे यौगिक पाये जाते हैं किन्तु मुख्य दो यौगिकों हैं। 1) स्टीवियोसाइड (10%–20%) और 2) रेबाओडायोसाइड, (1.3)। इन यौगिकों के कारण स्टीविया के पत्तों में इंसुलिन बैलेंस करने की शक्ति आ जाती है। स्टीवियोसाइड 100 डिग्री सेल्सियस पर भी स्थिर रहता है जो इसे अन्य स्वीटनर से अधिक लाभकारी बनाने के साथ साथ उत्पाद की गुणवत्ता और सुरक्षा को बढ़ाता है।

स्टीविया पैंक्रियाज से इंसुलिन को रिलीज करने में अहम भूमिका निभाता है। स्टीविया, हाईपरटेशन, दाँतों, गैस, पेट की जलन, दिल की बीमारी, चमड़ी रोग और चेहरे की झुर्रियों की बीमारी में भी कारगर हैं। स्टीविया की पत्तियां आँखों (खीरा के जैसा उपयोग करने के समान) पर एक शीतलन प्रभाव प्रदान करता है। घाव कटने और खरोंच पर एक चिकित्सकीय प्रभाव पड़ता है। स्टीविया वजन और रक्तचाप प्रबंधन में मददगार है। स्टीविया सर्दी और फ्लू की घटना को भी कम करती है। यह दंत क्षय को प्रोत्साहित नहीं करता है। विरोधी कवक गुण के कारण इसका प्रयोग चॉकलेट, चूइंग गम और कैंडी उद्योग में किया जा सकता है।

1920 में स्टीविया को जापान ने शुगर के प्रमुख विकल्प के रूप में शुरू किया था। स्टीविया के सुरक्षित प्रयोग का न केवल लंबा इतिहास है बल्कि इस पर लगभग 150 अध्ययन हो चुके हैं। विश्व के लगभग 20 देशों की सरकारे इसे मान्यता भी दे चुकी हैं।

भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण, नई दिल्ली ने 20 सितम्बर 2012 को आयोजित बैठक में विभिन्न भोजन में एक कृत्रिम स्वीटनर के रूप में *स्टेवियोल ग्लाइकोसाइड* के निम्नलिखित उत्पादों पर उपयोग की स्वीकृति प्रदान की है।

1. डेयरी आधारित पेय, 2. डेयरी आधारित डेसर्ट (आइसक्रीम जमे हुए डेसर्टए क्रीम टॉपिंग) 3. दही, 4. फल सुधा, 5. बिना कार्बोनेट पानी आधारित पेय (गैर शराबी), 6. खाद्य बर्फ 7. जैम जेली, मुरब्बे, 8. अनाज के उत्पाद, 9. कार्बोनेटेड पानी, 10. शीतल पेय, 11. चूइंगगम।

विक्रय संभाव्यता :

स्टीविया की व्यवसायिक खेती भारतवर्ष में पंजाब, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और थोड़ी मात्रा में उत्तर प्रदेश में भी हो रही है। वर्ष भर में स्टीविया के लगभग 35 कु. से 40 कु. सूखे पत्ते प्राप्त होते है। स्टीविया की पत्तियों का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार भाव लगभग रू. 300–400 प्रति कि.ग्रा. है लेकिन अगर स्टीविया की बिक्री दर रू. 100/प्रति कि. ग्रा. मानी जाये तो प्रथम वर्ष में एक एकड़ में भूमि से 3.5 से 4.0 लाख की कुल आमदनी होती है, तथा आगामी सालों में यह लाभ अधिक होता है। कुल तीन वर्षों में लगभग 1 एकड़ से 6–8 लाख का शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

सामान्य घरेलू उपयोग :

स्टीविया के पत्तों का संरक्षण आसान है। इसके पत्तों को छाये में तीन दिन सुखाने के पश्चात महीन पीस कर रखा जा सकता है। मिठास के लिए एक कप काफी या चाय में इस चूर्ण की आधे से एक ग्राम मात्रा काफी होगी। इस चूर्ण को आवश्यकता के अनुसार हर व्यंजन को मीठा करने के लिए प्रयोग कर सकते हैं। तैयार सामान पूरी तरह कैलोरी शून्य होगा। यह पूरी तरह से हर्बल है जबकि आज तक जो भी कैलोरी फ्री शुगर फ्री दवाएं प्रयोग हो रही थी सबमें कोई न कोई साइड इफेक्ट का ख़तरा था और स्टीविया हर तरह के साइड इफेक्ट से मुक्त है। भारतीय भोजन का जरूरी हिस्सा मिठाई होती है। हम अब शारीरिक श्रम कम करते हैं तो अनावश्यक कैलोरी के साथ मोटापा बढ़ने के डर से मीठा खा नहीं पाते। अब मन मसोसने की जरूरत नहीं। जी भर कर मीठा खाएं पर गन्ने की चीनी नहीं स्टीविया की चीनी।

सर्वगुण सम्पन्न अनमोल नीम

डॉ. प्रतिमा पटेल
वन अनुसन्धान संस्थान, सम विश्वविद्यालय, देहरादून

सामान्य परिचय :

नीम भारतीय मूल का तेजी से बढ़ने वाला सदाबहार वृक्ष है। नीम एक बहुत ही अच्छी वनस्पति है जो कि भारतीय पर्यावरण के अनुकूल है। इसे जादुई पेड़ भी कहा जाता है। भारत में इसे कहीं–कहीं निंबा के नाम से भी जाना जाता है। इसका वानस्पतिक नाम *मेलिया एजाडीरेक्टा* अथवा *एजाडिरेक्टा इंडिका* है। यह पेड़ 15–20 मी. (लगभग 50–65 फुट) तक लंबा हो सकता है और कभी–कभी 35–40 मी. (115–131 फुट) तक भी ऊँचा हो सकता है। इसकी छाल, कठोर, विदरित (दरारयुक्त) या शल्कीय होती है और इसका रंग सफेद–धुसर या लाल भूरा भी हो सकता है। फूल सफेद और सुगन्धित होते हैं और लटकते हुए पुष्प–गुच्छ में सजे रहते हैं, जो लगभग 25 से.मी. तक लम्बा होता है। इसका फल चिकना, गोलाकार से अंडाकार होता है। इसे निंबौली कहते हैं।

भौगोलिक वितरण :

यूं तो नीम का पेड़ पूरे भारत में पाया जाता है लेकिन यह तटीय व दक्षिणी क्षेत्रों में बहुतायत से मिलता है। यह सदियों

नीम के फूल

नीम की निंबौली

नीम का वृक्ष

नीम की पत्तियां

से समीपवर्ती देशों : पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, म्यांमार (बर्मा), थाइलैंड, इंडोनेशिया और श्रीलंका आदि देशों में पाया जाता रहा है। लेकिन विगत लगभग दो सौ वर्षों में यह वृक्ष भारतीय उपमहाद्वीप की भौगोलिक सीमा को लांघकर अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण पूर्व एशिया, दक्षिण मध्य अमेरिका तथा दक्षिणी प्रशान्त द्वीप समूह के अनेक उष्ण तथा उप–उष्ण कटिबंधीय देशों में भी पहुँच चुका है।

भौगोलिक परिस्थिति :

नीम का पेड़ सूखे के प्रतिरोध के लिये प्रसिद्ध है। सामान्य रूप से यह उप–शुष्क और कम नमी वाले क्षेत्रों में मिलता है, जहां वार्षिक वर्षा 400 से 1200 मि.मी. के बीच होती है। यह उन क्षेत्रों में भी होता है जहां वार्षिक वर्षा 400 से भी कम होती है पर उस स्थिति में इसका अस्तित्व भूमिगत जल के स्तर पर निर्भर रहता है। नीम अलग–अलग प्रकार की मृदा में विकसित हो सकता है, लेकिन इसके लिये गहरी और रेतीली मिट्टी, जहां पानी का निकास अच्छा हो, सबसे अच्छी रहती है। यह उष्ण कटिबंधीय और उप–उष्ण कटिबंधीय जलवायु में होने के कारण यह 22–32 डिग्री सेंटीग्रेड के बीच का औसत वार्षिक तापमान सहन कर सकता है। यह बहुत उच्च तापमान को तो बर्दाश्त कर सकता है, पर 4 डिग्री सेल्सियस से नीचे के तापमान में मुरझा जाता है।

नीम के औषधीय गुण :

प्राचीन चिकित्सा ग्रंथों चरक सहिंता और सुश्रुत संहिता में इसका उल्लेख मिलता है। यह वृक्ष अपने औषधीय गुणों के कारण पारंपरिक इलाज में बहुपयोगी सिद्ध होता आ रहा है। नीम स्वभाव से कड़वा जरूर होता है, परन्तु इसके औषधीय गुण बड़े ही मीठे होते हैं। तभी तो नीम के बारे में कहा जाता है कि "एक नीम और सौ हकीम दोनो बराबर हैं"। इसे ग्रामीण औषद्यालय का नाम भी दिया जाता है। यह पेड़ स्वयं बीमारियों से मुक्त होता है और उस पर कोई भी कीड़ा–मकौड़ा नहीं लगता है, इसलिये नीम को स्वतंत्र या आजाद पेड़ कहा जाता है। ग्रन्थ में नीम के गुणों की चर्चा इस प्रकार से है :

निम्ब शीतों लघुग्राही कतुर कोअग्नि वातनुत।
अध्यः श्रमतुटकास ज्वरारूचिक्रिमी प्रणतु।।

अर्थात् नीम शीतल, हल्का, ग्राही पाक में चरपरा, हृदय को प्रिय, अग्नि, वाट, परिश्रम, तृषा, अरूचि, क्रीमी, व्रण, कफ, वामन, कोढ़ और विभिन्न प्रमेह को नष्ट करता है।

इसमें कई तरह के कड़वे परन्तु स्वास्थ्यवर्धक पदार्थ होते हैं, जिनमें मार्गोसिं, निम्बिडीन, निम्बेस्टेरोल प्रमुख हैं। नीम सर्वरोगहारी गुणों जैसे एंटीवायरल, एंटीवर्म, एंटीएलर्जिक, एंटीट्यूमर आदि से भरपूर है। यह हर्बल ऑरगेनिक पेस्टिसाइ, साबुन, एंटीसेप्टिक क्रीम, दातुन, मधुमेह नाशक चूर्ण और सौंदर्य प्रसाधक सामग्री बनाने में प्रयोग किया जाता है।

घरेलू नुस्खों में उपयोग :

नीम के वृक्ष की ठंडी छाया गर्मी से राहत देती है तो पत्ते, फल–फूल, निंबौली और छाल का उपयोग विभिन्न बीमारियां दूर करने में किया जाता है इसलिये नीम के औषधीय गुणों को घरेलू नुस्खों में उपयोग कर स्वस्थ व निरोगी बनाया जा सकता है, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

- नीम के तेल से मालिश करने से विभिन्न चर्म रोग ठीक होते हैं।
- नीम की दातुन करने से दांत मजबूत होते हैं और दांतों में कीड़ा नहीं लगता तथा मुंह से दुर्गंध नहीं आती।
- नीम की पत्तियां चबाने से रक्त शोधन व त्वचा विकार रहित व चमकदार होती है।
- नीम की पत्तियों को पानी में उबालकर और ठंडा करके नहाने से चर्म विकार दूर होते हैं तथा यह चेचक के उपचार में भी सहायक है।
- नीम की छाल के काढ़े में धनिया और सौंठ का चूर्ण मिलाकर पीने से मलेरिया रोग में जल्दी लाभ होता है। नीम के पत्ते जलाकर धुंआ करने से मच्छर नष्ट होते हैं व मलेरिया से बचाव होता है।
- नीम के द्वारा बनाये गये लेप को बालों में लगाने से बाल स्वस्थ व मजबूत रहते हैं।
- नीम की पत्तियों का रस आंखों में डालने से कंजेक्टिवाइटिस समाप्त हो जाती है।
- पत्तियों के रस और शहद को 2:1 के अनुपात में पीने से पीलिया में फायदा होता है।
- बीजों के चूर्ण को खाली पेट पानी के साथ लेने से बवासीर और कब्ज रोग में फायदा होता है।
- बिच्छू के काटने पर नीम के पत्ते मसल कर काटे गये स्थान पर लगाने से जलन नहीं होती और जहर का असर कम होता है।
- छाल को जलाकर उसकी राख में तुलसी के पत्ते का रस और कपूर मिलाकर लगाने से फोड़े–फुन्सी व चर्म रोग ठीक होते हैं।
- विदेशों में नीम को एक ऐसे पेड़ के रूप में पेश किया जा रहा है जो मधुमेह से लेकर एड्स, कैंसर और कई बीमारियों का इलाज कर सकता है।

नीम के कीटनाशक गुणों का अनाज और संसाधन संरक्षण में उपयोग :

भारत कृषि पर निर्भर देश है। पिछले कई वर्षों में आबादी बढ़ने के साथ अनाज उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी हुई है परन्तु अनाज को सावधानी से संरक्षित न किया जाये तो इनमें घुन, कीड़े, सुंडी व फफूंद लगने की संभावना बढ़ जाती है तथा यह खाने और उगाने योग्य नहीं रह जाता। अनाजों के भंडारण के लिये जो रासायनिक कीटनाशक प्रयोग में लाये जाते हैं वह जहरीले होते हैं जिसका कुप्रभाव प्राणियों पर पड़ता है। नीम के पत्ते कीटनाशक के रूप में कार्य करते हैं इसलिये इन्हें अनाजों के संरक्षण में उपयोग किया जाता है। पत्तियों का उपयोग इस प्रकार है :

- **अनाज की कोंठों को सुरक्षित करना :** नीम की सूखी पत्तियों को बारीक पीसकर गारे में मिलाकर कांठियों के अन्दर व बाहर से लीप देना चाहिये इसके अलावा अनाज को कोंठों या कुठलों में सूखी नीम की पत्तियों को जलाकर धुआँ करने से इसके सुराखों में उपस्थित सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाएँगें तथा अनाज फफूंद व कीटों से मुक्त रहेगा।
- **अनाजों में नीम की पत्तियाँ मिलाना :** कुठलों में अनाज भरने से पूर्व 3–4 इंच सूखी पत्तियों की परत कोठी की सतह पर बिछा देना चाहिए, फिर लगभग दो फिट तक अनाज भरने के पश्चात फिर से पत्तियों की तह लगाकर एक–एक कर अनाज और पत्तियों की तह को लगाते जाए। जिससे अनाज सुरक्षित रहें।

- **बोरियों को उपचारित करना :** अनाज भरने से पूर्व बोरों को नीम की पत्तियों से उबाले गये पानी में रात भर डूबाकर उपचारित किया जाए एवं पानी से निकालकर बोरों को छाया में सूखा दें उसके बाद बोरों में अनाज का भण्डारण करें।
- **दलहनों का संरक्षण :** एक ग्राम नीम का तेल और एक किलों दाल मिलाकर अच्छी तरह से मिलाएँ जिससे नीम का तेल पूरी दाल में फैल जाए और उसे डब्बों या बोरों में अच्छी तरह से बन्द कर के रखें। समय के साथ नीम के तेल की गन्द या महक धीरे–धीरे कम होती है। इसे प्रयोग से पहले अच्छी तरह धो लें। जब दलहन को बुवाई के लिए तैयार करना हो तो उस स्थिति में एक किलो दाल बीज में दो ग्राम नीम तेल मिलाएँ जो एक जैविक विधि है।

निंबौली का उपयोग

निंबौली एक सस्ता घरेलू जैविक कीटनाशक है जिससे सत् तैयार करने के लिए पकी हुई निंबौली को 15–18 घण्टे पानी में भिगोंये तत्पश्चात भीगी हुई निंबौली को अच्छी तरह से डण्डे से मिला लें, जिससे निबौली के बीज, छिलका व गूदा अलग हो जाएँ। गूदे को छाया में सूखा कर व उसे अच्छी तरह से बारीक पीस कर पाउडर बनाएँ तथा उसे सूती कपड़े में पोटली बनाकर रात भर पानी में भिगो दें। सुबह पोटली को दबाकर रस निकाल लें तथा रस में एक प्रतिशत साबुन मिलाएँ, इस तैयार निबौली सत् को 5 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें। एक हैक्टेयर क्षेत्र में छिड़काव हेतु 5 प्रतिशत घोल तैयार करने के लिए 25 किलोग्राम निंबौली 500 लीटर पानी तथा 5 किलोग्राम साबुन की आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त गुणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि नीम एक जीवनदायी और विषम परिस्थिति में संघर्ष करने वाला वृक्ष है। इसकों सड़कों के किनारे और आंगन में एक छायादार पेड़ के रूप में उगाया जाता है, इसलिए इसे सस्ता, सुरक्षित एवं आसानी से गाँवों में उपलब्ध होने वाला 'हकीम' कहा जाता है। यह औषधीय गुणों के साथ जैविक कीटनाशक भी है। यह किसी भी संसाधन के संरक्षण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कड़वे स्वाद की वजह से यह फायदेमंद और प्रभावशाली होता है। अतः नीम को अमूल्य और ग्रामीण जन–जीवन का अभिन्न अंग एवं मित्र कहा जा सकता है।

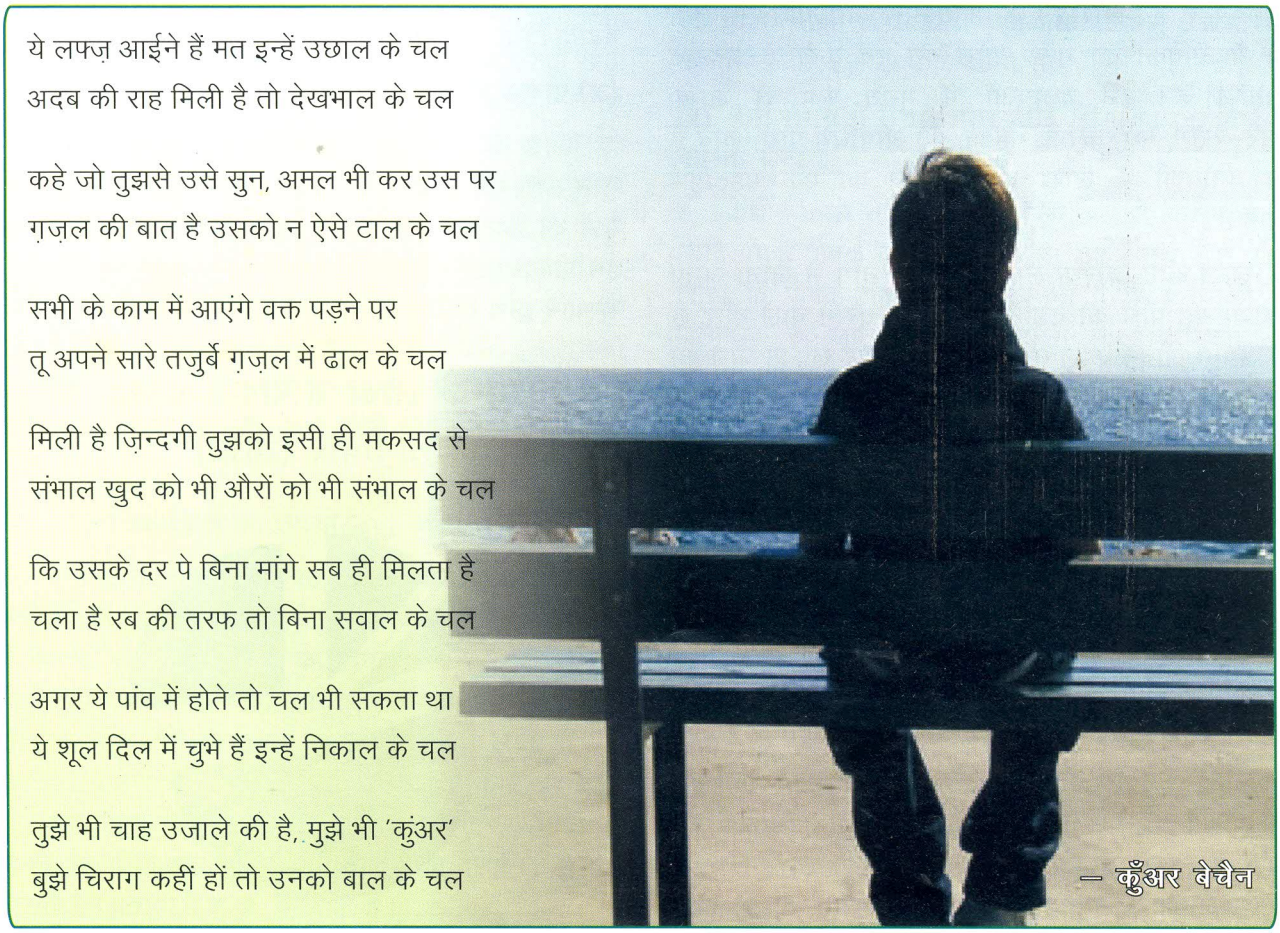

ये लफ्ज़ आईने हैं मत इन्हें उछाल के चल
अदब की राह मिली है तो देखभाल के चल

कहे जो तुझसे उसे सुन, अमल भी कर उस पर
ग़ज़ल की बात है उसको न ऐसे टाल के चल

सभी के काम में आएंगे वक्त पड़ने पर
तू अपने सारे तजुर्बे ग़ज़ल में ढाल के चल

मिली है ज़िन्दगी तुझको इसी ही मकसद से
संभाल खुद को भी औरों को भी संभाल के चल

कि उसके दर पे बिना मांगे सब ही मिलता है
चला है रब की तरफ तो बिना सवाल के चल

अगर ये पांव में होते तो चल भी सकता था
ये शूल दिल में चुभे हैं इन्हें निकाल के चल

तुझे भी चाह उजाले की है, मुझे भी 'कुंअर'
बुझे चिराग कहीं हों तो उनको बाल के चल

— कुँअर बेचैन

लाख कीट पालन : झारखण्ड की ग्रामीण आजीविका का एक प्रमुख स्रोत

डॉ. अरविन्द कुमार, श्री रामेश्वर दास एवं श्री प्रवीण कुमार नाग
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

प्रस्तावना

झारखंड एक जनजाति बाहुल्य राज्य हैं जिसकी अधिकतर ग्रामीण जनजाति समुदाय वन अथवा उससे सटे गाँव में रहती हैं। इन जनजाति समुदाय का वनों एवं प्रकृति से बहुत ही गहरा नाता है तथा इनकी अधिकतर क्रिया कलापों में प्रकृति का समावेश दिखाई देता हैं। झारखंड जो कि वन बाहुल्य क्षेत्र है यहाँ की भौगोलिक संरचना ऊबड़–खाबड़ एवं जमीन पथरीली पहाड़ी होने के साथ ही सिचाई स्रोतों की कमी होने के कारण अधितकम भू–भाग अन–उपजाऊ है। अतः यहाँ के ग्रामीण अपनी आजीविका चलाने एवं भरण पोषण करने के लिए प्राकृतिक संसाधनो पर अधिक निर्भर रहते है। झारखंड की अधिकतर जनजाति समुदायों की आजीविका का मुख्य स्रोत वन एवं वनो के अकाष्ठ वनोपज़ हैं। इन वनोपजों में मुख्य रूप से लाख, तसर–रेसम, मधु, करंज, महुआ, एवं औषधिय पौधे आदि हैं इन वनोपजो में लाख कीट पालन का एक महत्वपूर्ण स्थान हैं।

लाख कीट *केरिया लैका* वैज्ञानिक नाम से जाना जाता हैं तथा यह पौधे की टहनियो का रस चूसने वाले कीट हैं जो अपना जीवन काल एक जगह ही स्थिर रूप से पौधे का रस चूसते हुए ही बिता देते हैं। 'लाख' जो कि कीट अपने शरीर के लाख ग्रंथियो द्वारा उत्सर्जित करता हैं जिसका प्रयोग मानव उपयोगी विभिन्न वस्तुओ के निर्माण में होता हैं। लाख कीट मुख्य रूप से पलास, कुसुम एवं बेर पोषक पौधो पर ही पाला जाता हैं। परंतु आज–कल उपर्युक्त पोषक वृक्षों के अलावा वन छोला (*फ्लेमेंजिया सेमिलता*) नामक पौधे पर भी बहुत ही सफलता पूर्वक पाला जा रहा हैं।

लाख का उत्पादन मुख्य रूप से अधिक रूप से पिछडे जनजाति समुदाय द्वारा ही किया जाता हैं जोकि वनो एवं वनो के किनारे गाँव में बसते हैं। झारखंड राज्य देश का सर्वाधिक लाख उत्पादक राज्य हैं, जिसका लगभग 75% ग्रामीण जनजाति समुदाय लाख की खेती से जुड़ा हैं। परंतु यह समुदाय शिक्षा, वैज्ञानिक लाख की खेती के तरीके के ज्ञान, स्वस्थ लाख बीहन उपलब्धता के अभाव में लाख का उपयुक्त उत्पादन नहीं कर पाता हैं तथा उसे आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता हैं। झारखंड राज्य देश का सर्वाधिक लाख उत्पादक राज्य है जिसका कुल लाख उत्पादन भी दिन प्रति दिन नकारात्मक प्रभावित हो रहा हैं जिससे देश के कुल लाख उत्पादन में कमी आ रही है। विश्व में प्रथम लाख उत्पादक होने के बावजूद विश्व में लाख की खपत एवं मांग को देखते हुए हमें और अधिक उत्पादन करने एवं उत्पादन को बढ़ावा देने की आवश्यकता हैं जिससे ग्रामीण समुदाय की आजीविका भी बढ़ सके। इसी उद्देश्य से वन उत्पादकता संस्थान, राँची द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों की सहायता से ग्रामीण आजीविका को बढ़ावा दिया जा रहा हैं।

(अ) पोषक पौधे का संरक्षण

लाख के पोषक वृक्षों की झारखंड राज्य में बहुल्यता हैं। परंतु लाख की खेती में दिन प्रतिदिन हानि होने के क्रम में इन वृक्षों को काटकर अन्य उपयोगो में लाया जा रहा हैं जिससे इन पोषक वृक्षों की संख्या में तेजी से कमी हो रही है। अंतः संस्थान द्वारा खूँटी जिले के कुछ गाँव में इनका संरक्षण कार्य

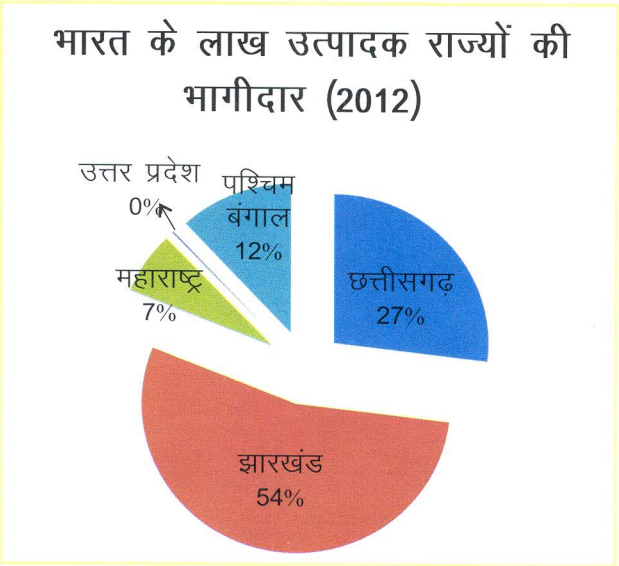

एवं लाख कीट पालन को प्रोत्साहित किया गया। यह पाया गया कि गाँव में लाख कीट के पोषक वृक्षों की भरमार है तथा इनसे पर्याप्त उत्पादन लिया जा सकता हैं।

(ब) कृषकों से मुलाक़ात एवं उन्हेंप्रेरित करना

लाख की खेती में लगातार मिल रही असफलता एवं उचित कीमत न मिलने से कृषक हतास हो चुके थे तथा लाख की खेती करने के लिये कोई भी कृषक तैयार नहीं हो रहा था। ये सभी आजीविका के अन्य स्रोतों की ओर अग्रसर हो रहे थे तथा कई गावों के लोग पलायन कर कहे थे, जिससे प्रदेश की प्रमुख प्राकृतिक संपदा का उत्पादन संकट में पड़ रहा था। संस्थान के वैज्ञानिक द्वारा इन क्षेत्रों में भ्रमण किया गया तथा उन्हें लाख उत्पादन के विभिन्न वैज्ञानिक तरीके के बारे में बताया गया, साथ ही उन्हें यह आशा दी गयी की संस्थान के वैज्ञानिक इस कार्य में हर कदम पर उनके साथ रहेंगे एवं सभी क्रियाएं वैज्ञानिक तरीके से तथा वैज्ञानिकों की देख–रेख में की जाएंगी, जिससे कृषक बहुत ही खुश एवं आशावित हुए एवं लाख उत्पादन करने के लिए तैयार हो गए।

(स) प्रशिक्षण एवं क्षमतावर्धन

सभी ग्रामीण किसान जो लाख कीट पालन से जुड़े उनको संस्थान द्वारा मुफ्त में संस्थान में ले जा कर तथा उनके खेतों में प्रशिक्षण दिया गया। कृषकों को वृक्षों की कटाई–छटाई, स्वस्थ लाख बीहन की पहचान आदि वैज्ञानिक तरीके का प्रशिक्षण दिया गया। इस प्रशिक्षण कार्य में गाँव के युवकों को ज्यादा प्रोत्साहित किया गया तथा इन युवकों में से ही कुछ को प्रत्येक गाँव में मुख्य प्रशिक्षक के रूप में तैयार किया गया, जोकि गाँव स्तर पर लाख कीट पालन में आ रही समस्याओं का तुरंत निराकरण कर सके। इन युवकों को लाख बीहन की व्यवस्था करने, कीटनाशक की व्यवस्था करने तथा कटाई के बाद लाख बेचने जैसे जिम्मेदारी भी दी गयी।

(द) वैज्ञानिक विधि का उपयोग

ग्रामीण कृषक लाख कीट पालन पौराणिक पारम्परिक विधियो द्वारा ही किया करते थे जिसमें पौधे की कटाई–छंटाई न करना, समय पर बीहन का संचारण न करना, अस्वस्थ बीहन का प्रयोग, बीहन की उपयुक्त मात्रा का प्रयोग न करना, कीट एवं बीमारियों को रोकने का प्रबंध न करना आदि शामिल थे। इस कारण लगभग 40% लाख उपज में कमी आ जाती थी। अंतः संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा इन सभी समस्यायों की गणना करने के बाद लाख कीट पालन का वैज्ञानिक तरीका कृषको को बताया गया जो निम्नवत हैं।

(य) क्षेत्रीय लाख बीहन की उपलब्धता

लाख कीट पालन में स्वस्थ बीहन की एक महत्वपूर्ण भूमिका हैं। पिछले 10–12 वर्ष पहले राज्य में लाख बीहन का उत्पादन राज्य सरकार के लाख बीहन प्रक्षेत्र में किया जाता था जिससे कृषक समय पर बीहन प्राप्त कर लेते थे। परन्तु आजकल सरकारी बीहन प्रक्षेत्र नक्सल प्रभाव एवं अन्य कारणों से खत्म हो चुके हैं अथवा वहां बीहन लाख उत्पादन नहीं हो रहा हैं। अतः कृषकों को बीहन की उपलब्धता समय पर नहीं हो पा रही हैं। साथ ही बीहन छत्तीसगढ़, ओड़ीशा एवं पश्चिम बंगाल आदि राज्यों से आयात किया जा रहा हैं जिसकी गुणवत्ता असंतोषजनक होती हैं तथा लाख कीट विपरीत जलवायु के कारण जीवित नहीं रह पाते। अतः राज्य के हर क्षेत्र में किसानो द्वारा स्वयं ही लाख बीहन का उत्पादन करना होगा जिससे समय पर स्वस्थ लाख बीहन किसानो को मिल सके। जिसके लिए गाँव अथवा खंड स्तर पर लाख बीहन फार्म की स्थापना करने की अवश्यकता है। इसी क्रम में खूंटी जिले के अलग–अलग गावों में तीन सामाजिक लाख बीहन प्रक्षेत्र की स्थापना की गयी जिसमें गाँव के सभी कृषकों के पलास के वृक्षो को समावेशित किया गया। इसमें तीन अलग–अलग गावों में 410 पलास के 700 एवं 1100 पलास के वृक्षों को वैज्ञानिक तरीको से प्रबंधित किया गया, जिससे क्षेत्र में समय पर स्वस्थ बीहन लाख उपलब्ध हो सके।

(र) कम समय में तैयार होने वाले लाख पोषक पौधे को बढ़ावा देना

प्राचीन काल से लाख कीट पालन पलास, कुसुम एवं बेर आदि प्रमुख पोषक वृक्षों पर किया जा रहा है तथा इस क्षेत्र में लाख के पोषक पौधे की भरमार भी हैं परंतु उनकी उम्र अत्यधिक हो जाने के कारण उनसे लाख उत्पादन लेना अधिक मुश्किल होता हैं। साथ ही कुछ क्षेत्रों में ये पोषक वृक्ष काटे जा चुके है अथवा उपलब्ध नहीं है अतः क्षेत्र में नये पोषक वृक्ष लगाने की आवश्यकता है। परंतु इन पोषक वृक्षों की धीमी बढ़वार होने के कारण 8 से 10 वर्ष का समय लगता है। कम समय में लाख की खेती को प्रोत्साहित करने के लिए तथा जिन कृषको के पास ये पौधे उपलब्ध नहीं हैं तथा उनको कम समय में ही अधिक लाख उत्पादित करने के लिए वन छोला (*फ्लेमेंजिया सेमिलाता*) एवं भालिया (*फ्लेमेंजिया मैक्रोफिला*) नामक पौधे अति उपयुक्त है। ये पौधे कुसुमी लाख के लिए अति उपयुक्त पोषक हैं। साथ ही इनकी लम्बाई 2.5 तथा 3 मी. ही होने के कारण इनका प्रबंधन भी बहुत आसान हैं। ये पौधे एक वर्ष में ही लाख कीट पालन योग्य हो जाते हैं तथा हर छः माह के अंतराल पर लाख उत्पादित किया जा सकता है। ये पौधे क्षेत्र के किसानों को लाख उत्पादन के लिए बहुत ही

लाभकारी लगे एवं इसे सहजता से स्वीकार किया गया। इन्हे मुख्य रूप से युवा कृषको ने अपनाया जो अधिक मेहनत करना चाहते है तथा अधिक लाभ कमाना चाहते है।

परिणाम

1) खूँटी जिले के 10 गाँव जंहा पूर्व में लाख की खेती समाप्त हो चुकी थी के साथ संस्थान द्वारा कार्य किया जा रहा हैं गाँव वालों के साथ कार्य करने के बाद बारी गाँव में 5 कुसुम के पेड़ पर लाख के वैज्ञानिक तरीके से खेती की गयी परिणाम स्वरूप रु. 80,000/– के लाख का उत्पादन किया गया।

2) इसी तरह खूँटी ज़िले के जीवरी गाँव में एक कृषक के 35 बेर के पेड़ पर भी वैज्ञानिक लाख के खेती संस्थान द्वारा कराई गयी जिसमें कुल रु. 18,000 का प्रथम बार उत्पादन किया गया।

3) सामाजिक लाख बीहन उत्पादन के क्रम में बारी गाँव के 410 पलास के पेड़ों को शामिल किया गया तथा उसमें संस्थान के वैज्ञानिकों की देख–रेख में खेती कराई गयी। इन 410 पलास के पेड़ो से कुल 529 किलो बीहन लाख का उत्पादन किया गया जिसकी बाजार कीमत रु. 2,11,600 होती हैं। इस उत्पादित लाख बीहन को अगल–बगल के गाँव उधार रूप में दिया गया जिससे लाख उत्पादन को बढ़वा दिया जा सके।

   इसी क्रम में पुनः 700 पलास के पेड़ों को लाख पालन में सम्मिलित किया गया जिससे एक साथ अक्टूबर 2011 में 600 किलो लाख बीहन का उत्पादन किया गया जिसकी न्यूनतम बाजार कीमत रु. 2,40,000 आँकी गयी। उपरोक्त लाख बीहन द्वारा ही पुनः जीवरी गाँव में नए 1100 पेड़ों की संचारित किया गया। जिससे अर्ध–कटाई में जुलाई 2012 में 140 किलो बीहन लाख सिर्फ 800 पेड़ों से प्राप्त हुआ जिसकी बाजार कीमत रु. 84,000 हुई। पुनः अक्टूबर 2012 में पूर्ण कटाई में 900 किलो बीहन लाख प्राप्त हुई जिसकी बाजार कीमत रू. 6,30,000 थी।

4) लाख की खेती को बढ़ावा देने के क्रम में वन छोला (फ्लेमेंजिया सेमिएलता) के पौधे को भी शामिल किया गया, जिसमें प्रथम बार 16,500 पौधे का जुलाई 2011 में रोपण किया गया। इसके अलावा जुलाई 2012 में 8000 अतिरिक्त पौधे जीवरी गाँव में लगवाए गये। प्रथम बार के लगे पौधों में से कुल 9000 पौधे पर जुलाई 2012 में लाख बीहन संचरण किया गया जिससे फरवरी 2013 में कुल 245 किलो लाख बीहन उत्पादित किया गया। जिसकी कीमत बाजार में 1000 प्रति किलो की दर से रु. 2.45 लाख में बेचा गया।

निष्कर्ष

लाख कीट पालन झारखंड राज्य एक महत्वपूर्ण, पारंपरिक एवं लाभकारी जीविका का स्रोत हैं जिसके लिए यहाँ प्रचुर मात्रा में पोषक पौधों की उपलब्धता भी हैं परंतु केवल 5–10 पौधों पर ही लाख की खेती की जा रही हैं। अंतः किसानों को प्रोत्साहित करके, उन्हें लाख की खेती से जोड़ना, उन्हे वैज्ञानिक लाख की खेती के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता हैं। जिस तरह वन उत्पादकता संस्थान, रांची द्वारा लाख की खेती को बढ़वा देने के उद्देश्य से खूँटी ज़िले में अभियान चलाया गया एवं सफलता हासिल की गयी इसी प्रकार पूरे राज्य में अभियान चलाने की आवश्यकता हैं। इसके अलावा बीहन लाख की राज्य में बहुत ही कमी है अंतः सामुदायिक स्तर पर लाख बीहन उत्पादन कर स्थानीय लाख बीहन उपलब्ध कराना होगा। इसके अलावा वन छोला जो छोटी ऊचाई का पौधा हैं जिस पर कुसुमी लाख अच्छी तरह पैदा की जा सकती हैं झारखंड के साथ – साथ सम्पूर्ण देश में लाख की खेती के लिए फैलाने की आवश्यकता है। जिससे देश के कुल लाख उत्पादन में वृद्धि होगी साथ ही किसानों की आर्थिक दशा भी मजबूत होगी।

एक दिन बैठा समुंदर तीर पर
सुन रहा था बुलबुले की मैं कथा।
एक कागज की दिखी किश्ती तभी
थी छुपी जिसमें पहाड़ों की व्यथा।

बोझ इतना धर, मुझे अचरज हुआ,
चल रही है किस तरह यह धार में।
वह हंसी, बोली, चलाती चाह है
आदमी चलता नहीं संसार में।

– अज्ञात

शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के विशेष संदर्भ में जैव विविधता तथा जैव उत्पादकता

श्री एस. आर. बालोच
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

हमारे देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 12 प्रतिशत भाग शुष्क क्षेत्र है, जिसका 90 प्रतिशत थार रेगिस्तान में है। इस 90 प्रतिशत में से 61 प्रतिशत राजस्थान, 19.6 प्रतिशत गुजरात, 5 प्रतिशत पंजाब एवं 4 प्रतिशत हरियाणा में है।

इस शुष्क क्षेत्र में न केवल कम एवं अनियमित वर्षा वरन चलायमान रेतीले टिब्बे, धूल भरी आंधिया एवं 50 डिग्री से.ग्रे. तक का तापमान क्षेत्र की भयावहता को और बढ़ा देता है। यहाँ प्रायः हर 10 वर्ष में से 4 से 6 वर्ष सूखा एंव अकाल जैसी स्थितिया बनती रहती है। यहाँ पर वर्षा औसतन 100 से 400 मि.मी. तक ही होती है ।

विगत 54 वर्षो में केवल 8 वर्ष अच्छा मौसम रहने से क्षेत्र में समय समय पर अकाल ग्रस्त वर्ष 1901, 1905, 1918, 1946, 1956, 1957, 1968, 1969, 1974, 1984, 1987 आदि में पड़े है। इन सभी में छप्पनिया अकाल अर्थात 1956 का अकाल जिसे त्रिकाल (अर्थात चारे, पानी एवं खाद्य तीनों की कमी) कहते है, सदी का भीषणतम अकाल माना जाता है।

पिछले 50 वर्षो में ग्लोबल वार्मिग के फलस्वरूप कई चौकाने वाले तथ्य सामने आये है। गंगोत्री का ग्लेशियर 30 मीटर प्रतिवर्ष पीछे खिसक रहा है, बड़े–बड़े हिमखंड टूट रहे है तथा समुद्री जल स्तर का ऊँचा होना, ये सभी तथ्य खतरे का संकेत दे रहे है जिससे तटीय आबादी के साथ आम जन को भी भारी हानि भविष्य में हो सकती है। अंतर्शासकीय जलवायु परिवर्तन पैनल (आई.पी.पी.सी.) के एक अनुमान के अनुसार 1990 की तुलना में धरती का तापमान सन 2014 तक 2 से 5 डिग्री तक बढ़ सकता है।

विश्व के तापक्रम में वृद्धि सबसे भयंकर पर्यावरणीय, चुनौतियों में से एक है। इसके कारण पिछले 10 हजार वर्षो से स्थिर जलवायु में परिवर्तन होने से भयंकर खतरा उत्पन्न हो रहा है। 21 वीं शताब्दी में विश्व के तापक्रम में वृद्धि से फसलो के विनाश, पानी का अभाव, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि जैसी अनेक गंभीर समस्याए उत्पन्न होगी एवं सूखे जैसी परिस्थितियों का सामना जल एवं भूमि संरक्षण तथा वानिकी विकल्प द्वारा कार्बन पृथक्करण कर किया जा सकता है।

राजस्थान में विकट परिस्थितियों के बावजूद यहां के निवासियों ने वनों के संरक्षण हेतु अथक प्रयास किया है। यहां के खेजड़ी गांव में धार्मिक एवं पारम्परिक वृक्ष खेजड़ी की रक्षा हेतु किया गया सैकडों लोगों का बलिदान एक अनूठा उदाहरण पेश करता है जो विश्व भर में अन्यत्र नहीं मिलता है।

आजादी के पश्चात वनों एवं वन प्राणियों का तेजी से ह्रास हुआ है। भारत में वन सेवा के निर्माता और पहले वन इंस्पेक्टर जनरल सर वी. ब्राड्रिस की नियुक्ति के साथ ही 1864 में वैज्ञानिक वानिकी की नींव रखी गयी। भारत के पश्चिमी भागों में विशेषकर राजस्थान में वातावरणीय परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के कारण वानिकी कार्यों में आशातीत सफलता नहीं प्राप्त हुई है तथा यहां आज भी वनों का क्षेत्रफल न्यूनतम निर्धारित वनों के क्षेत्रफल से कम है। राजस्थान में जहां खेजड़ी (*प्रोसोपिस सिनेरेरिया*) से सांगरी खोखा आदि खाद्य पदार्थ मिलते है वहीं कूमट (*अकेसिया सेनेगल*) या अन्य को मिलाकर पचकूटा की विशिष्ट एवं प्रोटीन युक्त सब्जी बनाई जाती है। यहां के स्थानीय वृक्षों को संरक्षित रखने में इस क्षेत्र के लोगों ने बहुत रुचि दिखाई है जिस से विपरीत परिस्थितियों में भी वानिकी के स्रोतों का संरक्षण सम्भव हो पाया है। इन वानिकी स्त्रोतों के द्वारा रेशा, तेल, टेनिन, डाई गौंद, रेजिन औषधीय पादपों एवं खाने योग्य पदार्थ प्राप्त होते है। 250 वानिकी पादप स्त्रोतों के बीजों से तैल निकाला जाता है। 100 वानिकी पादपो से टेनिन एवं डाई में प्रयोग होता है। 120 प्रजातियां का इस्तेमाल गोंद एवं रेसिन में होता है।यदि भारत के सक्रिय व्यापार में विभिन्न औषधीय पादपों की उनके आदत के आधार पर गणना करें तो प्राप्त जानकारी के अनुसार कुल 880 प्रजातियों में से निम्न रूप सामने आती है।

1. **रेशे देने वाले पादप** : रेशों से कई उपयोगी सामान बनाये जाते है। ये रेशें छाल या पत्तियों से प्राप्त हो सकते है। *स्टरकुलिया उरेन्स* (करैया) *हैलिक्टेरेस आइसोरा* (मरोरफली), *यूजीनिया उजेन्सिस* (सनडेन), *अकेशिया ल्यूकोफीलिया* (तमिल बबूल), *बोहिनिया रेसीमोसा* (जींजा), *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* (पलास ढ़ाक), *केलोट्रोपिस प्रोसेरा* (आक), *फाइकस रीलीजिओसा* (पीपल), *फाइकस बैगालेन्सिस* (बरगद), *कोर्डिया ओबलिकुआ* (गूंदा),

कोर्डिया रोथिल (गूंदी), *लेनिया कोरोमेन्डलिका* (पौदल), *काइडिया केलिसीना* (पूला), *इरीथ्रीना सुबेरोसा* (गढ़ा पलास), *कोटोलेरिया बुरिया* (सीनिया), *लेप्टाडीनिया पाइरोटेक्निका* (खीफ), आदि पौधों की छाल से रेशे प्राप्त होते है जबकि *पेन्डेनस टेकटोरियस* (केवड़ा), *टाइफा ऐलिफेनटाइना* (सीरा पटेरा), *ऐगैव अमेरिकाना* (रामबाँस), *फोनिक्स सिलवेस्टेरिस* (खजूर) तथा *बोरासस फलैवैलीफर* (टाड) आदि पौधों की पत्तियों से रेशा प्राप्त हो सकता है कुछ अन्य पौधों यथा *बोम्बेक्स सीबा* (सेमल या इंडियान कपोक), *केलोट्रोपिस प्रोसेरा* (आक), *मोलारीना ऐन्टीडाइसेन्टीरिका* (इन्द्राज) तथा *कोलीस्परमम किरलिजियोसम* (गेनियारा) आदि से रेशम के समान धागा प्राप्त किया जा सकता है।

2. **तेल** : तेल मानव के लिए कई रुपों में उपयोगी है। कई वानिकी पादप स्त्रोतों के बीजों से तेल निकाला जाता है। *मधुका इंडिका* (महुआ), *पोंगामिया पिन्नाटा* (करंज), *अजाडिरेक्टा इंडिका* (नीम), *जेट्रोफा कुरकस* (रतनजोत या जमालगोटा), *साल्वाडोरा ओलिओइडिस* (पीलू), *साल्वेडोरा पर्सिका* (खारा जाल), *बेलेनाइटस एजेप्टीका* (हिंगोटा), *सेपिन्डस इमरजीनेटस* (अरीठा) आदि के बीजों से तेल निकाला जा सकता है।

3. **टेनिन एवं डाई** : औद्योगिक उत्पाद एवं अन्य कार्यों में टेनिन एवं डाई का प्रयोग होता है। ये टेनिन एवं डाई विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त हो सकते है। *अकेसिया निलोटिका* (बबूल), *केसिया फिस्टूला* (अमलतास), *टर्मिलेनिया अर्जुना* (अर्जून), *टेमोरिक्स एफाइला* (फराश), आदि की छाल से टेनिन प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार *ऐम्बलिका आफिसिनेलिस* (आंवला), *टर्मिनेलिया बेलेरिका* (बहेड़ा), *अकेसिया निलोटिका* (बबूल), *जिजिफस ग्लेबीरिया* (गटथोर) आदि के फलों से टेनिन प्राप्त हो सकता है। कुछ पौधों यथा *ऐनोगेसिस लेटीफोलिया* (धावडा), *केरिसा स्पीनेरम* (करोंदा), *लासोनिया इनरमिस* (मेंहदी), *एनोगेसिस पेनडुला* (धोकड़ा), तथा *प्रोसोपिस सिनरेरिया* (खेजड़ी), *टेमेरिक्स एफाइला* (फराश) की पत्तियों की गांठ से भी टेनिन प्राप्त हो सकता है।

डाई के वानिकी स्रोत भी राजस्थान में बहुतायत में हैं। *अकेसिया कटैचू* (खैर) की लकड़ी से, *टर्मिनेलिया ऐलेटा* (सदरु), *माइमोसूप्स ऐलिनगाई* (मोलसिरी), *लेनिया कोरोमडलिका* (गोडल) आदि की छाल से, *मैलोटस फिलिपिनेनसिस* (कमैला) के पुष्पों से तथा *मोरिडा टिनकटोरिया* (आल), *पुनिका ग्रेनेटम* (अनार) की जड़ों से भी डाई प्राप्त की जा सकती है।

4. **गौंद** : औद्योगिक रुप में गोंद एवं रेसिन महत्वपूर्ण पदार्थ है। राजस्थान में पाये जाने वाले अनेक पादपों से गम एवं रेसिन प्राप्त हो सकते है। इन पादपों से प्राप्त गम (गौंद) विभिन्न नामों से व्यापारिक महत्व के है। *अकेसिया निलोटिका* (बबूल) से गम बबूल, *अकेसिया सेनेगल* (कूमट) ये गम अरेबिक, *अकेसिया जैकोमोंटाई* (बाओनली) से गम *बाओनवाल, अकेसिया कटैचू* (खैर) से गम खैर, *ऐनागेसिस लेटिफोलिया* (धावड़ा) से गम धोकड़ा, *बोसविलिया सिरेटा* (सलार) से गम साई, *बोम्बैक्स सीबा* (सेमल) से *बम सेमल, बुचैनिया लेटिफोलिया* (चिंरोजी) से गम अचार, *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा* (पलाश) से गम कीनो बंगाल, *कोलोस्पर्मम रिलिजिओसम* (गेनिआरा) से गम ट्रेगाकेन्थ, *कोमिफोरा विगटाई* (गूगल) से गम गूगल, *मोरिंगा ओलिफेरा* (सेजना) से गम मौरिंगा, *मैगिफेरा इंडिका* (आम) से गम मैंगो, *टेरोकार्पस मारसूपियम* (बीजासल) से गम कीनो, *स्टरकूलिया यूरेन्स* (कटीरा) से गम कटीरा एवं कई अन्य पादपों से भिन्न–भिन्न प्रकार के गौंद प्राप्त हो सकते है।

5. **औषधीय पादप** : राजस्थान औषधीय पादपों की खान है। यहां पर सैकडो औषधीय पादप उपलब्ध है तथा इनका स्थानीय लोग देशी इलाज के रुप में सदियों से उपयोग कर रहे है। ये औषधीय पादप विभिन्न पादप भागों से प्राप्त होते है। *ऐसपेरेगस रेसीमोसस* (सतावरी), *क्लोरोफाइटम बोरिविलिएनम* (सफेद मूसली), *क्लोरोफाइटम प्रजाति* (काली मूसली), *बोरहविया डिफ्यूजा* (पुर्ननवा), *हेमीडेसमस इंडिकस* (अनंतमूल), *साइका कोरडीफोलिया* (बेला), *कुरकुमा ऐरोमेटिका* (वन हल्दी), *ड्रोक्सीलोन इंडिकम* (सायोनाका), *बेलेनाइटेस ऐजिप्टिका* (हिंगोटा), *विथैनिया सोमनीफेरा* (अश्वगंधा) आदि की जड़ें औषधीय महत्व की है। इसी प्रकार *ऐंगल मारमीलोस* (बेल) की जड़ें एवं अन्य पादप भाग तथा *केसिया फिस्टुला* (अमलतास) की जड़ एवं फल औषधीय रुप में उपयोगी है।

जिमनिमा सिलवेस्टरी (गुडामार) एवं वाइटैक्स निगुण्डो (निगुण्डी) की पत्तियों तथा *टर्मिनेलिया अर्जुना* की छाल औषधीय महत्व की है। *वुडफोर्डिया फ्रुटीकोसा* (धावरी) के फूलों से *ट्राइबुलस टेरिसटेरिस* (गोखरु), *प्लान्टेगो ओवेटा* (इसबगोल), *जेट्रोफा करकुस* (इन्द्रायन) आदि के फलों से औषधीयॉ प्राप्त होती है। *इकलिप्टा अल्वा* (भृंगराज), *ऐलोय वेरा* (ग्वारपाठा), *अजाडिरेक्टा इंडिका* (नीम) का सम्पूर्ण पादप भाग औषधीय महत्व का है। इसके अलावा *टीनोस्पोरा कोर्डीफोलिया* (नीमगिलोय), *धतूरा मेटेल* (धतूरा), *सिटूलस कोलोसिनथिसिस* (तुम्बा), *प्रोसोपिस सिनरेरिया* (खेजड़ी) आदि

अनेक पादप राजस्थान में पाये जाते है तो औषधीय रुप में उपयोगी है। अश्वगंधा, गुग्गल, सतावरी यहां बहुतायत में होते है।

6. **खाने योग्य पदार्थ :** मरु क्षेत्र में कृषि की अनिश्चितता एवं लगातार अकाल पड़ने के कारण क्षेत्र के लोग प्राकृतिक रुप से उपलब्ध वनस्पति खाद्य पदार्थो पर निर्भर रहते है। राजस्थान में उपलब्ध वानिकी स्त्रोतों के विभिन्न पादप भागों से प्राप्त होते है। *ऐनोना स्क्वैमोसा* (सीताफल), *जिजिफस मोरिसिआना* (बेर), *जिजिफस नुमुलेरिया* (जरबेर), *ऐंगल मारमीलोस* (बेल), *ऐम्बलिका आफिसिनेलिस* (आंवला), *माओसेप्स एलिगनाई* (मोलासिरी), *मानलकारा हैक्सेन्ड्रा* (खिरनी), *शाइजियम कुमिनी* (जामुन), *मैगीफेरा इंडिका* (आम), *टेमेरिन्डस इंडिका* (इमली), *कोर्डिया प्रजातियां* (गूंदा व गूंदी), *ग्रीविया प्रजाति* (फालसा), *अकेसिया सेनेगल* (कुमट), *प्रोसोपिस सिनेरेरिया* (खेजड़ी), *केपेरिस डेसीडुआ* (केर), *साल्वाडोरा ओलिओइडिस* (पीलू), *साल्वाडोरा परसिका* (खारा जाल), *मोरिंगा ओलीफेरा* (सहजन), *फोनिक्स सिल्वेस्टेरिस* (खजूर), *अजेडिरेक्टा इंडिका* (नीम) आदि के फल खाये जाते है।

मधुका इंडिका (महुआ), *बोहिनिया वेरीगेटा* (कचनार), *बोम्बेक्स सीबा* (सेमल), *यूजीनिया यूजेनसिस* (सेन्डेन) आदि के फूलों से तथा *ऐसपेरेगस रेसीमोसा* (सतावरी), *डायस्कोरिया* प्रजाति (जमीकंद या रतालू) आदि की जड़ों से खाद्य पदार्थ प्राप्त किये जाते है।

इसके अतिरिक्त साबुन के विकल्प के रुप में *सेपिन्डस* प्रजाति (अरीठा) एवं *बेलेनाइटस* प्रजाति (हिंगोटा) का प्रयोग भी स्थानीय लोग करते है। राजस्थान में पाये जाने वाले कई अन्य पादप स्रोत खस, चंदन व महुआ सुंगध के रुप में तथा बेर, पलास, पीलू, लाखकीट के माध्यम के रुप में, शहतूत, अर्जूना, सिल्कवर्म के कीटों हेतु माध्यम के रुप में प्रयुक्त होती है।

इस प्रकार राजस्थान की स्थानीय वानिकी प्रजातियां बहुत ही उपयोगी है। इनके संरक्षण द्वारा पर्यावरण की रक्षा के साथ–साथ आर्थिक रुप से समृद्धि भी अर्जित की जा सकती है। ये पादप स्रोत इस क्षेत्र की विकट परिस्थितियों में इनके सच्चे एवं उपयोगी मित्र सिद्ध हुए है।

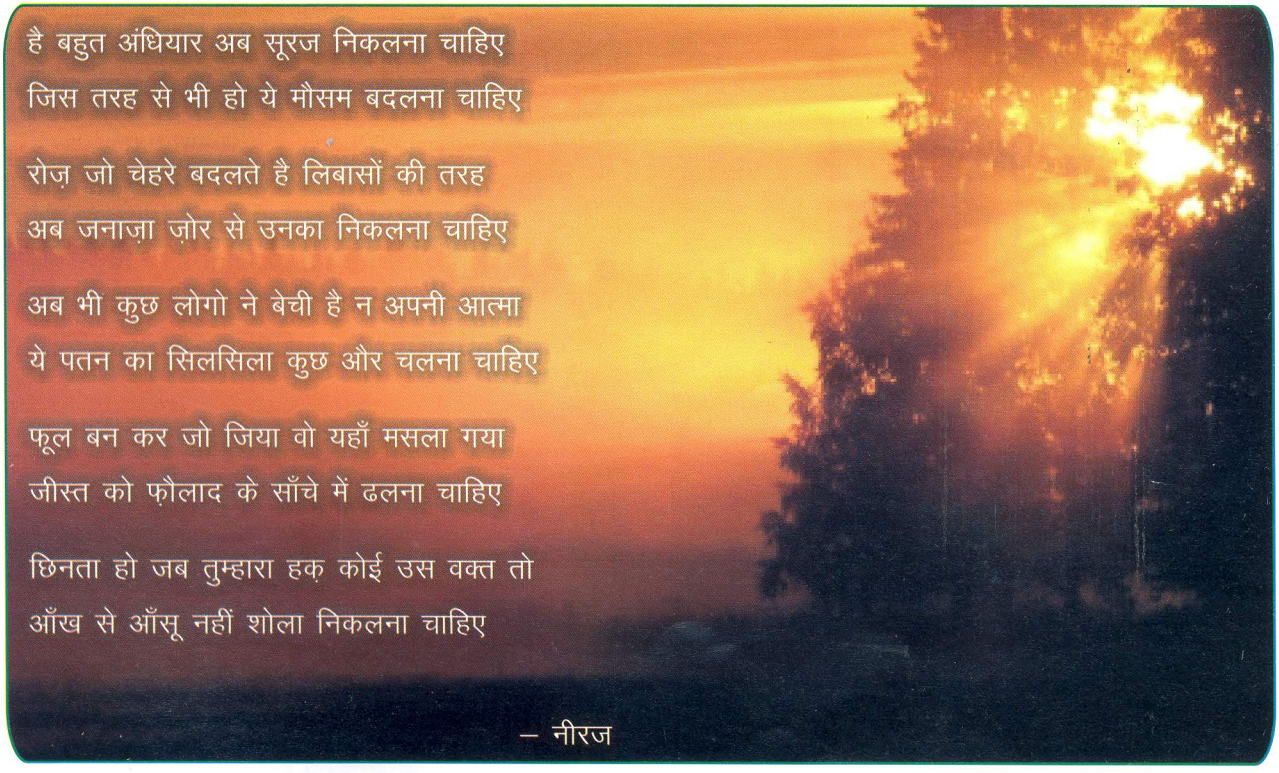

फ्लेमेंजिया सेमियालता पर लाख कीट पालन

श्री रामेश्वर दास, डॉ. अरविन्द कुमार एवं
श्री एस. एन. वैद्य
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

फ्लेमेंजिया सेमियालता एक दलहनी कुल का झाड़ीनुमा पौधा है जिसे ग्रामीण क्षेत्रों में वन छोला के नाम से जानते हैं। इसकी पौधे की लम्बाई लगभग 2.5 से 3 मीटर तक होती है। इस पौधे को बीज या डालियों के कटिंग के द्वारा तैयार किया जा सकता है। *फ्लेमेंजिया सेमियालता* के लिए मिट्टी की अम्लीयता सामान्य होनी चाहिए। पौध से एक वर्ष बाद नवम्बर/दिसंबर महीने में फूल आने लगते हैं तथा मार्च–अप्रैल में फलियाँ पकने लगती हैं। *फ्लेमेंजिया सेमियालता* विशेषतः कुसमी कीट का पोषक पौधा है जिससे कुसमी लाख का अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।

पौध की तैयारी :

अप्रैल–मई माह में पौधशाला में बीज से सीधे बीजशाला या पॉली बैग में बीज डालकर पौध तैयार किया जा सकता है। बीज की अच्छी गुणवता होने पर लगभग 80–85% अंकुरण पाया जा सकता है। बीज अंकुरण की अवधि 7–10 दिनों का होती है। जुलाई के मध्य से पौधे रोपण के लायक तैयार हो जाते हैं।

पोध रोपण :

पौध रोपण के पूर्व मार्च–अप्रैल महीनें में ही गढढे (45×45×45 से.मी.) तैयार कर लेना चाहिए। सामान्य पौध से पौध की दूरी 1 मीटर होनी चाहिए जिसके लिए एक हेक्टर में लगभग 8500 पौध लगते हैं। यदि अन्तः फसल लेनी हो तो पौध की दूरी 1 मीटर एवं लाइन से लाइन की दूरी 2 मी. रखनी चाहिए जिसके लिए लगभग 7000 पौधे प्रति हेक्टर लग सकते है जिसमें पौध लगाने से पूर्व सड़े गोबर की खाद (10.15 किलोग्राम) या केचुआं खाद (1.2 किलोग्राम) प्रत्येक गढ़े में डालकर पौध लगानी चाहिए।

फ्लेमेंजिया सेमियालता पर लाख की खेती

रख रखाव :

1. वर्षाकाल के पश्चात सप्ताह में दो या तीन बार या समयानुसार सिंचाई करें
2. जानवरों से बचाव के लिए घेरा लगाना आवश्यक होता है
3. समयानुसार पौधों की निराई–गुराई करें
4. लाख फसल की सुरक्षा आवश्यक है

लाख बीज संचारण अवधि : *फ्लेमेंजिया सेमियालता* पौध रोपण के एक से डेढ़ वर्ष बाद लाख कीट संचारण करना चाहिए। लाख कीट का संचारण जून/जुलाई में करें। प्रथम वर्ष में लाख बीज की मात्रा लगभग 20.30 ग्राम कुसुमी लाख बीज, 60 मेष की जाली में भरकर प्रति पौध संचारण करना चाहिए। प्रथम वर्ष में 35% ही डालियाँ लाख कीट बैठने योग्य होता है। अन्तः फसल की सिचाई के साथ – साथ *फ्लेमेंजिया सेमियालता* पौध की भी सिंचाई हो जाती है। यदि सिंचाई के भरपूर संसाधन हो तो जनवरी–फरवरी में भी *फ्लेमेंजिया सेमियालता* पौध पर लाख बीज संचारण कर जेठ्वी फसल ले सकते हैं।

विधिः– एक या डेढ़ वर्ष बाद लाख बीज का संचारण करना चाहिए तथा लाख कीट के निर्गमन के पश्चात या 21 दिन बाद खाली लाख (फूंकी लाख) को हटा देना चाहिए। दूसरे वर्ष से 40.50 ग्राम लाख बीज संचारण प्रति पौध करना चाहिये।

लाख बीज संचारण के एक माह बाद कीट नाशक दवा का (इथोफेन्प्रोक्स 10 ई.सी. की 2 मिली प्रति लीटर पानी या स्पाइनोसेड़ 2.5 ई.सी. 2 मिली प्रति लीटर पानी में) घोल बनाकर लाख लगी डालियों पर मशीन द्वारा छिड़काव अवश्य करना चाहिए। प्रथम छिड़काव के एक एक माह के अंतराल पर कीटनाशक एवं फफूंदनाशक दवा (इथोफेन्प्रोक्स 10 ई. सी. की 30 मि.ली. + 3 ग्राम. कारबन्दाजिम + 15 लीटर पानी

परिपक्व लाख की कटाई

या स्पाइनोसेड़ 2.5 ई.सी. 30 मिली + 3 ग्राम बवेस्टिन + 15 लीटर पानी) का साथ में घोल बनाकर छिड़काव करें।

यदि कुहासे या फफूंद की समस्या ज्यादा हो तो 15 दिनों के अन्तराल पर 3 ग्राम. कारबन्दाजिम को 15 लीटर पानी में घोल बनाकर लाख लगी डालियों पर छिड़काव करना चाहिए।

फसल कटाई :

लाख परिपक्व होने के बाद ही कटाई की जानी चाहिए। अगहनी लाख जनवरी–फरवरी माह में तथा जेठ्वी लाख जून–जुलाई माह में परिपक्व हो जाती है। फसल की कटाई 5–10% कीट निर्गमन के बाद ही काटनी चाहिए। लाख काटते समय पौधों की कटाई जमीन से 10 से 15 सेमी. ऊपर से करनी चाहिए।

उत्पादन :

फ्लेमेंजिया सेमियालता पर बीज लाख उत्पादन लगभग 14–16 क्विंटल प्रति हेक्टर हो सकता है। जिसकी आज के बाजार में कीमत लगभग चौदह लाख से सोलह लाख रूपये होती है।

फ्लेमेंजिया सेमियालता पर लाख की खेती का लेखा जोखा :

(क) गैरआवर्ती खर्च :		
विषय	संख्या / क्षेत्र	राशि
घेरान, उपकरण, आदि	एक हेक्टर	3.60 लाख
	कुल योग	**3.60 लाख**
(ख) आवर्ती खर्च :		
मजदूर कार्य दिवस	400 (/150/)	0.60 लाख
लाख बीज	240 किलो ग्राम (/1000/)	2.40 लाख
कीट नाशक एवं अन्य		0.10 लाख
	कुल योग	**3.10 लाख**
(ग) आमदनी :		
फूंकी (700/– प्रति किलो)	96 किलो ग्राम	0.67 लाख
लाख बीज (1000/ प्रति किलो)	1600 किलो ग्राम	16.00 लाख
छिली लाख (50 ग्राम/ पौध 700/– प्रति किलो)	80 किलो ग्राम	0.56 लाख
	कुल योग	**17.23 लाख**

शुद्ध लाभ : (ग) – (क) + (ख) = शुद्ध लाभ = 10.52 लाख

यदि पंक्तियों के बीच अंतर फसल लगाएँ तब उत्पादन एवं आमदनी :– (पोधों की संख्या – 7000)

(क) गैरआवर्ती खर्च :		
विषय	संख्या / क्षेत्र	राशि
घेरान, उपकरण, आदि	एक हेक्टर	3.60 लाख
	कुल योग	**3.60 लाख**
(ख) आवर्ती खर्च :		
मजदूर कार्य दिवस	340 (@150/)	0.51 लाख
लाख बीज	210 किलो ग्राम (@1000/)	2.10 लाख
कीट नाशक एवं अन्य		0.10 लाख
	कुल योग	**2.71 लाख**
(ग) आमदनी :		
फूंकी (700/– प्रति किलो)	84 किलो ग्राम	0.59 लाख
लाख बीज (1000/ प्रति किलो)	1400 किलो ग्राम	14.00 लाख
छिली लाख (50 ग्राम/ पौध 700/– प्रति किलो)	70 किलो ग्राम	0.49 लाख
इंटर क्रॉप (सब्जी, अदरक, हल्दी)		0.40 लाख
	कुल योग	**15.89 लाख**

फ्लेमेंजिया सेमियालता पर परिपक्व लाख

परिपक्व लाख की कटाई

'हड़िया' पेय का आदिवासी समुदाय में महत्व

श्री प्रवीण कुमार नाग एवं डॉ. अरविन्द कुमार
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

आदिवासी समुदाय में मदिरा का सेवन प्राचीन काल से ही चला आ रहा है जिसका वर्णन विभिन्न पुस्तकों में मिलता है। आज के आधुनिक समाज में भी इसका प्रचलन हड़िया के रूप में चला आ रहा है। यह पेय मुख्य रूप से मिट्टी की बड़ी हांड़ी में किण्वन प्रक्रिया द्वारा बनाया जाता है अतः इसे "हड़िया" कहा जाता है। हड़िया को एक विशेष किण्वन प्रक्रिया के माध्यम से चावल और विषक्त जड़ी बूटियों द्वारा तैयार किया जाता हैं जिसकी मांग गर्मियों में बढ़ जाती है। मान्यता है कि मादकता के कारण हड़िया पेट को ठंडा रखता है और अत्यधिक ऊर्जा का स्रोत है। यह आदिवासी समुदाय का पारंपरिक मादक पेय है जिसके कारण इसके उत्पादन, बिक्री एवं सेवन पर प्रशासनिक बाध्यता नहीं है। मुख्य रूप से यह ग्रामीण जनजाति समुदाय का पेय है जिसका उत्पादन आदिवासी महिलाओं द्वारा किया जाता है। हड़िया को बनाने और बिक्री में यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह ग्रामीणों के लिए आय का महत्वपूर्ण स्रोत भी है। हड़िया शब्द छोटानागपुर पठार में स्थानीय खपत के रूप में प्रयोग किया जाता है। हड़िया का जनजातीय समुदाय में विभिन्न महत्व है।

हड़िया का प्रचलनः

यह एक तरल पदार्थ है जो आदिवासी समुदाय विशेष रूप से मुंडा और संथाल जनजातियों में प्रसिद्ध हैं। यह सम्पूर्ण झारखंड के अलावा ओड़ीशा के केओंझर, मयूरभंज, सुंदरगढ़, सेयगढ़, सम्बलपुर, बालनगीर, धनकांड और अनुल आदि जिला के साथ–साथ बिहार और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में भी आदिवासियों के बीच एक लोकप्रिय पेय के रूप में जाना जाता है। हड़िया का उपयोग बांग्लादेश और नेपाल के आदिवासियों के बीच भी पाया गया है। यह बहुत ही प्राचीन मादक पेय है तथा इसका निर्माण एवं सेवन सदियों से चला आ रहा है परंतु यह जानना बहुत मुश्किल है कि हड़िया का उत्पादन एवं उपयोग करने की शुरुआत किस जनजाति ने की। मुंडा और संथाल दोनों जनजाति समुदाय इसके शुरुआत का दावा करते है। आज हड़िया छोटानागपुर क्षेत्र में एक बहुत लोकप्रिय पेय के रूप में जाना जाता हैं। शुरू में मुंडा और संथाल द्वारा इसका निर्माण किया जाता था लेकिन धीरे–धीरे अन्य जातियों और जनजातियों द्वारा इसका निर्माण किया जाने लगा है जैसे उरांव, भूमिज, गोंद, महली, खरिया जनजाति आदि। हड़िया को मुंडा में इल्ली या दियांग, संथाली में हांडी कहा जाता हैं।

हड़िया का उत्पादन :

हड़िया मुख्य रूप से चावल को किर्ण्वित करके तरल पदार्थ प्राप्त किया जाता है जो व्यवहार में मादक होता है। हड़िया के उत्पादन के लिए एक विशेष सामग्री जिसे झारखंड में रानु के नाम से जाना जाता है, को एक विशेष अनुपात में मिश्रित करके किया जाता है।

रानु : रानु जिसका निर्माण हड़िया बनाने के रूप में किया जाता है जिसकों विभिन्न नाम से जाना जाता है जैसे– मूललिका/मूलिकीय और बखर आदि। रानु को व्यावसायिक उद्देश्य के लिए इसका उपयोग हांडिया बनाने के लिए किया जा रहा है। रानु की गोली स्वाद में कड़वी होती है, जिसका निर्माण धूप में सूखे चावल, जड़ों और निम्नलिखित पेड़ों की छाल से तैयार किया जाता है।

1. **अग्नोझड़ा** : इस पौधे के जड़ से औषधी प्रयोजन के लिए और भूख की कमी को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता हैं।
2. **भुई लिम्बा** : इन जड़ों को भी त्वचा के रोगों के इलाज के लिए इस्तेमाल किया जाता हैं।
3. **माहौल की छली** : यह छाल जिसका औषधीय उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाता है।
4. **कुरुचि छली** : यह छाल औषधीय उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

उपर्युक्त सभी जड़ें और छाल स्वाद में कड़वी होती हैं, जो कि जंगलों में बरसात के मौसम में ही उपलब्ध रहता हैं। अतः आदिवासी महिला इन जड़ों और छाल को पूरे वर्ष के लिए इकट्ठा करके रख लेती हैं जिसे विशेष अनुपात में मिलाकर रानु तैयार किया जाता हैं।

रानु तैयार करने की विधि :

धूप में सूखे चावल एवं जंगली पौधों की जड़ों और छाल के मिश्रण के द्वारा रानु तैयार किया जाता है। सबसे पहले छाल और जड़ों को धूप में सुखा कर पाउडर बना लिया जाता है फिर धूप में सूखे चावल का आटा और पाउडर को मिला कर गूँथा जाता है। उसके बाद छोटे–छोटे गोला बना कर 2 दिन के लिए सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। जब रानु को बनाया जाता है तो कुछ मुंडा महिलाओं के पारंपरिक प्रणाली द्वारा रानु तैयार करती हैं पहले वे पितृ पूरुसा (अकेस्टोर) के पत्ते पर चावल के आटा में पानी डाल कर गूँथा जाता है। उस गूँथे हुए आटा को पत्ते से पूरी तरह लपेट कर आग में सेका जाता है, फिर उस तैयार रानु को जाँचने के लिए आग में फेंका जाता है अगर यह भभक (जल) उठता है तो यह प्रयोग करने योग्य माना जाता हैं नहीं, तो यह बेकार हो जाता है।

हड़िया का प्रसंस्करण :

हड़िया को गर्मी में तैयार होने में 3 दिन लगते हैं, ठण्ड में 7 से 8 दिन लगते हैं। हड़िया बनाने के लिए सबसे पहले चावल को पानी में उबला जाता है, चावल इस तरह उबला जाता है कि चावल पानी के साथ लथपथ हो जाए फिर उसमें हर्बल जड़ से बनी रानु की गोली उबले चावल के साथ मिलाया जाता है। इस मिश्रण को डेकची या हांडी में किण्वन के प्रक्रिया के लिए छोड़ा जाता हैं। उचित समय के उपरान्त चावल और रानु के मिश्रण किण्वन प्रक्रिया द्वारा हड़िया तैयार हो जाता है जिसका स्वाद खट्टा होता है। तैयार मिश्रण से जूस निकालने के लिए छलनी से छाना जाता है। 500 ग्राम चावल से हड़िया बनाने के लिए 2 रानु की गोली डाली जाती है। हड़िया को हल्का या मध्यम बनाना रानु की गोली की संख्या पर निर्भर करती है। मुख्य रूप से हड़िया बनाने की प्रक्रिया महिलाओं द्वारा की जाती हैं।

मुंडा जाति की महिला विशेष तरीके से धार्मिक कार्य के लिए हड़िया का निर्माण करती हैं। हड़िया बनाने से पूर्व स्नान करके अपने आप को साफ करती है और फिर डेकची (बढ़े एल्युमिनियम से बर्तन) को साफ कर बिना कुछ खाये हुए हड़िया बनाती है। इस हड़िया को सबसे पहले देवी–देवताओं को चढ़ाया जाता है उसके बाद घर के सदस्य उपभोग करते हैं। दूसरे लोगों को इस हड़िया को उपभोग करने के लिए नहीं दिया जाता है। मुंडा महिला सप्ताह में दो से तीन बार हड़िया बनाती है। लेकिन गर्मियों के दिन में अधिक से अधिक निर्माण करती हैं।

हड़िया का सेवन :

हड़िया का सेवन आदिवासी लोग नास्ते, दोपहर और रात के खाने के समय करते हैं। यह भी कहा जाता है कि भोजन उपलब्ध न होने कि दशा में इसके सेवन से 10 से 15 दिन तक रहा जा सकता हैं। गर्मी के मौसम के दौरान हड़िया का सेवन गर्मी / लू से बचाता है और काम करने के दौरान ऊर्जा मिलती हैं। यदि आदिवासी लोगों को एक दिन भोजन नहीं मिलता तो हड़िया को एक पूरक भोजन के रूप में लिया जाता है।

हड़िया का प्रभाव :

हड़िया मादकता उत्पन्न करने के साथ–साथ आदिवासी समुदाय द्वारा कई बीमारियों में भी लाभकारी पाया गया है जैसे– पीलिया, पेट का दर्द, पेचिस, गरमियों में लू से बचने के लिए। साथ ही पेट को ठंडा रखने में लाभकारी होता है।

धार्मिक महत्व :

हड़िया का अपना धार्मिक महत्व भी है जिसको मुंडा और संथाली जनजाति में पवित्र पेय के रूप में जाना जाता है। इसका प्रयोग धार्मिक अनुष्ठानों में, देवी– देवताओं को चढ़ने मे, सलगृहा सरहुल आदि जनजातीय पर्वो पर किया जाता है परंतु आज कल रथ यात्रा, बड़ापर्व, मंडा मेला और राखी जैसे त्योहारों के अवसर में बहुत आम है।

सामाजिक महत्व :

आदिवासी समुदाय विभिन्न सामाजिक अवसरों पर हड़िया का सेवन करते है जिसमे मुख्यत :

1. जन्म उत्सव, शादी उत्सव, मृत्यु के अनुष्ठानों में
2. मेहमानों और दोस्तों का सेवा सत्कार हड़िया के द्वारा ही किया जाता हैं।
3. सामाजिक बैठकों और सामाजिक कार्य के दौरान
4. दोस्तों और रिश्तेदारों के यहाँ जा रहे हो तो हड़िया से स्वागत किया जाता हैं।
5. सांस्कृतिक कार्यक्रम के समय आदिवासियों द्वारा हड़िया का सेवन करके नाच गान करके अपने आप को आनंदित करते हैं।

आजीविका का स्रोत :

पिछले कई दशकों से आदिवासी लोग हड़िया को व्यावसायिक उद्देश्य के लिए भी इस्तेमाल कर रहे हैं। जब झारखंड के मुंडा जनजातिया पलायन करके ओड़ीशा के विभिन्न भागों में बस गये जहा इनके आजीविका का कोई स्रोत नहीं था। जहां अधिकांश आदिवासियों ने हड़िया को आजीविका के प्राथमिक स्रोत के रूप में उपयोग किया था। हड़िया का उपयोग आदिवासी समुदाय के अलावा आज–कल अन्य समुदाय भी कर रहे हैं इसके परिणामतः हड़िया का प्रयोग व्यापारिक मादक पेय के रूप में किया जा रहा है। कुछ

आदिवासी व्यापार के लिए आय का प्राथमिक स्रोत के रूप में मानते हैं। कुछ मुंडा, महंत, और माझी महिला आदिवासी हड़िया को तैयार करके बाजार में बेचने जाती हैं।

हड़िया के व्यापार में हड़िया बनाने (कीर्णवन) में प्रयोग होने वाली 'रानु' तथा रानु बनाने के लिए उपयोग होने वाली सामग्री के साथ–साथ कई श्रेणियां में लोग अपनी आजीविका प्राप्त कर रहे है जिसमें–

1. वे लोग जो जंगल से जड़ी बूटियों को इकट्ठा करके और उन्हें बाजार में बेचने में लगे हुए हैं।
2. वे लोग जो रानु को बना कर बाजार में बेचते हैं।
3. वे लोग जो हड़िया और रानु को बना कर व्यापार के उद्देश्य से बाजार में बेचते हैं।
4. वे लोग जो रानु को दूसरे से थोक में खरीद कर बेचते हैं।

झारखंड में धान ही एक प्रमुख फसल है जिससे पूरे वर्ष भर जीवन यापन किया जाता है अतः ग्रामीण इलाके में जब खेती का काम समाप्त हो जाता है महिलाएं हड़िया के व्यापार मे लग जाती है जिससे उनके द्वारा वह अपनी रोज की आजीविका चलती है। यह भी देखा गया है कि जिस वर्ष वर्षा नहीं होती है तथा धान की फसल अच्छी नहीं होती है उस वर्ष गावों के पुरुष शहर में आजीविका के लिए पलायन कर जाते है तथा गाँव में महिलाए हड़िया उत्पादित कर उसे बेचती है और अपनी जीविका चलती है। हड़िया सामान्य रूप से किसी भी ग्रामीण इलाके के रास्ते एवं चौराहे आदि पर महिलाओं द्वारा बेचते हुए पाया जाता है। इसके अलावा 'हाट' (ग्रामीण बाजार) आदि में बहुतया में बेचा जाता है। आज कल हड़िया का प्रचलन छोटे कस्बों, शहरों से लेकर राजधानी क्षेत्र में भी बहुतायत में हो गया है। झारखंड की राजधानी राँची में विभिन्न छोटे स्थानों से लेकर बड़े बाज़ारों में हड़िया बेचा जाता है जिसकी कीमत 5–7 रू. प्रति गिलास होती है।

सावधानियाँ :

गलत तरीके से बना पेय विषाक्त हो जाता है, जब किण्वन की प्रक्रिया को तेज करने के लिए इसमें यूरिया उर्वरकों और सल्फ़ेट का उपयोग किया जाता है। यह बड़े पैमाने पर उपभोग के लिए और नशे के स्तर को बढ़ाने के लिए यूरिया का उपयोग भी किया जाता है। हड़िया अथवा किसी भी तरह का मादक पदार्थ का सेवन हानीकारक होता है विशेषकर हानिकारक रसायनों द्वारा तैयार किया गया पदार्थ। इसके अलावा ऐसे मादक पदार्थ सामाजिक बुराई एवं पारिवारिक कलह का कारण बनाते है अतः इन सब उत्पादों के सेवन से बचना चाहिए।

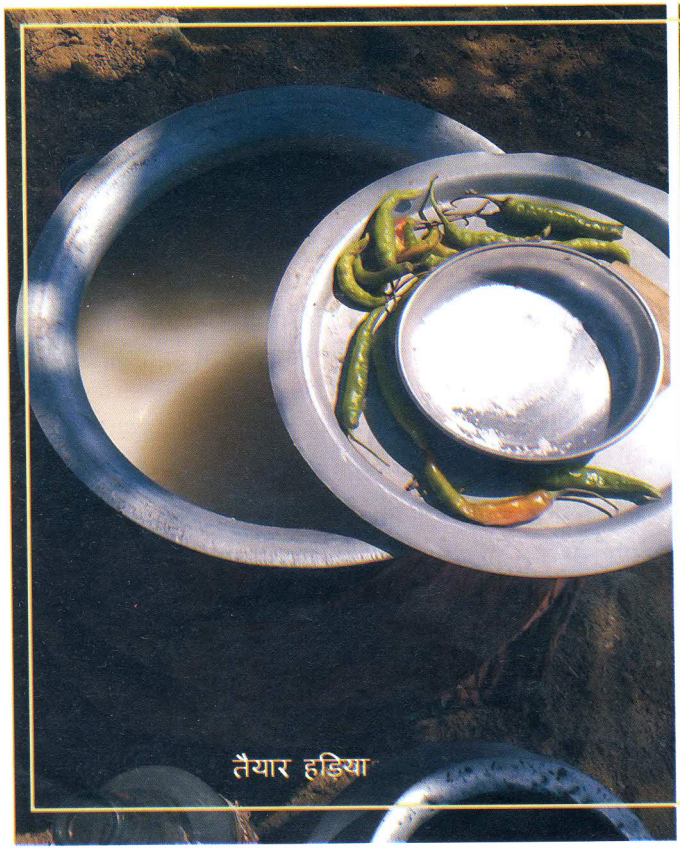
तैयार हड़िया

हड़िया बेचती महिलाएं

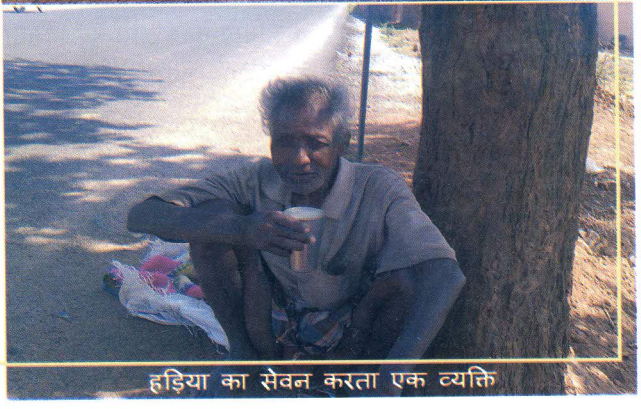
हड़िया का सेवन करता एक व्यक्ति

आदिवासी व्यापार के लिए आय का प्राथमिक स्रोत के रूप में मानते हैं। कुछ मुंडा, महंत, और माझी महिला आदिवासी हड़िया को तैयार करके बाजार में बेचने जाती हैं।

हड़िया के व्यापार में हड़िया बनाने (कीर्णवन) में प्रयोग होने वाली 'रानु' तथा रानु बनाने के लिए उपयोग होने वाली सामग्री के साथ–साथ कई श्रेणियां में लोग अपनी आजीविका प्राप्त कर रहे है जिसमें–

1. वे लोग जो जंगल से जड़ी बूटियों को इकट्ठा करके और उन्हें बाजार में बेचने में लगे हुए हैं।
2. वे लोग जो रानु को बना कर बाजार में बेचते हैं।
3. वे लोग जो हड़िया और रानु को बना कर व्यापार के उद्देश्य से बाजार में बेचते हैं।
4. वे लोग जो रानु को दूसरे से थोक में खरीद कर बेचते हैं।

झारखंड में धान ही एक प्रमुख फसल है जिससे पूरे वर्ष भर जीवन यापन किया जाता है अतः ग्रामीण इलाके में जब खेती का काम समाप्त हो जाता है महिलाएं हड़िया के व्यापार मे लग जाती है जिससे उनके द्वारा वह अपनी रोज की आजीविका चलती है। यह भी देखा गया है कि जिस वर्ष वर्षा नहीं होती है तथा धान की फसल अच्छी नहीं होती है उस वर्ष गावों के पुरुष शहर में आजीविका के लिए पलायन कर जाते है तथा गाँव में महिलाए हड़िया उत्पादित कर उसे बेचती है और अपनी जीविका चलती है। हड़िया सामान्य रूप से किसी भी ग्रामीण इलाके के रास्ते एवं चौराहे आदि पर महिलाओं द्वारा बेचते हुए पाया जाता है। इसके अलावा 'हाट' (ग्रामीण बाजार) आदि में बहुतया में बेचा जाता है। आज कल हड़िया का प्रचलन छोटे कस्बों, शहरों से लेकर राजधानी क्षेत्र में भी बहुतायत में हो गया है। झारखंड की राजधानी राँची में विभिन्न छोटे स्थानों से लेकर बड़े बाज़ारों में हड़िया बेचा जाता है जिसकी कीमत 5–7 रू. प्रति गिलास होती है।

सावधानियाँ :

गलत तरीके से बना पेय विषाक्त हो जाता है, जब किण्वन की प्रक्रिया को तेज करने के लिए इसमें यूरिया उर्वरकों और सल्फ़ेट का उपयोग किया जाता है। यह बड़े पैमाने पर उपभोग के लिए और नशे के स्तर को बढ़ाने के लिए यूरिया का उपयोग भी किया जाता है। हड़िया अथवा किसी भी तरह का मादक पदार्थ का सेवन हानीकारक होता है विशेषकर हानिकारक रसायनों द्वारा तैयार किया गया पदार्थ। इसके अलावा ऐसे मादक पदार्थ सामाजिक बुराई एवं पारिवारिक कलह का कारण बनाते है अतः इन सब उत्पादों के सेवन से बचना चाहिए।

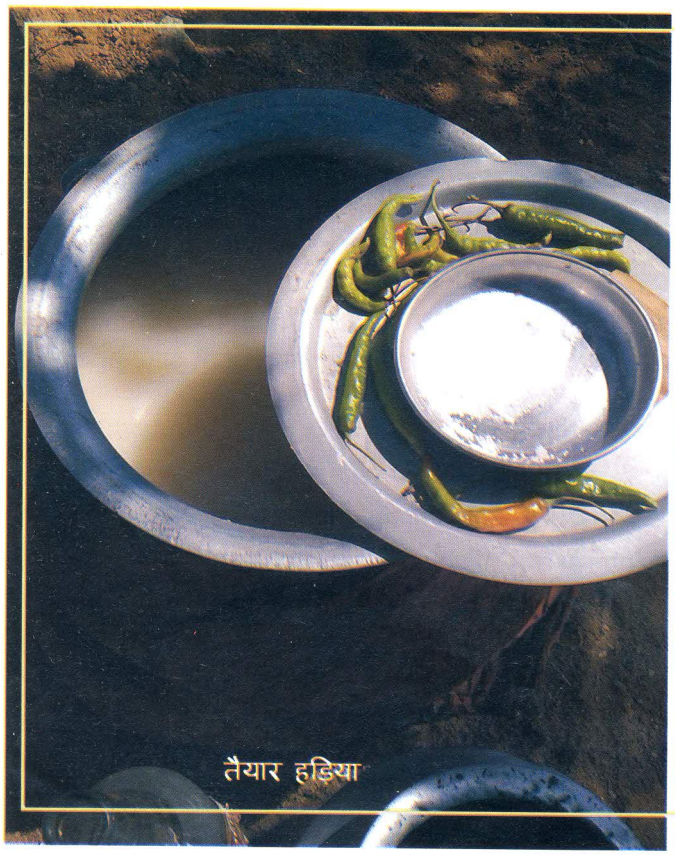
तैयार हड़िया

हड़िया बेचती महिलाएं

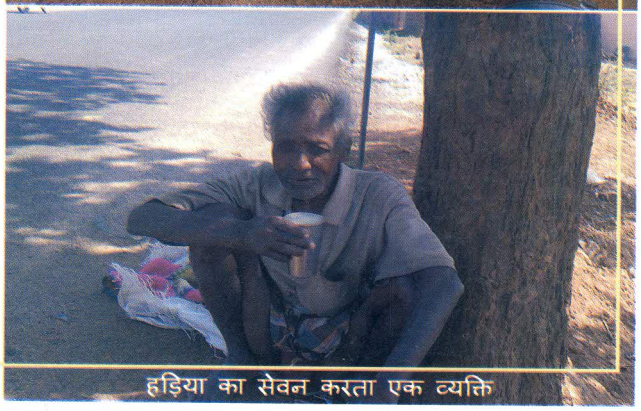
हड़िया का सेवन करता एक व्यक्ति

वनस्पति : जीवन का आधार

श्री सुभाष चंद्र मुखर्जी
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

वनस्पतियों की जानकारी

अब तक वनस्पतियों की जो जानकारी वैज्ञानिक हासिल करा पाये हैं, उनकी संख्या 2 लाख 50 हजार है, इनमें से 50 प्रतिशत उष्ण कटिबंधी वन–प्रांतों में उपलब्ध है। भारत में 81 हजार वनस्पतियों और 47 हजार प्रजातियों के जीव–जंतुओं की पहचान सूची वद्ध है। अकेले आयुर्वेद में 5 हजार से भी ज्यादा वनस्पतियों के गुण व दोष का मनुष्य जाति के लिए क्या महत्व है, इसका विस्तार से विवरण है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में जिन 84 लाख जीव–योनियों का विवरण है, उनमें 10 लाख वनस्पतियाँ और 52 लाख इतर जीव–योनीय बतायी गयी है।

विदेशी कंपनियों की निगाहें

विदेशी दवा कंपनियों की निगाहें हरे सोने के इसी भंडार पर टिकी थी। इसलिए 1970 में अमेरिकी पेटेंट कानून में नये संशोधन किये गये। विश्व बैंक ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा था कि नया पेटेंट कानून परंपरा में चले आ रहे देशी ज्ञान को महत्व व मान्यता नहीं देता, बल्कि इसके उलट जो जैव व सांस्कृतिक विविधता और उपचार की देशी प्रणालियां प्रचलन में है, उन्हें नकारता है, जबकि इनमें ज्ञान और अनुसंधान अंतर्निहित है। ये समाज में इसलिए संज्ञान में है जिससे इन्हें आपस में साझा करके उपयोग में लाया जा सके, मसलन, साफ है कि बड़ी कंपनियां देशी ज्ञान पर एकाधिकार प्राप्त कर समाज को ज्ञान और उसके उपयोग से वंचित करना चाहती है।

इसी क्रम में सबसे पहले भारतीय पेड़ नीम के औषधीय गुणों का पेटेंट अमेरिका और जापान की कंपनियों ने कराया था। 3 दिसम्बर 1985 को अमेरिका कंपनी विकउड लिमिटेड को पेटेंट संख्या 4,556562 के तहत नीम की कीटनाशक गुणों की मौलिक खोज के पहले दावे के आधार पर बौद्धिक सम्पदा का अधिकार दिया गया। इसके पहले 7 मई 1985 को जापान की कंपनी तरुमो कोर्पोरेशन को पेटेंट संख्या 4,515785 के तहत नीम की छाल के तत्वों व उसके लाभ को नयी खोज मानकर बौद्धिक स्वत्व दिया गया था। इसके बाद तो पेटेंट का सिलसिला रफ्तार पकड़ता गया, हल्दी, करेला, जामुन, तुलसी, भिंडी, अनार, आमला, रीठा, अर्जुन, हरड, अश्वगंधा, शरीफा, अदरक, कठल, सरसो, बास्मती चावल, बेंगन और खरबूजा तक पेटेंट की जद में आ गये ।

नीम के औषधीय गुण

नीम के औषधीय गुणों की पहचान तो ईसा से 600 साल पहले ही कर ली गयी थी। आयुर्वेद और भाव प्रकाश में नीम के महत्व का विस्तार से वर्णन है। कालांतर में नीम के वैज्ञानिक गुणों का अध्ययन भी सबसे पहले भारत में हुआ। बंगलुरु के "भारतीय विज्ञान संस्थान" के वैज्ञानिकों ने पहली बार सक्रिय जैव रासायनिक तत्व "लिमोनाइड" की खोज की। लिमोनैड कीड़े–मकोड़े, जीवाणुओं और परजीवियो को नष्ट करने में सक्षम है। 1960 के आसपास भारतीय कृषि वैज्ञानिकों ने नीम के जैव–कीटनाशक गुणों पर अनुसंधान किये और पाया कि नीम 300 प्रकार के कीटों को नष्ट करने की क्षमता रखता है। यही नहीं बाद में चिकित्सा वैज्ञानिको ने नीम पर की गयी खोजों में पाया कि इसकी गंध मलेरिया फैलाने वाले मच्छरों का नाश करती है। नीम के तेल से "प्रनोम" नामक एक तत्व तलाशा गया है, जो शुक्राणुनाशक है, परिवार नियोजन के लिए सर्वाधिक उपयोगी माना गया है। अमेरिका और फ्रांस में किए गये कुछ प्रयोगों से पता चला है कि नीम में एड्स के एच. आई.वी. वायरस से प्रतिरोध करने की भी क्षमता है। ऐसे नीम का औषधीय गुणों का पेटेंट विदेशी कंपनियों के लिए मुनाफाखोरी का मजबूत आधार बन रहा है।

कैंसर रोधी हल्दी

हल्दी के औषधीय गुणों व उपचार से देश का हर आदमी परिचित है। इसका उपयोग शरीर में लगी चोट को ठीक करने में परम्परागत ज्ञान आधार पर किया जाता है। इसमें कैंसर के कीटाणुओं को शरीर में नहीं पनपने देने की भी क्षमता है। मधुमेह और बवासीर के लिए भी हल्दी असरकारी औषधि के रूप में इस्तेमाल की जाती है। इसका भी पेटेंट अमेरिका कंपनी ने करा लिया था। किंतु इसे चुनौती देकर भारत सरकार ने खारिज करा लिया है।

सुगंध का संसार : नींबू घास

श्री रविशंकर प्रसाद, श्री पंकज सिंह एवं डॉ. संजय सिंह
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

प्रस्तावना

नींबू घास एक बहुवर्षीय सुगंधित पौधा है। इस घास की पत्तियों में नींबू जैसी तीक्ष्ण सुगंध पायी जाती है इस कारण ही इसे नींबू घास के नाम से जाना जाता है। जिसका वानस्पतिक नाम (*Cymbopogon citratus*) है जो पोएसी कुल का है, जो मुख्यतः दक्षिण पूर्व एशिया और अफ्रीका में पाया जाता है। इसकी मुख्य प्रजातियां दक्षिण एशिया, द. पूर्व एशिया तथा आस्ट्रेलिया में पायी जाती है। यह मुख्यतः मलेशिया में पाया जाता है। भारत में यह मुख्यतः महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, आसाम, अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम और झारखण्ड में होता है।

नींबू घास से तेल निकाला जाता है तथा इनके डंठलों से कई प्रकार के व्यंजन बनाए जाते हैं। इससे प्राप्त तेल में नींबू की तरह की सुगंध पायी जाती है, जो इसमें विद्यमान सिट्रल के कारण होती है। इसका उपयोग मुख्यतः कच्चे माल के रूप में साबुन बनाने, डिटर्जेन्ट, सौन्दर्य प्रसाधन, कीड़े तथा मच्छरों को भगाने, रूम फ्रेशनर, ठण्डे पेय बनाने तथा बहुत सी आयुर्वेदिक दवा बनाने में होता है। कुछ सालों पहले भारत का विश्व बाजार में इसके उत्पादन तथा निर्यात में एकाधिकार था किन्तु आजकल अन्य देश जैसे – चीन, बांग्लादेश, मेक्सिको इत्यादि भी इसका उत्पादन करते हैं। भारत में इसका मुख्य बाजार कोच्चि और मुम्बई है। भारत से इसका निर्यात अमेरिका तथा यूरोपीय देशों में होता है।

नींबू घास एवं नींबू घास से निकाला गया तेल

उपयुक्त मौसम एवं जलवायु

यह उष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु में समुद्र तल से 800–900 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसके अच्छे उत्पादन के लिए उच्च तापमान, आर्द्र, पर्याप्त धूप एवं 2000–2500 मिलीमीटर प्रति वर्ष वर्षा आवश्यक है। जहां वर्षा काफी मात्रा में होती है वहां इसका उत्पादन कम वर्षा वाले इलाके से अच्छा होता है। परन्तु वहां के पत्तियों में सिट्राल की मात्रा कम पायी जाती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्र में कटाई भी जल्दी–जल्दी होती है।

भूमि

नींबू घास की खेती लगभग सभी प्रकार की भूमि में होती है, परन्तु दोमट मिट्टी में इसकी खेती सबसे अच्छी होती है। पथरीली भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है।

उन्नत प्रजातियां

नींबू घास की अनेक प्रजातियाँ उपलब्ध है जैसे प्रगति, सुगन्धी, कृष्णा, प्रमाण, जम्मु ग्रास, कावेरी, सी.के.पी–25, ओ.डी.–408, आर. आर.–16 इत्यादि इसकी उन्नत प्रजातियां हैं।

प्रवर्धन विधि

नींबू घास का प्रवर्धन बीज और स्लिप से किया जाता है। बीजों को छींटकर या पौधा तैयार कर इसका रोपण किया जाता है। पुराने पौधे से स्लिप निकालकर इसका रोपण करने से अच्छे परिणाम पाये जाते हैं। 4–6 किलो बीज प्रति हेक्टेयर तथा 25000 स्लिप प्रति एकड़ के हिसाब से लगाया जाता है। नर्सरी में अप्रैल–मई के माह में बीज लगाया जाता है। जिसका प्रत्यारोपण जून–जुलाई में किया जाता है।

बीज उत्पादन एवं संग्रह

नींबू घास में नवम्बर – दिसम्बर महीने से बीज आना शुरू हो जाता है तथा फरवरी से मार्च के महीने में पककर तैयार हो जाता है। अच्छे तथा अधिक पैदावार के लिए पौधों को स्वस्थ रखा जाता है। एक स्वस्थ पौधे से लगभग 100–200 ग्राम

बीज प्राप्त किया जा सकता है। बीज संग्रह के समय पौधे के ऊपरी भाग को काट कर 2–3 दिनों तक धूप में सुखाया जाता है, ताकि अतिरिक्त नमी बाहर निकल जाए। उसके बाद उससे बीज निकालते हैं। जिन्हें पुनः सुखाते हैं, ताकि ज्यादा नमी न रहे। उसके बाद अन्त में उसे बोरे में भरकर उचित स्थान जहां सूर्य का सीधा प्रकाश न जाता हो तथा जहां नमी न हो सुरक्षित रखा जाता है। इसके बीज एक वर्ष से अधिक दिनों तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं।

पौधशाला में पौधा तैयार करना

पौधशाला में पौधे तैयार करने के लिए पहले खेतों को तैयार करते हैं तथा उसमें उचित मात्रा में खाद देते हैं। एक हेक्टेयर खेत के लिए 4–6 किलो बीज काफी होता है। बीज लगाने के बाद उचित नमी रहने पर बीजों में 5–7 दिनों में अंकुरण होने लगता है। 1–2 महीने में यानि कि लगभग 50–60 दिनों में पौधा खेतों में लगाने के लिए तैयार हो जाता है।

स्लिप द्वारा पौधा रोपण

इस विधि से पुराने स्वस्थ पौधे को सतह से 10–15 सें.मी. ऊपर से काटकर पत्तियों को अलग कर लेते हैं तथा नीचे के भाग को अलग–अलग कर खेतों में सीधा लगाते हैं। इस विधि से खेती करने पर अच्छी फसल प्राप्त होती है तथा सिट्राल की मात्रा अच्छी होती है।

फसल–चक्र

नींबू घास पांच वर्षीय फसल है, किन्तु अनुपजाऊ भूमि में इसका उत्पादन तीन वर्षों तक ही लिया जा सकता है।

खेतों की तैयारी

यह एक बहुवर्षीय पौधा है जिससे 4–5 वर्षों तक पैदावार ली जाती है। इस कारण इसकी प्रारम्भिक जुताई काफी महत्व रखती है। दो से तीन जुताई के बाद मेड़ बनाई जाती हैं। खेती की तैयारी के समय नीम की खली का उपयोग काफी फायदेमन्द होता है। यह भूमि जनित बीमारियों से सुरक्षा करता है। अन्तिम जुताई के समय फार्म यार्ड मैन्योर 10 मिट्रिक टन प्रति हेक्टेयर के हिसाब से दिया जाता है। रासायनिक खाद की मात्रा मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर निर्भर करती है। साधारणतः एन.पी.के. (नाईट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश) की 150:60:60 मात्रा प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष के हिसाब से दिया जाता है। 30 प्रतिशत् नाइट्रोजन तथा फास्फोरस तथा पोटैशियम की पूरी मात्रा पौधा रोपण के समय दिया जाता है, नाइट्रोजन की बाकी मात्रा 3–4 भागों में ऊपर से छिड़काव किया जाता है।

निराई–गोड़ाई

इसमें समय–समय पर खेती के बाद की निराई– गोड़ाई की जाती है, ताकि खर–पतवार पर नियंत्रण रखा जा सके। पौधे लगाने के बाद तीन–चार महीने तक इसका विशेष ध्यान रखना पड़ता है, ताकि पौधे अच्छी तरह से बढ़ सके। इसके बाद प्रत्येक वर्ष 2–3 निराई–गोड़ाई की आवश्यकता होती है। पंक्ति में लगाए गये पौधे में ट्रेक्टर द्वारा तथा हस्तचालित यंत्र से भी यह कार्य सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। इससे समय की बचत होती है। खर–पतवार नियंत्रण के लिए रासायनिक दवा जैसे– डाययुरोन 1.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तथा आक्जाइफ्लूओरफेन (Oxyfluorfen) 0.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर का प्रयोग किया जाता है।

नींबू घास की कटाई एवं उपज

इसकी पहली कटाई पौधा लगाने के 5–6 महीनों के बाद की जाती है। इसके उपरान्त 60–70 दिनों के बाद अगली कटाई की जा सकती है। कभी–कभी मिट्टी के प्रकार तथा मौसम का भी इस पर असर पड़ता है। साधारणतः पहले वर्ष में तीन कटाई तथा आगामी वर्षों में 3–4 बार कटाई की जा सकती है। इसकी कटाई हाथों से तथा मशीनों से की जा सकती है। मशीन द्वारा कटाई अच्छी होती है क्योंकि यह बराबर कटता है। जिससे कल्ले निकलने में सुविधा होती है। नींबू घास की खेती एक बार लगाने से चार से पांच वर्षों तक इससे उपज ली जा सकती है। नींबू घास से पहले वर्षों में तेल की मात्रा कम पायी जाती है अगले 2–3 वर्षों में यह बढ़ जाती है तथा अन्त में इसकी मात्रा कम होती जाती है। औसतन 25–30 टन ताजी पत्तियां 3–4 कटाई से प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष प्राप्त की जा सकती है। पत्तियों में तेल की मात्रा प्रजातियों पर भी निर्भर करती है, जो 0.4 प्रतिशत् से 0.8 प्रतिशत् तक पायी जाती है। पौधों की आयु, मौसम और प्रयुक्त प्रजातियों पर निर्भर करती है।

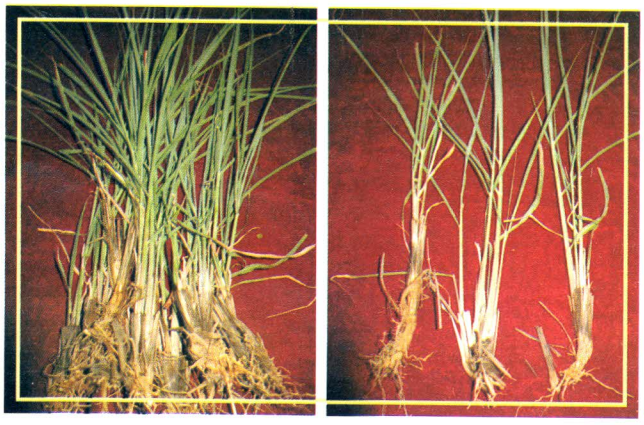

स्लिप द्वारा नींबू घास का प्रवर्धन

कटाई के बाद पत्तियों का रख–रखाव

सबसे पहले कटी हुई पत्तियों को 24 घण्टे तक छाया में सुखाते हैं, ताकि उसमें से अतिरिक्त नमी बाहर निकल जाए और तेल की अच्छी मात्रा प्राप्त हो। पुनः सुखायी गये पत्तियों से आसवन विधि से तेल प्राप्त किया जाता है। इसकी पूरी पत्तियां या छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर आसवन टैंक में भरा जाता है। जिससे कुछ घण्टों बाद तेल और पानी का मिश्रण प्राप्त होता है। चूंकि तेल, पानी से हल्का होता है इस कारण यह पानी में तैरने लगता है और ऊपर आ जाता है। जिसे छानकर अलग कर लेते हैं। कटी हुई पत्तियों को 24 घण्टों तक 1 से 2 प्रतिशत् सोडियम क्लोराइड (नमक) के घोल में डालने से तेल अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

नींबू घास की यांत्रिक कटाई विधि

तेल का शुद्धिकरण

तेल में एनहाइड्रस सोडियम मिलाकर रखने से अघुलनशील पदार्थ निकाला जा सकता है। अन्य घुलनशील पदार्थ वाष्प द्वारा निकाला जा सकता है।

भण्डारीकरण एवं डिब्बाबन्दी

नींबू घास के तेल को उसकी मात्रा के हिसाब से शीशें के बोतल, स्टील के पात्र, अल्युमिनियम के जार तथा ग्लेवनाइज आयरन के टैंक में रखा जा सकता है, परन्तु आजकल सबसे प्रचलित प्लास्टिक के बोतल तथा गैलन में रखा जा सकता है। इसे सूर्य की सीधी रोशनी से दूर ठण्डे स्थान में रखा जाता है, ताकि तेल के गुणों का ह्रास न हो।

अवशेष का उपयोग

तेल निकालने के बाद बचे हुए पदार्थ को स्पेन्ट ग्रास कहा जाता है। जिसका उपयोग खाद बनाने, मल्चिंग के रूप में, जलावन और डिब्बाबन्दी के काम आता है।

उल्लेखनीय उपयोग

नींबू घास का मुख्य उपयोग प्राकृतिक सिट्रल निकालने हेतु किया जाता है, जिसके प्रयोग से सिंथेटिक अल्फा आयोनोन तथा बीटा आयोनोन बनाने में होता है। इसके तेल का प्रयोग साबुन, डिटर्जेन्ट, सौंदर्य प्रसाधन, पेय पदार्थ तथा आयुर्वेदिक दवा बनाने में किया जाता है। कोड लिवर ऑयल बनाने में इसके तेल का उपयोग होता है। अन्य उपयोगों में इसका प्रयोग कीड़ों तथा मच्छरों को भगाने, शरीर को ठण्डा रखने, चाय बनाने, सूप बनाने, सब्जी बनाने तथा उच्च कोटि के इत्र बनाने में किया जाता है।

दवा के रूप में इसका प्रयोग डाययुरेटिक, टॉनिक, मासिक चक्र और सर्दी होने पर भी किया जाता है। इसके अलावा इसका प्रयोग बुखार, पेट दर्द, जोड़ों का दर्द, पाचन क्रिया तथा बच्चों के पेट से संबंधित बीमारियों में किया जाता है। रसोई घर में इसका प्रयोग कई प्रकार के व्यंजन बनाने जैसे – इसके डण्ठल से सब्जी बनाने, फ्रायड राइस बनाने, अचार, स्क्रबर, क्राफ्ट बनाने में किया जाता है। इसकी पत्तियों को ताजी अवस्था छाया में सुखाकर तथा पाउडर बना कर भी काम में लाते हैं। सूखी पत्तियों को काम में लाने से पहले दो घण्टे तक गर्म पानी में रखते हैं। चूर्ण का प्रयोग चाय तथा कढ़ी बनाने में किया जाता है। ताजी पत्तियों का प्रयोग सूप, सलाद तथा समुद्री खाद्य पदार्थ बनाने में किया जाता है।

बीमारियां एवं उपचार

दीमक का प्रकोप – नीम की खल्ली या फ्यूराडॅन की मिट्टी में मिलाकर तथा स्लिप को क्लोरापाइरीफॉस 0.1 प्रतिशत् से उपचारित किया जाता है।

निमेटोड – फेनामिफॉस 11.2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर।

चूहों का प्रकोप – जिंक फॉस्फाइड, बोरियम कार्बोनेट।

पत्तियों पर लाल धब्बा – वेविस्टिन का छिड़काव डायथेन एम.45 का (0.02 प्रतिशत्) का छिड़काव।

लीफ ब्लाइट – डायथेन जेड 78 (0.2 प्रतिशत्) या (0.3 प्रतिशत्) कॉपर आक्सिक्लोराइड 15 दिनों के अन्तराल पर

सफेद मक्खी – फास्फामिडाइन (250 मिलीलीटर प्रति एकड़) या मोनोकोटाफास (0.05 प्रतिशत)

वन उत्पादकता संस्थान, रांची की पहल

वन उत्पादकता संस्थान, रांची द्वारा वर्ष 2009 में राष्ट्रीय औषधीय एवं पादप परिषद् के सहयोग से बुण्डू के किसानों को नींबू घास की खेती पर प्रशिक्षण दिया गया तथा बीजों का वितरण किया गया था जिसे किसानों ने संस्थान के वैज्ञानिकों की देख–रेख में अपने खेतों में लगाया गया था और 2011 में नींबू घास की अच्छी पैदावार प्राप्त की थी। किसानों ने लगभग 50 हेक्टेयर के फसल से लगभग 200

लीटर तेल प्राप्त किया। इस क्षेत्र के नींबू घास से प्राप्त तेल में प्राकृतिक सिट्रल की लगभग 88 प्रतिशत् तक पायी गयी। हमारे संस्थान में केन्द्रीय औषधीय एवं सुगंधित पादप संस्थान, लखनऊ द्वारा आसवन विधि द्वारा तेल निकालने हेतु एक संयंत्र की स्थापना की गई है, जिससे समय–समय पर किसानों द्वारा तेल निकाला जाता है। इस टैंक की क्षमता 1 टन है इसमें एक बार पूरा टैंक भरने पर अच्छी अवस्था में पत्तियों से 6–7 लीटर तथा साधारण अवस्था में 3–4 लीटर तेल निकाला जा सकता है। इन परिणामों से यह साबित होता है कि किसानों द्वारा नींबू घास की खेती कर अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है। इसके तेल की बाजार में अच्छी कीमत प्राप्त हो जाती है। नींबू घास की खेती की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह साल भर पैदा की जा सकती है तथा एक बार लगाने के बाद पांच सालों तक लगातार उपज ली जा सकती है। इस कारण यह किसानों के बीच जीविकोपार्जन का अच्छा विकल्प माना जाने लगा है।

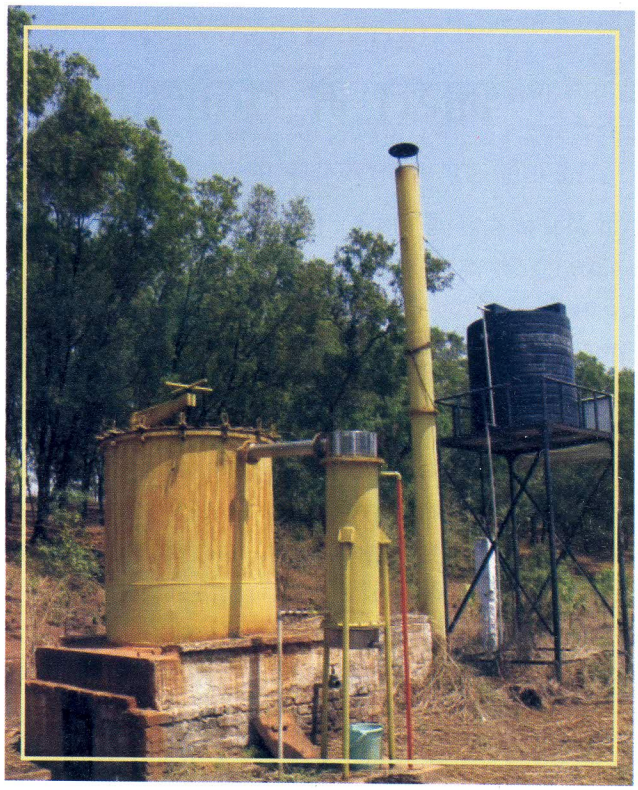

वन उत्पादकता संस्थान एवं सी. मैप, लखनऊ द्वारा लालगुटवा, रांची में स्थापित तेल निकासी संयंत्र

जिहि कारन बार न लाये कछू, गहि संभु–सरासन दोय किया।
गये गेहहिं त्यागि कै ताही समै सु निकारि पिता बनवास दिया?

कहे बीच 'रहीम' रयौं न कछू, जिन कीनो हुतो बिनुहार किया।
बिधि यों न सिया रसबार सिया करबार सिया पिय सार सिया?

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुनि इठलैहैं लोग सब, बाटि न लैहै कोय

रहिमन चुप हो बैठिये, देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं देर

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनवारे को लगै, ज्यौं मेंहदी को रंग।

भारत में वनौषधियों का पारम्परिक उपयोग

श्री हरिशंकर लाल
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

विश्रस्वं मातरमोषधीना ध्रुवा
भुमी पृथ्वी धमेणा धृताम
शिवा स्योनामुन चरेम विश्रह्न।।

जीवनदायी औषधियाँ देने वाली अपने गर्भ में धारण करने वाली हे धरती माँ हमें पर्यावरण दीजिए जो हमेशा हमारे जीवन के लिए हर दृष्टि से उपयुक्त हो। वन किसी भी राष्ट्र के एक महत्वपूर्ण संसाधन होते हैं और सर्वांगीण विकास में योगदान देते हैं। हमारे देश में तो उनका महत्व और भी अधिक है क्योंकि वे आध्यात्मिक चेतना के भी स्रोत रहे हैं। मनुष्य जीवन पर्यन्त वनों से प्राप्त होने वाले पदार्थों का उपयोग करता है। विश्व के 93.90 करोड़ परिवार ग्रामीण इलाकों में रहते हैं। इसमें ज्यादा 66.2 करोड़ एशिया में हैं। ये ग्रामीण जनजाति वनों पर निर्भर हैं। वनौषधियों का उपयोग वे प्राचीन काल से करते आ रहे हैं। वनों की कटाई के कारण ये औषधियाँ या तो विलुप्त हो रही हैं या नष्ट हो रही हैं। इस पर विचार करते हुए 30 वनो औषधियों का विवरण दिया जा रहा है। जो प्रायः भारत में सभी जगह पाये जाते हैं। इन वनौषधियों का पारम्परिक उपयोग जो ग्रामीण जनजाति करते आ रहे हैं।

गुंज्जा (*Abrus precatorius*)

यह लता जाति का पौधा है। इनके पत्ते बारीक और कुछ लम्बे इमली के पत्तों के जैसे होते हैं। सेम की फलियों के समान इसमें फलियों के गुच्छे लगते हैं।

गुण प्रभाव : वात, पित्त, ज्वर के नाक, मुख शोथ, भ्रम, श्वास, तृष्णा, मद, नेत्ररोग, खुजली, ब्रण, कृमि, इन्द्रलुप्त तथा कोढ़ को नष्ट करता है। ये वीर्य वर्द्धक और बलदायक भी है।

अपामार्ग (*Achyranthes aspera*)

अपामार्ग पौधा छोटा होता है। यह विशेषकर बरसात में पैदा होता है। कही–कहीं पर यह बारहो मास होता है। इसकी ऊँचाई एक से तीन हाथ तक होती है।

गुण प्रभाव : 60 ग्राम पौधे का काढ़ा पथरी को गला देता है। गुर्दे की पथरी पर इसका काम अधिक होता है। सारे शरीर पर सूजन आ जाने पर भी इसका काढ़ा दिया जाता है। डायरिया और आव युक्त दस्त में इसके पत्तों का काढ़ा शहद के साथ देने से बहुत लाभ होता है। यही काढ़ा पेशाब के अवरोध को मिटाता है और मूत्र की वृद्धि करता है। उदर शूल और आँत की बीमारी में इसके पत्तों का रस उपयोगी है।

बच (*Acorus calamus*)

बच के छुप बहुत छोटे–छोटे होते हैं। यह पौधा नमी वाले भूमि में सालों ताजा रहती हैं। यह असाम की ओर अधिक होती हैं परन्तु समस्त भारत में होता है।

गुण प्रभाव : मलेरिया, एड्स जैसी भयावह रोगों की भी यह सिद्ध दवा हो सकती है। यह किडनी के तकलीफ को भी मिटाती है। बच का 1/8 ग्राम का नियमित प्रयोग कंठ के रोगों को मिटा देता है तथा स्मरणशक्ति को बढ़ा देता है। सर्दी जुकाम खांसी दूर करने वाली औषधियों में मिलाकर इसका काढ़ा पिलाने से रोग का बढ़ना बन्द हो जाता है।

बाकस (*Adhatoda vasica*)

इसे अडुसा के नाम से भी जाना जाता है। अत्यन्त प्राचीन काल से इस औषधि का प्रयोग भारतीय लोग करते आ रहे है। अधिकांश लोग इसे पहचानते हैं। यह दिव्य औषधि है तथा मौत के मुंह से बचाने वाला है।

गुण प्रभाव : इसका काढ़ा कफ को पतला कर निकाल देता है। फेफड़े की गन्दगी को साफ करता है। रक्त को भी शुद्ध करता है। आधुनिक खोज के अनुसार दमा तथा श्वास नली की खाँसी के लिए भी यह उपयोगी माना जाता है। मुँह के रोगों के लिए भी यह उपयोगी है। स्त्रियों के मासिक धर्म को नियमित कराता है तथा योनि में होने वाले रोग जैसे सभी प्रकार के प्रदर को यह दूर करता हैं। इसका फूल रक्त की गति को नियमित कर, रक्त चाप पर उपयोगी है।

घृतकुमारी (*Aloe vera*)

यह समस्त भारतवर्ष में पाया जाता है। साधारणतः इसके पत्ते 2 से 3 फुट तक लम्बे तथा चार इंच तक चौड़े गुद्देदार होते हैं। दोनों तरफ काँटे होते हैं।

गुण प्रभाव : इसको पेट पर लेप करने से पेट के गाठ मिट

जाती है। मासिक धर्म की अनियमितता, मासिक धर्म के गड़बड़ी के साथ हिस्टीरिया इत्यादि के लक्षणें पर इस औषधि का असर बहुत जल्द होता है। कब्जियत की यह रामवाण औषधि है। यह कायाकल्प की औषधि है। पाँच से 10 ग्राम इसका गुद्दा तथा 10 ग्राम गिलोय का काढ़ा या रस प्रतिदिन पीने से कुछ ही दिनों में शरीर के सभी अवयव नवीन बन जाते हैं तथा यह जरा बुढ़ापा की कठिनाई को मिटा देता है। मधुमेह की यह उत्तम दवा है। इसके लिए 2 ग्राम गिलोय सत्व एवं 5 ग्राम घृतकुमारी के गुद्दे का सेवन किया जाता है। कुछ ही दिनों में मधुमेह में लाभ हो जाता है। आँखों के दर्द के लिऐ इसके गुद्दा को हल्दी के साथ पीसकर पैर के तलवे पर बांधने से आँख का दर्द दूर हो जाता है।

शतावर (*Asparagus racemosus*)

शतावरी अति प्रसिद्ध, पहाड़ी और मैदानी दोनों क्षेत्रों में पैदा होने वाली, लता जाति का पौधा है। बलकारी पदार्थों में इसकी पहचान होती है। इसकी लताएं झाड़ी के ऊपर बहुत ऊँची चढ़ जाती है। उसमें थोड़े–थोड़े अन्तर पर तीक्ष्ण कांटे रहते हैं।

गुण प्रभाव : यह वात रक्त की अच्छी औषधि है। इन गुणों को प्राप्त करने के लिए, इसका चूर्ण 2 से 3 ग्राम प्रतिदिन या 5 से 10 ग्राम हराद्रव्य कुंचकर एक पाव दूध में उबालकर खाना चाहिए।

कालमेघ (*Andrographis paniculata*)

इसका पौधा एक से तीन फिट तक ऊँचा होता है। यह विशेषकर बंगाल के अन्दर बहुत पैदा होती है।

गुण प्रभाव : सिर दर्द, अजीर्ण, अतिसार और साधारण ज्वर में इसको हींग, शोठ, मिर्च और पीपर के साथ देते हैं। इसके सारे पौधे का काढ़ा ज्वर में दिया जाता है। यकृत के रोगों को मिटाने के लिए यह अति उपयोगी है। यह कटु पौष्टिक है तथा भूख की वृद्धि कराता है।

पुनर्नवा (*Boerhaavia diffusa*)

यह वनस्पति सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्राप्त होती है। यह जमीन पर फैलने वाली झाड़ीनुमा वनस्पति है। इसके पत्ते चौलाई की पत्ती के सामान होती है।

गुण प्रभाव : पुनर्नवा अतिदिव्य औषधि है। इसके वर्षों रहने वाली जाति के रस को यदि नाक में डाली जाय तो झामरना (ग्लूकोमा) नामक आँख के रोग, जो लाईलाज है ठीक हो जाता है। किसी भी पुनर्नवा का काढ़ा शरीर से विष को निकाल देता हैं। यह खांसी दमा पर भी प्रयुक्त होता है। दमा में इसके जड़ 5 ग्राम के टुकड़े को पीसकर सेवन करने से दमा जाता रहता है। सूजन में इसे काली मिर्च के साथ देना चाहिए।

अकवन (*Calotropis procera*)

आक का पौधा सभी स्थान पर मिलता हैं तथा सभी लोग इसे जानते हैं। इसकी दो जातियां होती है। एक बहुवर्षायु दुसरा वर्षायु। वर्षायु का पौधा बरसात में गल जाता है।

गुण प्रभाव : इसकी मात्रा 1/4 ग्राम है। आंत के कृमि को दूर करने के लिए आक के हरे फूलों को कूटकर दो सेर रस तैयार कर ले। इस रस में पाव भर आक का दूध और एक किलो दो सौ पचास ग्राम गाय का घी मिलाकर कलईदार कढ़ाई में डालकर आग पर चढ़ा दें। सब कुछ जलकर जब घी बच जाय तो उसे छान कर रख ले। यह धृत आंतों के अन्दर पड़े हुए कीड़ों को नष्ट करने के लिए मूल्यवान है।

ब्राह्मी (*Centela asiatica*)

इसको मंडूक पर्णी भी कहते हैं। ब्राह्मी के नाम से एक और पौधा है। जिसे जल नीम कहते हैं। दोनों की आकृति आपस में मिलती नहीं है। दोनों नम स्थान पर होने वाला छोटा पौधा है।

गुण प्रभाव : पाण्डु (जौन्डीस) अनिच्छित वीर्य स्राव, रक्त दोष को मिटाती है। कफ, चेचक, दमा, उन्माद में यह लाभदायक है। यह दूध को शुद्ध करती है। ब्राह्मी बल–वर्द्धक तथा रसायन है। इस औषधि के प्रयोग से जीवनी शक्ति आश्चर्यजनक तरीके से बढ़ती है।

हड़जोर (*Cissus quadriangularis*)

यह लता जाति का पौधा है। यह बड़े–बड़े पेड़ पर या कही भी बहुत दूर–दूर तक फैल जाता है। यह तिधारी गुद्देदार चार से छः इन्च तक लम्बा होता है।

गुण प्रभाव : यह स्त्रियों के मासिक धर्म को नियमित करता है। इसके लिए प्रतिदिन 5 ग्राम इसके चूर्ण को या दो चम्मच रस को लेना चाहिए। इसको हड्डियों को जोड़ने वाला माना गया हैं । इसको कूट कर भग्न स्थान पर छापते हैं। दमा में इसको बारीक पीस कर 5 से 10 ग्राम खिलाने से लाभ होता है। इसका पकौड़ा सभी रोगों पर लाभदायक है।

अपराजिता (*Clitoria ternatea*)

यह बहुवर्षजीवी लता जाति का पौधा है। सफेद एवं नीला फूल के अनुसार इसकी दो जातियां हैं। नीले फूल में भी एक इकहरे फूल वाला होता हैं। दूसरा दोहरे फूल वाले होते हैं।

गुण प्रभाव : सर्प विष का शमन करता है। यह ज्वर, पित्त के रोगों को भी दूर करता है। भ्रम उन्माद को मिटाता है। यह क्षय रोग जन्य ग्रंथियों को मिटाता है। यह कामोद्दीपक तथा पेचिस को दूर करता है।

हरिद्रा (*Curcuma longa*)

यह सर्वप्रिय जगत प्रसिद्ध पौधा है। इसका पौधा छोटा कोमल और वर्षजीवी होता है। इसकी खेती होती है। इसके पत्ते बहुत बड़े होते हैं।

गुण प्रभाव : सुजाक रोग में जब पेशाब गाढ़ा, वेदनायुक्त, बार–बार और थोड़ा–थोड़ा होने लगता है तब 5 ग्राम हल्दी और 5 ग्राम आंवला को कुटकर काढ़ा बनाकर पीने से तुरंत लाभ होता है। इस काढ़े से दस्त साफ होती है। पेशाब की जलन कम होती है। स्त्रियों के प्रदर रोग में एक ग्राम हल्दी तथा 1/4 ग्राम गुग्गुल एक साथ दिया जाता है।

धतूरा (*Datura metal*)

समस्त भारत में मिलने वाले इस पौधे को सभी लोग जानते हैं। शिवजी के ऊपर यह समर्पित होता है। इसके उजले, पीले एवं काले तीन भेद हैं। तीनों के गुण में समानता है। परन्तु तंत्र क्रिया एवं रसायन क्रिया में काला अत्यधिक प्रयुक्त होता है।

गुण प्रभाव : मलेरिया के लिए इसकी अन्तिम कोमल फुनगी 20 ग्राम, अकवन की कोमल पत्तों वाली फुनगी 20 ग्राम, करंज की कोमल फुनगी 20 ग्राम, अपामार्ग की पत्ती 20 ग्राम, पीपल 20 ग्राम सबको एक साथ कूट पीस कर गोली बनाकर ज्वर आने के पूर्व एक छोटे बेर के बराबर मात्रा में देनी चाहिए। उपरोक्त दवाओं की 100 गोली बना लिया जाय तथा दो गोली सुबह सायं प्रयुक्त किया जाय। विषम ज्वर पर अति उपयोगी है।

भृंगराज (*Eclipta alba*)

इसे भाँगरा भी कहते हैं। इसके पौधे बरसात में सभी जगह पैदा होते हैं। नमी वाले जमीन में यह बारहो मास रहता है। इसकी शाखायें हरी, कुछ कालिमा लिए होती है।

गुण प्रभाव : भाँगरे के रस में काली मीर्च मिलाकर लेने से जौन्डीस रोग मिट जाता है। हब्बा–डब्बा जो एक प्रकार का निमोनिया है। उसमें इसके रस को मधु के साथ देने से लाभ होता है। गर्भिणी के गर्भाशय में दर्द हो या गर्भपात होने की प्रवृति हो, तो गर्भपात रोक देता है। बच्चा होने के बाद गर्भाशय की किसी भी प्रकार की विकृति में इसका प्रयोग लाभकारी है।

शंखपुष्पी (*Evolvulus alsinoides*)

इसका पौधा बहुत छोटा जमीन पर फैला हुआ होता है। इसके पत्ते छोटे और धुसर रंग के होते हैं। इसके फूल लाल, सफेद और नीले रंग के होते हैं।

गुण प्रभाव : इसके काढ़ा को शहद और कुठ के साथ देने से सभी प्रकार के पागलपनी एवं अन्य मस्तिष्क संबंधी दोष दूर हो जाते है। बुद्धि में सुधार होता है। यह कायाकल्प की औषधि है। यह शरीर के प्रत्येक अंग–प्रत्यंग को नव जीवन प्रदान करता है। इसके 3 ग्राम चूर्ण को मक्खन के साथ कुछ दिन लेने से सुखे हुए शरीर मेंजान फूंक देता है।

कलिहारी (*Gloriosa superba*)

यह अति दिव्य लता जाति की औषधि वेदकाल से ही अपने प्रभाव से मनुष्य को प्रभावित करते रहा है। इसलिए इसके दोहन अधिक हुए हैं।

गुण प्रभाव : शतावरी, कलिहारी, दन्तीमूल, बच्छनाग और पाषाण भेद इन सब औषधियों को समान भाग लेकर, पीसकर, पेडु और पेट के ऊपर लेप करने से मूढ़ गर्भ अर्थात् मरा हुआ गर्भस्थ शिशु निकल जाता है। कंठमाला, कर्णरोग और चर्मरोग पर यह बहुत लाभदायी है।

गुड़मार (*Gymnema sylvestre*)

यह एक लता जाति का पौधा है जो दूसरे वनस्पति के झाड़ पर चढ़ती है। यह मध्य भारत तथा उत्तर भारत में अधिकता से मिलती हैं इसके पत्ते चमेली के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं।

गुण प्रभाव : इसका सबसे अधिक उपयोग मधुमेह में किया जाता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के ज्ञानी लोग भी इसकी जाँच करके बताते हैं कि यह मुधुमेह में लाभकारी पौधा है।

अनंतमुल (*Hemidesmus indicus*)

यह लता जाति का पौधा है। इसका डंठल लाल रहता है। पत्ते तीन चार अंगुल लम्बे जामुन के पत्तों के समान होते हैं। इन पत्तों पर सफेद रंग की लकीरें होती हैं।

गुण प्रभाव : सभी प्रकार के चर्म रोग और रक्त रोग में इसके साथ गिलोय मिलाकर काढ़ा बनाकर पिलाया जाता है। तब काफी लाभ होता है। उपरोक्त सभी रोगों को दूर करने के लिए इसके काढ़ा का प्रयोग ज्यादा उपयोगी है। काढ़ा बनाने के लिए जड़ 10 ग्राम या पंचांग 25 ग्राम लेना चाहिए। पानी 200 ग्राम तक लेना चाहिए। यह शरीर के जीवनीय शक्ति को सुधारता है। जिससे यह कमजोरी सहित सभी रोगों को दूर करता है।

लता कस्तूरी (*Hibiscus abelmoschus*)

यह भिंडी के पौधों के आकार–प्रकार का पौधा है। इसके पत्ते फल एवं बीज भिण्डी से मेल खाते है। यह 1 फीट से 10 फीट तक बढ़ जाता है।

गुण प्रभाव : इसके बीज स्फूर्तिदायक और ऐंठन मिटाने वाले होते है। इस गुण के कारण यह लगभग सभी प्रकार के आक्षेप जन्य बिमारियों को मिटाता है। मीर्गी, हिस्टीरिया, तनावग्रस्तता में इसका बीज उपयोगी है।

रतनजोत (बघरेड़ा) (*Jatropha curcas*)

इस वनस्पति को जंगली एरन्ड भी कहते हैं। इसका पौधा हमेशा हराभरा रहने वाला, चिकना तथा मुलायम काष्ठ वाला, झाड़ीनुमा होता है।

गुण प्रभाव : इसके तेल का प्रयोग त्वचा रोग, गठिया, लकवा में भी किया जाता है। इसके रस से असाध्य जख्म भर जाता है। इसे दन्त रोग और मसुढ़ों पर लगाने से सूजन मिटती है तथा दाँत के दर्द मिटता है।

कौंच (*Mucuna prurita*)

यह एक वर्षजीवी लता जाति का पौधा है। इसकी शाखाऐं बहुत नाजुक होती है। इसके पत्ते तिकोने होते हैं। इसके फूल दो तीन गुच्छों में लगते हैं।

गुण प्रभाव : इसके जड़ का काढ़ा किसी भी प्रकार की हाथ–पैरों की कमजोरी पर दिया जाता है। इसके जड़ में ज्ञान तंतुओं को शक्ति देने का गुण है।

बबुई तुलसी (*Ocimum basilicum*)

यह वनस्पति तुलसी की ही तरह होती है। इसके बीज और गंध तुलसी के ही समान होते हैं। इसके पौधे जब सूख जाते हैं तब इसका गंध और बढ़ जाती हैं।

गुण प्रभाव : पेचिस की बीमारी में 2 ग्राम बीज को मिश्री के साथ खाने से लाभ होता है। इसके बीज को पानी में डाल कर फुला दें। उसे लुआवदार बनाकर पीये इससे खांसी में बहुत लाभ होता है। लुआव बनाने के लिए इसका 5 ग्राम बीज लिया जाता है। यही प्रयोग वीर्य को गाढ़ा करने तथा शीघ्रपतन की बीमारी तथा वीर्यदोष में भी लाभदायी है।

चित्रक (*Plumbago zeylanica*)

यह वनस्पति सम्पूर्ण भारतवर्ष में पैदा होती है। इसकी खेती भी की जाती है। इसके पौधे वहु वर्षजीवी तथा हरे–भरे रहने वाले होते हैं। एक बार लगा देने पर इसके जड़ को छोड़कर काट लेने पर भी पुनः नया डंठल निकल जाता है।

गुण प्रभाव : बवासीर पर इसका उपयोग किया जाता है तथा लाभप्रद है। समूचे शरीर की सूजन को मिटाने में इसका व्यवहार अन्य औषधियों के मिश्रण के रूप में होता है।

पिप्पली (*Piper longum*)

यह लता जाति का पौधा हैं। इसके पत्ते नागरवेल के समान होतें है। इसके लता में बहुत सी डालियाँ होती है। इसका फल काला और एक इंच से कुछ कम लम्बा होता है।

गुण प्रभाव : श्वास, खांसी, उदर रोग, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, क्षय, बवासीर, प्लीहा, शुल एवं आमवात को नष्ट करती है। इसको शहद के साथ लेने से मोटापा घटता है। कफ खांसी एवं ज्वर में शहद के साथ पीपल का चूर्ण आधी ग्राम तक लेनी चाहिए।

भूमि आँवला (*Phyllanthus niruri*)

यह अति उपयोगी औषधि है। यह सम्पूर्ण भारत में उत्पन्न होती है। इसका पौधा 6 इंच से लेकर 2 से 3 फीट तक देखने में आती है। इसका शक्ल आँवला से मिलता–जुलता है।

गुण प्रभाव : इसके जड़ को पीसकर पिलाने से पीलिया दूर होता है। इसका अधिक प्रयोग दक्षिण भारतीय वैद्य करते हैं। स्त्रियों की जननेन्द्रिय संबंधित सभी रोगों पर इसका व्यवहार किया जाता है। प्रदर चाहे वह उजला, पीला, लाल कुछ भी हो यह ठीक करता है।

सर्पगन्धा (*Rauwolfia serpentina*)

समस्त भारत में उत्पन्न होने वाला यह पौधा जंगलों में भी होता है तथा इसकी खेती भी की जाती है। इसका पौधा 3 से 4 फीट तक ऊँचा बैंगन के पौधा से मिलता जुलता होता है।

गुण प्रभाव : यह उच्च रक्त चाप की दवा के रूप में व्यवहृत होता है। अनिद्रा, चिल्लाना, मन की कमजोरी के लिए इसको भृंगराज, पारसीक अजवायन, शंखपुष्पी, जटामांशी एवं वच के साथ बराबर मात्रा में लेकर उसे कूट कर इसकी एक ग्राम की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। जिससे बहुत लाभ मिलता है।

गोरख मुण्डी (*Sphaeranthus indicus*)

गोरख मुण्डी का पौधा आधे से लेकर डेढ़ फीट तक ऊँचा होता है। इसका पौधा विशेषकर जमीन पर फैला हुआ होता है।

गुण प्रभाव : हर साल चैत महिने में 5–7 गोरखमुन्डी के ताजे फल थोड़े से दाँत से चबाकर पानी के धूट के साथ निगल लिया जाय तो सालो नेत्र रोग नहीं होते।

गिलोय (*Tinospora cordifolia*)

आयुर्वेद की यह सुप्रसिद्ध औषधि सम्पूर्ण भारतवर्ष में पायी जाती है। इसकी लता बहुत बड़ी तथा बहुवर्ष जीवी होती है।

गुण प्रभाव : बीमारी चाहे जो भी हो, इसके लिए ताजा गिलोय का डंठल 25 ग्राम अजमोदा 2 से 5 ग्राम छोटी पीपल 2 दाना, नीम के 7 पत्ते इन सबको कुचल कर रात में 250 ग्राम पानी, मिट्टी के बर्तन में भिगों दें। सुबह इन चीजों को ठंढई की तरह सिल पर पीसें उसी पानी में, तथा छान कर पीलें। इस तरह 15 से 20 दिन में पेट के सभी रोग सहित पेट की बिमारी से संबंधित किसी भी रोग को यह निश्चित रूप से ठीक कर देता है। रक्त विकार में इसके 25 ग्राम डंठल के काढ़ा में एक ग्राम गुग्गुल मिलाकर पीने से खाज, खुजली वात रक्त दूर होता है। क्षय रोग (टी.वी.) पर इस औषधि की अच्छी क्रिया होती है। इसके लिए 25 ग्राम गिलोय का काढ़ा एक छोटी पीपल के चूर्ण के साथ प्रतिदिन प्रातः काल पीने से क्षय के रोगी को बहुत लाभ हो जाता है। इससे क्षय के लगभग सभी लक्षण मिटते हैं। इसका काढ़ा मूत्र दोष में भी लाभदायक होता है। यह विष नाशक भी है। सर्प विष पर इसके जड़ का रस आधे–आधे घंटे पर पिलाया जाता है तथा आँख में तथा काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है। इसका प्रयोग गठिया आम वात में भी किया जाता है। इसका प्रयोग नहीं छुटने वाले पुराने बुखार में किया जाता है।

असगंध (*Withania somnnifera*)

यह वर्षा ऋतु में उपजता है। कहीं–कहीं यह बारहोमास पाया जाता है। इसके पौधे दो से तीन फीट तक ऊंचे होते हैं तथा इसमें कई शाखायें निकलती हैं।

गुण प्रभाव : क्षय रोग, बुढ़ापे की दुर्बलता तथा गठिया में लाभजनक है। यह नींद लाती है तथा पेशाब की मात्रा बढ़ाती है।

पेड़–पौधों एवं वनस्पतियों से मानव जीवन की मूलभूत आहार की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मनुष्य के अनेकों कार्य व्यापार सम्पन्न करने के आधारभूत संरचना में, इनका योगदान सर्वोपरि है। जलवायु को भी ये संतुलित रखते हैं। अतः मानव जीवन को उपयोगी बनाये रखने में इनकी भूमिका अहम् है। ये जीवन का आधार हैं कृषि, बागवानी इत्यादि अनेकों उद्यम, इन्हीं पर आधारित है। इनके अभाव में मानव जीवन की कल्पना असंभव है।

अतएव परम्परागत जीवन रक्षा कला को पुनः लोकोपयोगी बनाने में, वंशानुक्रम से चले आ रहे ज्ञान विज्ञान को, संग्रहित करना एवं उसके उपयोग की दिशा में सबको प्रेरित करना, लाभ पहुँचाना ही, इस दिशा में सही प्रयास होगा।

मेरे होठों पे दुआ उसकी जुबाँ पे ग़ाली,
जिसके अन्दर जो छुपा था वही बाहर निकला।

ज़िंदगी भर मैं जिसे देख कर इतराता रहा,
मेरा सब रूप वो मिट्टी की धरोहर निकला।

वो तेरे द्वार पे हर रोज़ ही आया लेकिन,
नींद टूटी तेरी जब हाथ से अवसर निकला।

रूखी रोटी भी सदा बाँट के जिसने खाई,
वो भिखारी तो शहंशाहों से बढ़ कर निकला।

क्या अजब है इंसान का दिल भी 'नीरज'
मोम निकला ये कभी तो कभी पत्थर निकला।

— **नीरज**

गढ़वाल हिमालय में पायी जाने वाली महत्वपूर्ण औषधीय लताओं का संक्षिप्त विवरण

डॉ. बी. पी. टम्टा एवं श्री अत्तर सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

आयुर्वेदिक संग्रह चरक संहिता बताती है कि "यस्मिन देशे तु यो जातः तस्मिन तजोश्धन हितम्" अर्थात प्रकृति इतनी व्यवस्थित रुप से बनी है कि यह हमारे तथा अन्य वन्य जीव–जन्तुओं के जीवन–यापन के लिए एक सही माहौल तैयार करती है।

समस्त विश्व में पारम्परिक रूप से रहने वाली जन–जातियाँ तथा अन्य इन सभी वनों से प्राप्त उत्पादों का उपयोग न केवल खाद्य सुरक्षा बल्कि स्वास्थ्य एवं पारिस्थितिक सुरक्षा के रुप में करते हैं। हमारे पशुधन एवं कृषि भी इसी का एक हिस्सा हैं औषधीय पौधों की यदि बात की जाये तो हमारे देश में लगभग 7500 प्रजातियाँ हैं, जो कि प्राचीन काल से भारतीय औषधीय पद्धति में प्रयोग होती रही हैं। औषधीय पादपों का उपयोग विभिन्न प्रकार की उपचार पद्धतियों में निम्न प्रकार से है –

क्र. सं.	औषधीय पद्धति	उपयोग का प्रतिशत
1.	आयुर्वेदा	42 प्रतिशत
2.	सिद्धा	26 प्रतिशत
3.	यूनानी	18 प्रतिशत
4.	एलौपेथिक	2 प्रतिशत
5.	अतिरिक्त	12 प्रतिशत

भारत की सक्रिय व्यापार (औषधी) में विभिन्न औषधीय पादपों की उनके आदत के आधार पर गणना करें तो प्राप्त जानकारी के अनुसार कुल 880 प्रजातियों में से निम्न रुप सामने आती है।

औषधीय पादपों की आदतों के आधार पर की गई गणना निम्न प्रकार से हैं–

क्र. सं.	औषधीय पादपों की प्रकृति	व्यापार में सक्रिय योगदान का प्रतिशत
1.	हर्ब एवं घास	41 प्रतिशत
2.	औषधीय वृक्ष	26 प्रतिशत
3.	झाड़ी (शार्क)	17 प्रतिशत
4.	औषधीय लताएँ	16

औषधीय लताएँ

वनस्पतिक रुप से लताओं को विभिन्न रुप से परिभाषित किया जाता है। अपने प्रारम्भिक जीवन में स्वयं पर आधारित होते हैं तथा पौधों की वृद्धि होने पर इन्हें सहारे की आवश्यकता होती है। प्रकाश तथा भोजन की बदलती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ये अपनी सहायक प्रजातियों के सहारे वृद्धि करते हैं। लताएं मुख्य रुप से दो प्रकार में विभाजित की जा सकती हैं–

1. लियानास (काष्ठ लताएं)
2. वाईन्स (अकाष्ठ लताएं)

विभिन्न प्रकार की ये लताएं शारीरिक असमर्थता के कारण अपनी सहायक प्रजातियों पर आधार बनकर वृद्धि करती हैं तथा इसके लिए उनके पास विभिन्न संरचनाएं होती है। उपयोगिता के आधार पर विभिन्न भागों का प्रतिशत निम्न प्रकार से हैं:–

क्र. सं.	लताओं के भाग	उपयोग का प्रतिशत
1.	पत्तियां	35 प्रतिशत
2.	जड़ें	32 प्रतिशत
3.	बीज	20 प्रतिशत
4.	अन्य (छाल, गांठ) इत्यादि	13 प्रतिशत

औषधीय लताओं की उपयोगिता को ध्यान में रखकर वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून ने गढ़वाल क्षेत्र में पाई जानी वाली औषधीय गुणों से युक्त लताओं पर परियोजना के अन्तर्गत कार्य किया। जिसमें शोध के दौरान प्राकृतिक रुप से पाई जाने वाली प्रजातियों की खोज में 68 प्रकार की लताओं का उल्लेख किया गया है जिसमें से लगभग 25 प्रजातियाँ ऐसी है जोकि प्रारम्भिक उपचार पद्धति तथा अन्य कार्यों में लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाती हैं। इसमें से सतावर, महामेधा, पाणिवेल, इन्द्रायन, मंजिष्ठा, सिरालू, गैंठी, कौंच, गिलोय, गुड़मार, काली हिसर, कलिहारी, अनन्त मूल तथा मालकागनी इत्यादि ऐसी लताएं है जोकि क्रय–विक्रय की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

खोज के दौरान औषधीय लताओं का गढ़वाल हिमालय के ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार से उपयोग में

आने वाली लताओं को भी सूचीबद्ध किया गया जो निम्न तालिका में दर्शाया गया है:–

तालिका 1 गढ़वाल हिमालय क्षेत्र की विभिन्न प्रकार से उपयोगी लताएं / लता पादप

क्र.सं	विभिन्न प्रकार के उपयोग	लता पादप प्रजाति
1.	खाद्य रुप में उपयोगी लताएं	*डायस्कोटिआ* प्रजातियां, *कोकसिना ग्रेंडिस, बउहनिया वाहली, एसपरागस आफिसिनेलिस*
2.	जलाऊ–काष्ठ	*वउहनिआ* वाहली, *टोडालिआ एशियारिका, वेंटिलेगो डेंटिकुलेट* आदि
3.	शिल्पकारी, रेशा व अन्य गृह उपयोगी लताएं	*इकनोकार्पस प्रेगरेंस, बउहनिया वाहली, क्रिप्येलेपिस, बुकनैनि, वेटिलेगो डेंटिकुलाटे, कैलेमस टुनिस* (रतन), *काम्ब्रेटम राक्सबर्गी*
4.	चारे के रुप में उपयोगी लताएं	*रुबिआ कार्डिफोलिआ, मुक्कुना प्रुटिएंस, इपोमोइया* प्रजाति, *स्माइलेक्स* प्रजातियां, *सेलेस्ट्रस पैनिकुलेटस, एसपरागस रेसेमोसस, क्रिप्टोलेपिस बुकनानि, कलेमेटिस ग्रैटा,पैडेरिआ फोएरेडा, जसमिनम–डेसपेरमम, बिटिस हिमालयना*
5.	बलप्रद औषध एवं पेय पदार्थ में उपयोगी लताएं	*एसपरागस रेसेमोसस, प्युरेरिआ ट्यूबोरोसा, फाइकस हैडेरेसिया, रुबास पैनीकुलेटस, इकनोकार्पस फ्रुटेसेंस, एब्रस प्रिकैटोरियस, रिनोस्फोटा–कार्डिफोलि, मुक्कुना प्रुरिएन्स, आर्गेरिआ नर्वोसा, एसपरागस एडसेडेंस*
6.	सजावट में उपयोगी लताएं	*कैरेटिआ पैडाटा, एडेनोकैडामा निटिडम, एकैशिया पिनाटा, आर्गेरिआ नर्वोसा, पैसिफ्लोरा* प्रजाति, *क्लाइटेरिआ टर्नेटा, ओपरकुलिना टरपेथम, लेप्टाडिनिआ रेटिकुलेटे, इपोमेआ* प्रजाति, *हिरटैगे बंगालेंसिस* आदि।
7.	सामाजिक–धार्मिक उपयोगी लताएं	*स्टिफेनिआग्लेबरा, बाउहनिआ वाहली, फाइकस* प्रजाति, *एब्रस प्रिकैटोहरअस*
8.	प्राकृतिक रंग आदि में उपयोगी लताएं	*रुबिया कॉर्डिफोलिआ, पोराना पैनीकुलाटा, टोडालिआ एशिएटिका*

औषधीय रुप में उपयोग होने वाली महत्वपूर्ण लताओं का विवरण तालिका न. 2 में दर्शाया गया है–

तालिका न. 2– महत्वपूर्ण लताओं का उपयोगी भाग एवं उनका उपयोग

क्र. सं.	वनस्पतिक नाम	सामान्य नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
1.	*एब्रस प्रिकैटोरिअस*	रति, चुंटलि, गुंज	जड़ एवं बीज	गर्भस्रावी, अस्थिभंग, त्वचा के श्वेत दाग, स्नायविक विकार सम्बन्धि रोगों में।
2.	*एकेसिआ* पैनाटा	अगिआ बेल, अगला, रिग्दा	सम्पूर्ण पादप	पाचन समस्या, शारीरिक पीड़ा, सर्पदंश में।
3.	*एम्पेलोशिसस लैटिफोलिआ*	भिमा	जड़ की छाल	प्रदाह, पेचिश, अस्थिभंग, निमोनिया
4.	*अम्पेलोशिसस* टोमेंटोसा / विटिस टोमेंटोसा	देवलिया, बालिया कंद	जड़ की छाल	बवासीर, कीट दंश, सूजन में तथा कामोद्वेकी गुण
5.	*एर्गेरिआनर्वोसा*	समुद्र सोख, विधारा	जड़	शोध रोधक, कामोद्वेकी, स्नायुशक्ति वर्धक, गठिया रोग,बवासीर आदि में
6.	*एरिस्टोलोचिआ* इन्डिका	नेओलि, इसरमूल	जड़	सर्पदंश में, प्रतिषेधक के रुप में एवं अग्निमाद्य में

क्र. सं.	वनस्पतिक नाम	सामान्य नाम	उपयोगी भाग	उपयोग
7.	*एसपरागस एडसेंडेंस*	झिरना, सतावर, शरणोई	प्रकंद	दुग्ध, स्राव बड़ाने में, अतिसार में, कामोद्वेकी, सर्प व बिच्छु दंश में प्रतिषेधक, अग्निमाद्य में।
8.	*एसपरागस रेसेमोसस*	सतावर, सतमूली	प्रकंद	दुग्ध स्राव को बढ़ाने वाली, अधिरिक्त स्रावी, पुष्टिकर, तापहरक
9.	*वउहनिआ वाहलि*	मालझन, मालुआ बेल	फल एवं बीज	टॉनिक, पेट दर्द में, पेचिश में जनन क्षमता रोधि में
10.	*शिसम्पेलोस पैरेइटे*	पाढ़, पोर्चा	पत्तियां एवं जड़	उदर के रोग में, आमाशयी विकार में, अतिसार, सर्पव बिच्छु दंश में, प्रतिषेधक के विकार में उदर शूल में
11.	*सीट्रलस कोलोसींथिरा*	पाढ़, पोर्चा	पत्तियां एवं जड़	उदर के रोग में, आमाशयी विकार में, अतिसार, सर्प व बिच्छु दंश में, प्रतिषेधक के विकार में उदर शूल में
12.	*क्लैमैटिस गोउरिआना*	कान्गुलि	पत्ति एवं तना	नेत्र रोग, त्वचा रोग, फ़फोला, छाल आदि में
13.	*क्रिप्टिोलेपिस बुकनानि*	दुधी–बेल	संपूर्ण पौधा	पदतल की विदर में, ज्वर, आमवात, हैजा, उपदंश (फिरंग–रोग), रक्त–स्राव को रोकने में
14.	*डायस्कोरिआ वैलोफाइला*	तैड़	प्रकंद	जड़ व कंद को गर्म राख में पका कर खाने से रक्त शोधन में लाभकारी
15.	*डायस्कोटिआ डेन्टोइडिआ*	खीस	कंदील जड़	लैंगिग हार्मान को उत्प्रेरित करना आदि गुण
16.	*डायस्कोटिआ डेन्टोइडि*	कलिहारी	जड़ एवं बीज	नियतकालिका रोधी, उदर शूल, पित्त विकार व्रण, पराजैविक त्वचा रोगों में
17.	*जिमनेमा सिलवेस्ट्रे*	गुड़मार	पत्तियां	मधुमेह रोधी, स्तम्भक औषधी में, हृदय टॉनिक, डिम्ब विकार, पेट दर्द में
18.	*हेडेरा नेपालेंसिस*	अरम्ब बेल, मिठिआर	पत्तियां एवं बेरी	पत्तियों की लेई बनाकर पुल्टिस के रुप में प्रयोग कीटनाशी व विकर्षक, बच्चों के सिर में पराजैविक कीटों को नष्ट करने में प्रयोग किया जाता है
19.	*इकनोकार्पस फुटेसेंस*	सरिवा काली दूधी	सम्पूर्ण पौधा	आमवात, रक्त शोधक, हैजा, श्वांसरोग, ज्वर, फोड़े, सफेद दाग, पेचिश, टॉनिक में
20.	*डायस्कोरिआ बल्विफेरा*	गैंठी	प्रकंद	पेचिश रोकने में, उदर शूल, पीलिया, बवासीर में
21.	*मार्सडेनिआ रोएले*	मरा उबेल	सम्पूर्ण पौधा	पत्ते, जड़ व कच्चे फल का काड़ा, जननांग की जलन में आरामदायक।
22.	*मुक्कुना प्रुरेइंस*	कौंच, दागु	बीज	व्रण में, कृमिनाशक, अजीर्ण, नेत्ररोग, मूत्र प्रणालि सम्बन्धि विकार में
23.	*टोपरकुलिना टरपेथम/ आईपोमोइसा टरपेथम*	निशोध	जड़	पाचक के रुप में, रेचक, यकृत उद्दीपक, कब्ज, आमवात में
24.	*रुबिआ कॉर्डीफोलिआ*	माजिठ	जड़	मूत्र प्रणाली व यकृत सम्बन्धि स्राव रोधक
25.	*रुबस पैनिकुलेटस*	काला हिंसर एवं फल	पत्तियां जड़	पत्ति व जड़ का पेस्ट, त्वचा रोग में उपयोगी, काली खांसी में
26.	*स्कैंडेसिस ऑफिसिनेलिस*	गज पिपल	सूखे फल व पत्ते	रक्त दूषण जनित वात एवं कफ विकार में शांति दायक, अतिसार, खांसी व गासनी शोध में उपयोगी
27.	*स्माइलेक्स एसपेरा*	कुकुर दाड़ा	पत्तियां एवं जड़	घाव, व्रण, त्वचा पर फुंसियां उभरना आदि में तथा गठिया, आमवात, स्वेदन में, मूत्रल गुण
28.	*स्टेफेनिआ ग्लेबरा*	गिंजाडु	कंद	क्षय रोग में, दमा, पेचिश, ज्वर में

वनों के प्रबन्ध में केवल वृक्षों के सरंक्षण एवं प्रबन्ध पर ध्यान दिया जाता है जबकि लताओं को उपेक्षित किया जाता है। लताओं का वन प्रबन्धन में किसी प्रकार की प्रवधन एवं सरंक्षण नीति नहीं है तथा इनका वन कार्य योजना में भी सरंक्षण एवं प्रबंधन को नहीं दर्शाया गया है। जिसके कारण बहुत सी महत्वपूर्ण लताएं समय के साथ–साथ निरन्तर विदोहन के कारण लुप्त होने के कगार पर है। औषधीय लताओं की उपयोगिता तथा इसका वन पारिस्थिकी में इसके महत्व को देखते हुए लताओं का सरंक्षण, उत्पादन तथा प्रबन्ध अति आवश्यक है। इनके संरक्षण द्वारा पर्यावरण की रक्षा के साथ–साथ आर्थिक रुप में समृद्धि भी अर्जित की जा सकती है।

आज धरती पर झुका आकाश तो अच्छा लगा
सिर किए ऊंचा खड़ी है घास तो अच्छा लगा

आज फिर लौटा सलामत राम कोई अवध में
हो गया पूरा कड़ा बनवास तो अच्छा लगा

था पढ़ाया मांज कर बरतन घरों में रातदिन
हो गया बुधिया का बेटा पास तो अच्छा लगा

लोग यों तो रोज ही आते रहे, जाते रहे
आज लेकिन आप आए पास तो अच्छा लगा

रात कितनी भी घनी हो, सुबह आएगी जरूर
लौट आया आपका विश्वास तो अच्छा लगा

आ गया हूं बाद मुद्दत के शहर से गांव में
आज देखा चांदनी का हास तो अच्छा लगा

दोस्तों की दाद तो मिलती ही रहती है सदा
आज दुश्मन ने कहा शाबाश तो अच्छा लगा

– रामदरश मिश्र

एरोमाथैरेपी : सुगंध एवं सेहत का अद्भुत संगम

डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी, डॉ. राकेश कुमार, सुश्री अनिता पाल
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

एरोमाथैरेपी – सुगंध से स्वास्थ्य

एरोमाथैरेपी का तात्पर्य है, सुगंधों की मदद से चिकित्सा। यह बीमारियों के उपचार की प्रभावी चिकित्सा पद्धति है, जिसमें मस्तिष्क, मनोवृति, संज्ञानात्मक कार्य एवं स्वास्थ्य दशा में सुधारात्मक परिवर्तन के लिए प्राकृतिक सुगंधित तेलों का व्यवस्थित इस्तेमाल किया जाता है। सुगंध चिकित्सा, उपचार की प्राचीन एवं प्राकृतिक पद्धति है, जो परिपूरक व वैकल्पिक निदान के रूप में आज भी लोकप्रिय है। यह आयुर्वेदिक उपचार से पूर्णतया अलग नहीं है; फर्क इतना है कि आयुर्वेदिक उपचार में पौधे के सम्पूर्ण भाग का प्रयोग किया जाता है, जबकि सुगंध चिकित्सा में पौधे से निकाले गए केवल सुगंधित तेलों का प्रयोग होता है। इन तेलों में पेड़–पौधों का सार अर्थात उनकी जीवनदायिनी शक्ति होती है। ये तेल वाष्पीकृत, घनीभूत और सुगंधित होते हैं, जो कि आसवन प्रक्रिया तथा अर्कसंचय द्वारा फलों, जड़ी–बूटियों, पेड़ों, छालों, घास, बीजों, जड़ों व पेड़ के तनों के बीच वाले भाग से प्राप्त किये जाते हैं। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में विभिन्न पौधों से निकाले जाने वाले ऐसे सुगंधित तेलों का उपयोग किया जाता रहा है। इनमें न केवल अत्यधिक विशिष्ट सुगंध होती है, तथापि इन तेलों में अनगिनत महत्वपूर्ण व्याधिनाशक विशेषताएँ भी होती हैं। विभिन्न प्रकार के सुगंधित तेल प्रतिरोधक, विषाणु रोधी तथा रोगाणु नाशक होते हैं। शरीर से दूषित पदार्थों के निष्कासन में ये तेल बहुत उपयोगी होते हैं। आजकल लगभग तीन सौ प्रकार के सुगंधित तेलों को त्वचा संबंधी या अन्य उत्पाद बनाने में इस्तेमाल किया जा रहा है। इनमें से 15–20 प्रकार के तेल मुख्य रूप से व्यापक स्तर पर प्रयोग किये जाते हैं। हर तेल में एक विशेष प्रकार की चिकित्सीय विशेषता होती है, जिसके द्वारा पूर्ण रूप से प्राकृतिक उपचार होता है। इसके साथ ही इनसे सकारात्मक उर्जा उत्पन्न होती है।

इतिहास के आइने में

भारत में सुगंध चिकित्सा का इतिहास 5000 वर्षों से भी अधिक पुराना है। ऋग्वेदिक काल से ही सुगंन्धित पेड़–पौधों और तेलों का उपयोग किया जाता रहा है। यज्ञों एवं अन्य वैदिक कर्मकांडों के दौरान सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग वातावरण को शुद्ध करने हेतु किया जाता था। उपासना पद्धति के षोडशोपचार में गंधोपचार को आवश्यक माना गया है। आज भी नित्य देवपूजन में सुवासित अगरबत्ती और कपूर का उपयोग होता है। यही नही, भारत के निवासी अपने प्रसाधन में सुगंधित तेलों तथा विविध वस्तुओं के मिश्रण से बने हुए सुगंध का प्रयोग अति प्राचीन काल से करते आ रहे हैं। सुगंधि की चर्चा से प्राचीन भारतीय साहित्य भरा हुआ है। इन सुगंधियों को तैयार करने और उनके चिकित्सीय प्रयोगों का विशद् वर्णन 'गंधशास्त्र' में किया गया है। गुप्त कालीन (चौथी–पाँचवीं शती ई.) विद्वान वात्स्यायन ने अपनी कृति में जिन चौसठ कलाओं का उल्लेख किया है, उसमें सुगंध युक्त तेल एवं विभिन्न प्रकार के उबटन तैयार करना भी शामिल हैं। इसी काल में वाराहमिहिर द्वारा रचित 'बृहत्संहिता' में गंधयुक्ति नामक एक प्रकरण हैं। 'अग्नि पुराण' के 224वें अध्याय में सुगंधों तथा उन्हें तैयार करने की आठ प्रक्रियाओं शोधन, आचमन, विरेचन, भावन, पाक, बोधन, धूपन और वासन का उल्लेख है। इस ग्रंथ में सुगंध प्राप्ति के इक्कीस श्रोतों, स्नान के लिए सुगंधित जल तथा मुखवासक चूर्ण के अनेक नुस्खों का वर्णन है। इसके साथ–साथ फूलों से सुगंधित तेल तैयार करने की विधि का भी विस्तारपूर्ण उल्लेख है। 'कालिका पुराण' में देवपूजन के निमित्त पाँच प्रकार के सुगंध की चर्चा की गई है। इसी प्रकार 'विष्णुधर्मोत्तर' में 'गंधयुक्ति' प्रकरण है। बारहवीं शती में सोमेश्वर द्वारा रचित' मानसोल्लास में 'गंधभोग' नामक एक प्रकरण है, जिसमें तिल के तेल को केतकी, पुन्नग और चंपा के फूलों से सुवासित करने तथा उनसे तेल निकालने की प्रक्रिया, सुगंधित लेपों एवं सुगंधित जल तैयार करने की विधि का वर्णन है। मानसोल्लास के इन प्रकरणों के आधार पर नित्यनाथ ने तेरहवीं शती में अपने 'रसरत्नाकर' नामक ग्रंथ में गंधवाद नामक प्रकरण लिखा है, जिसमें सुगंधि तैयार करने की विस्तृत चर्चा है। गंधशास्त्र पर चौदहवीं शती में लिखे गये दो ग्रंथों की हस्तलिपि पुणे के भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान में आज भी सुरक्षित हैं। इनमें से एक का नाम 'गंधवाद' है, जिसके लेखक का नाम अज्ञात है। दूसरा ग्रंथ गंगाधर नायक कृत 'गंधसार' है, जिसमें सुगंधि को आठ वर्गों यथा पत्र, पुष्प, फल, डंठल, लकड़ी, मूल, वनस्पति स्राव (जैसे कपूर) और प्राणिज पदार्थ (जैसे कस्तूरी), में

विभाजित किया है। इसमें सुगंध तैयार करने की छः प्रकियाओं की विस्तृत चर्चा की गई है। 12वीं–13वीं शती से पूर्व लिखे गये एतत्संबंधित ग्रंथ आज मूल रूप में उपलब्ध नहीं हैं। भारतीय वैद्यक ग्रंथों में सुगंधित तेलों का उल्लेख मिलता है। 'चरक संहिता' में अमृतादि तैल, सुकुमार तैल, महापद्म तेल, आदि अनेक तेलों की चर्चा हैं। इनके बनाने के लिए चंदन, उशीर (खश), केसर, तगर, मंजिष्ठ (मंजीठ), अगुरु आदि अन्य सुगंधित वस्तुओं का प्रयोग होता था। इससे स्पष्ट है कि ईसा की आरंम्भिक शती में सुगंधियों का व्यापक प्रचार था एवं उनके निर्माण की कला भी संमुन्नत थी।

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में वानस्पतिक सुगंधित तेलों की संश्लेषण प्रक्रिया के विकास के साथ इनके संश्लेषित विकल्पों का व्यवसायिक उत्पादन प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार सुगंध तथा उपचार दोनों उद्देश्यों से प्राकृतिक सुगंधित तेलों का उपयोग सीमित होता गया। ऐसा माना गया कि नए संश्लेषित उत्पाद प्राकृतिक एवं महँगी सुगंधित सामग्रियों का स्थान ले लेंगे। परंतु कृत्रिम रूप से उत्पादित संश्लेषित सुगंधित तेल प्राकृतिक सुवास का स्थान नहीं ले सके।

सुगंधित तेल–प्रकृति एवं प्रभाव

वसीय तेलों से इतर, सुगंधित तेल चिपचिपे नहीं होते तथा इनमें से अधिकतर हल्के तरल पदार्थ के रूप में होते हैं, जो पानी में अघुलनशील एवं वाष्पशील होते हैं। एरोमाथैरेपी में सुगंधित तेलों का इस्तेमाल कई प्रकार से किया जाता है, जिनमें मालिश, स्नान, इन्हेलेशन, आदि प्रमुख हैं। शरीर की त्वचा, वसीय तेलों की अपेक्षा सुगंधित तेलों को अधिक आसानी से सोखती हैं। इस प्रकार सुगंधित तेल शरीर में अवशोषित होकर रोगों का उपचार करते हैं। मानव शरीर में 10,000 सुगंधों को पहचानने की क्षमता होती है। सुगंधित तेलों में उपस्थित अनेक प्रकार के रसायनों का मस्तिष्क के माध्यम से शरीर पर गहरा एवं व्यापक प्रभाव पड़ता है। अतः तनाव सम्बन्धी बीमारियों के उपचार में एरोमाथेरेपी अत्यन्त कारगर है। एक मधुर सुगंध मस्तिष्क पर अच्छा प्रभाव डाल सकती है, जो औषधि का काम करती है। उदाहरणार्थ, किसी रोगी को फूल भेंट करने का उद्देश्य सुगंध के द्वारा उसे अच्छा महसूस करने में मदद करना होता हैं।

विभिन्न फूलों जैसे जैरेनियम, चमेली, लैवेन्डर, आदि की सुगंध उनमें उपस्थित सुगंधित तेलो के कारण होती है, जिनके रसायनिक घटक नाड़ी संस्थान को आराम पहुंचाते हैं, तथा तंत्रिका तंत्र को शीघ्र ही शांत करते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये तेल न केवल शरीर बल्कि भावनाओं पर भी प्रभाव डालते हैं। सूंघने की प्रक्रिया में सुगंधित तेल के वाष्पशील सूक्ष्म घटक श्वसन प्रणाली के माध्यम से रक्त में मिल जाते हैं और इस प्रकार कुछ ही क्षणों में तंत्रिका तंत्र तक पहुच जाते हैं। सुगंधित तेलों द्वारा मालिश, शरीर में तेल के प्रवेश कराने का प्रभावी तरीका है। ये तेल मांसपेशियों में समा जाते हैं तथा उस अंग विशेष के दर्द या विकार को दूर कर देते हैं। ये शरीर में रक्त संचार को भी बढ़ाते हैं। विभिन्न तेलों का मानव शरीर पर अलग–अलग प्रभाव होता है।

सुगंध से उपचार

सुगंधों से रोगोपचार का इतिहास काफी पुराना है। विभिन्न प्रकार के इत्र–सुगंधादि जैसे केसर, गुलाब, केवड़ा, मोगरा, चमेली, चंदन तथा लोबान आदि न सिर्फ मानसिक खुशी हेतु इस्तेमाल किये जाते रहे हैं, बल्कि इनके द्वारा रोगों का उपचार भी किया जाता रहा है। इन्हीं प्राचीन उपचार पद्धतियों को आजकल फिर से अपनाया जा रहा है। आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र में भी सुगंधित तेलों का प्रयोग एंटीसेप्टिक, एंटीबैक्टीरियल, एंटीफंगल, एंटीन्यूरोलॉजिक, एंटीडिप्रेसेंट, एंटीरूमेटिक, डियोडोराइजर, आदि के रूप में किया रहा है, जिसे सुगंधोपचार कहा जाता है। कुछ सावधानियों के साथ अगर सुगंधित तेलों एवं अन्य सुगंध उत्पादों का प्रयोग किया जाए तो ये काफी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। सुगंधित तेलों के उपचार से मानसिक परेशानियां जैसे चिंता, अवसाद और तनाव दूर होते हैं। कुछ महत्वपूर्ण शारीरिक व्याधियों एवं सम्बन्धित नैदानिक गुणों से युक्त सुगंधित तेलों का सारणीबद्ध विवरण निम्नांकित है :

सुगंध चिकित्सा में सुगंधित तेलों को मालिश, स्नान, श्वासन, भापन, माउथवॉश, आदि के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। उपचार के विभिन्न तरीकों में मालिश सबसे असरकारक उपाय है, जिसमें व्याधि के अनुसार किसी खास तेल अथवा विभिन्न तेलों के मिश्रण से मालिश की जाती है। शरीर की त्वचा द्वारा सुगंधित तेलों के शीघ्र अवशोषण हेतु मसाज बहुत जरूरी है, इसीलिए मालिश और ऐरोमाथैरेपी का घनिष्ठ संबंध हैं। इससे शरीर की थकावट दूर होती है, और तंत्रिका प्रणाली के जरिए ये शरीर पर अच्छा प्रभाव डालते हैं। शरीर के जिस हिस्से की मालिश करनी होती है, उस भाग पर इन तेलों को मला जाता है। चूँकि एक्यूप्रेशर व रिफ्लेक्सीलॉजी का भी ऐरोमाथैरेपी से संबंध है, इसलिए मालिश करते समय बिंदुओं के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। सुगंधित तेलों का प्रयोग सदैव बेस ऑयल के साथ किया जाता है। विभिन्न प्रकार के तेलों जैसे वेजीटेबल ऑयल, एप्रीकॉट ऑयल, बादाम तेल, आदि को बेस ऑयल के रूप में लिया जा सकता है। सुगंधित तेलों की प्रयोग की जाने वाली मात्रा के अनुसार बेस ऑयल की मात्रा भी बदलती रहती है। सामान्यतः एक बूँद एसेंशियल ऑयल में एक मि.ली., चार से दस बूँद में दस मि.ली. और छः से पंद्रह बूँद में पंद्रह मि.ली. बेस ऑयल का प्रयोग किया जाता है।

सारणी : विभिन्न व्याधियों में प्रभावी सुगंधित तेल

क्र.सं.	विभिन्न रोग	प्रभावकारी सुगंधित तेल
1.	सामान्य दर्दनिवारक	कैमोमाइल, लैवेंडर, पुदीना, दौनी
2.	जोड़ों का दर्द	काली–मिर्च, काजुपुट, कैमोमाइल, साइप्रस, यूकेलिप्टस, जूनीपर बेरी, लैवेंडर, नींबू, मार्जोरम
3.	सामान्य एंटीसेप्टिक	काजुपुट, यूकेलिप्टस, लैवेंडर, नींबू
4.	एंटीसेप्टिक श्वसन तंत्र	तुलसी, तेजपात, काली मिर्च, काजुपुट, यूकेलिप्टस
5.	पाचन तंत्र के रोग	तुलसी, बर्गामॉट, काजुपुट, कैमोमाइल, जूनीपर बेरी, लैवेंडर
6.	आंत तंत्र संबंधी रोग	तुलसी, काजुपुट, साइप्रेस, यूकेलिप्टस, जूनीपर बेरी
7.	मूत्राशय के रोग	काली मिर्च, काजुपुट, साइप्रेस, यूकेलिप्टस, जूनीपर बेरी
8.	तंत्रिका तंत्र	तुलसी, चमेली, लैवेंडर, गुलाबी, नींबू,
9.	अंतःस्रावी तंत्र के रोग	तुलसी, काजुपुट, जूनीपर बेरी, लैवेंडर, गुलाब
10.	हृदय रोग	लैवेंडर, नींबू, रोजमेरी
11.	अत्यधिक सिरदर्द	तुलसी, जैरेनियम, मार्जोरम, पिपरमिंट, गुलाब, रोजमेरी, सेज
12.	फफूँद नाशक	लैवेंडर, पचौली, सेज, थाइम
13.	सामान्य मुहांसे	जूनीपर बेरी, लैवेंडर, तेजपात, नींबू, मिर्र, नियाउली, स्टाइरेक्स, थाइम
14.	लाल / पस वाले मुहांसे	कैमोमाइल, साइप्रेस, जैरेनियम, जूनीपर बेरी, नेरोली, पिपरमिंट, गुलाब, सेज, चंदन
15.	छाद / चर्म रोग	कैमोमाइल, पचौली, जैरेनियम, जूनीपर बेरी, लैवेंडर, नेरोली, पिपरमिंट, सेज, चंदन
16.	कीट रिपेलेंट	तुलसी, गेंदा, नीम

हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में अनेक ऐसी छोटी–मोटी बीमारियाँ होती हैं, जिनके समाधान के लिए ऐरोमाथैरेपी उपयोगी साबित हो सकती है। सुगंधित तेलों की मालिश किसी भी प्रकार की जलन उत्पन्न नही करती। इनमें फफूंदी रोधी और रोगाणुरोधक गुण होते हैं। वैसी स्थितियाँ जैसे गर्भावस्था, इत्यादि में जब दवाइयों का प्रयोग नुकसानदेह हो सकता है; उस स्थिति में इन तेलों के उपचार से कई समस्याओं को दूर करना आसान होता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी आजकल कई चिकित्सक इस उपचार की सलाह देते हैं। भारत के कई नामचीन अस्पतालों में एरोमाथैरेपी के लिए अलग विभाग स्थापित किये गये हैं।

सुगंध चिकित्सा में व्यापक रूप से प्रयुक्त कुछ प्रमुख सुगंधित तेलों एवं उनके रोग निवारक गुणों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

चन्दन : इसका सुगंधित तेल, तने की काष्ठ के अन्दर वाले हिस्से (हार्टऊड) से प्राप्त होता है। सुगंध चिकित्सा में इसके विशेष उपयोग है। यह अवसाद, चिड़चिड़ापन व भय को शांत करने में सक्षम है; साथ ही व्यग्रता, अनिद्रा, नजला, सर्दी–खांसी व अन्य श्वसन तंत्र से सम्बन्धित विकारों को दूर करने में कारगार है। इसके अलावा इससे फोड़े–फुंसियां, रुखी–त्वचा, एक्ज़ेमा व मुहासे भी ठीक होते हैं।

गुलाब : इसकी सुगंध पुष्पों से प्राप्त होती है। ये आंखों की तकलीफ, मुंह में छाले, अल्सर, गले के घाव, मितली, कब्जियत, सरदर्द, माइग्रेन व अवसाद के उपचार में उपयोगी है। साथ ही त्वचा की झुर्रियां, एक्जीमा, श्वसन व पाचन विकारों में भी सहायक है।

तुलसी : तुलसी का सुगंधित तेल श्वास सम्बन्धी तमाम बीमारियों खासकर खाँसी व नजला–जुकाम, अनिद्रा, मानसिक अवसाद, क्षीण स्मरण शक्ति, अनिर्णय, एकाग्रचित्ता की कमी, आदि में उपयोगी है।

कपूर : हृदय रोग के लिए उत्तम, उच्च व निम्न रक्तचाप में सामान रूप से कारगर, कब्ज, अपच, वमन, आंतविकार में उपयोगी, दांत–दर्द, उदर कृमि, पित्त विकार और पैरों के छाले, गठिया, मूत्रावरोध के इलाज में उपयोगी है।

पिपरमिंट : सर्दी–खांसी, फ्लू, छाती के संक्रमण, गठिया, पीठ दर्द, नाक से रक्तस्राव, गले के घाव ठीक करने में सक्षम तथा

पेट दर्द, मुंह के संक्रमण में लाभदायक है। साथ ही यह माइग्रेन के उपचार में भी सहायक है।

रोजमेरी : इसके समस्त पौधे में ही सुगंध निहित होती है। कमजोर याददाश्त, एकाग्रचित्ता की कमी व मानसिक थकान में उपयोगी है। मोटापा दूर करने में भी सहायक है। साथ ही ये मोच व जोड़ों के दर्द में लाभप्रद व पेट में दर्द, कब्ज दूर करने में कारगार है।

यूकेलिप्टस : इसकी सुगंध कपूर की गंध के सामान, ताजगी भरी तथा तेज होती है। यह बुखार, सर्दी, फ्लू, गले का संक्रमण, गुर्दे के संक्रमण, जोड़ों व मांसपेशियों के दर्द में उपयोगी है। इसके प्रयोग से बंद नाक, नजला व सिरदर्द से राहत मिलती है।

देवदार : इसमें एक विशिष्ठ प्रकार की खुशबू होती है, जो मामूली शारीरिक रोगों को कम करती है, और श्वसन प्रणाली में सुधार लाती है। इस तेल का उपयोग निषेधात्मक भावनाओं से संबंधित भय और चिंताओं को दूर करके उच्चस्तरीय अनुभव देने के लिए किया जा सकता है।

वैनिला : वैनिला का मूल तेल तथा वैनिलिन का प्रयोग सुगंध चिकित्सा में किया जाता है। वेनिला का मस्तिष्क पर एक उल्लासमय प्रभाव पड़ता है।

चमेली : यह आत्मविश्वास को बनाए रखने में मदद करती है और शरीर को ऊर्जावान रखती है। कुछ अन्य सुगंधित तेलों के साथ मिश्रित कर प्रयोग करने से यह एक बेहतर शक्ति एवं आत्मविश्वास का अनुभव कराता है।

बेरगामोट : यह नींबू और फूलों की सुगंध का एक संयोजन है जिसे अन्य एरोमाथैरेपी उत्पादों के साथ मिश्रित किया जाता है। यह चिंता और अवसाद को दूर करता है।

लैवेंडर : अन्य एरोमाथैरेपी उत्पादों के संयोजन में उपयोग किया जाता है। इससे रक्त प्रवाह 40 फीसदी तक बढ़ता हुआ पाया गया हैं।

इनके अतिरिक्त रोजमर्रा की जिंदगी में कई ऐसी छोटी–मोटी शारीरिक तकलीफें होती हैं, जिनके समाधान के लिए ऐरोमाथैरेपी उपयोगी साबित होती है। सामान्य बीमारियों में प्रयुक्त होने वाले सुगंध चिकित्सा से सम्बन्धित कुछ प्रसिद्ध एवं प्रभावकारी अनुप्रयोगों का वर्णन इस प्रकार है :

पेट दर्द : पेट के ऊपरी भाग में दर्द की स्थिति में तीन बूँदें पिपरमेंट ऑइल, दो बूँदें क्लोव ऑयल तथा एक बूँद यूकेलिप्टस ऑइल के मिश्रण में एक चम्मच वेजीटेबल ऑइल मिलाकर मालिश करने से लाभ होता है। दर्द यदि पेट के निचले हिस्से में हो तो दो बूँद जिरेनियम ऑयल, दो बूँद रोजमेरी आयल व एक बूँद जिंजर आयल को एक चम्मच वेजीटेबल ऑयल के साथ दर्द वाले भाग पर हल्के हाथ की मालिश की जा सकती है।

दंत रोग : दाँतों की उचित सफाई न रखने व अच्छे पोषण के अभाव से कई बार दाँतों में खून आने लगता है। इस स्थिति में एक लीटर गुनगुने पानी में एक चम्मच ब्रैंडी, दो बूँद लेमन ऑयल, एक बूँद लेवेंडर ऑयल व एक बूँद यूकेलिप्टस ऑयल मिलाकर कुल्ला करने से लाभ होता है।

नकसीर : गर्मियों में नकसीर फूटना या नाक से खून आना एक आम समस्या है। इसके लिए एक टिशु पेपर पर एक बूँद साइप्रस ऑयल, एक बूँद लेवेन्डर ऑयल, दो बूँद लेमन ऑयल व एक बूँद रोज ऑयल डालकर सूँघने से राहत मिलती हैं। छोटे–मोटे साधारण घाव व फोड़े–फुंसियों के उपचार के लिए दो बूँद लैवेंडर ऑयल, एक बूँद कैमोमाइल ऑयल व एक बूँद टी ट्री ऑयल के मिश्रण को एक कप गुनगुने पानी में मिलाकर दिन में दो बार धोने से घाव ठीक हो जाते हैं।

पेशी खिचाव एवं मोच : हाथ या पैरों की मांसपेशियाँ खिंच जाने अथवा मोच आ जाने की स्थिति में किसी भी बेस ऑयल की तीस मि.ग्रा. मात्रा लेकर उसमें पाँच बूँद ब्लैक पेपर ऑयल, पंद्रह बूँद यूकेलिप्टस ऑइल, पाँच बूँद जिंजर ऑयल व नट मेग ऑयल मिलाकर दिन में तीन बार मालिश करना फायदेमंद होता है।

अनिद्रा : आजकल की भागदौड़ भरी जिंदगी में नींद न आना भी एक आम समस्या है। इसके कारण शारीरिक या मानसिक दोनों हो सकते हैं। शरीर की मालिश या नहाने के पानी में कुछ तेलों के प्रयोग से यह समस्या दूर हो सकती है। तीस मिलीग्राम बेस ऑइल में पाँच बूँद कैमोमाइल ऑयल, पाँच बूँद मेजोरम ऑयल, पंद्रह बूँद सैंडल वुड ऑयल तथा पाँच बूँद क्लैरीसेज ऑयल मिलाकर मालिश करने से आराम मिलता है।

सौन्दर्योपचारिक उपयोग

एरोमाथैरेपी निश्चय ही सेहत, सौन्दर्य एवं श्रृंगार तीनों के लिए समान रूप से लाभदायक हैं। सौन्दर्य– प्रसाधन हेतु सुगंधित वनस्पतियों एवं उनसे प्राप्त सुगंधित पदार्थों का प्रयोग हमेशा से किया जाता रहा है। बालों में फूल या गजरे तथा सुगंधित तेलों का प्रयोग, शरीर में उबटन लगाना, घरों को सुवासित करने हेतु धूप, अगरबत्ती लोबान, सुगंधित लकड़ियों, इत्यादि को जलाना सदियों से प्रचलित रहे हैं। सुगंधित तेल से युक्त गुलाब की पंखुड़ियॉ त्वचा का सौन्दर्य निखारने के लिए सदियों से विख्यात है। ये त्वचा को पोषण देती हैं, सुगंधित बनाती हैं एवं ठंडक प्रदान करती हैं। केवड़े के इत्र की तासीर ग्रीष्म में तन को शीतलता प्रदान करती है। केवड़े के जल से स्नान करने से पसीने की दुर्गंध दूर होती तथा शरीर में शीतलता बनी रहती है। ग्रीष्म ऋतु के पुष्प मोगरा की

भीनी–भीनी महक तन–मन को ठंडक का एहसास कराती है। इसके फूलों को रुमाल या वस्त्रों के अंदर रखने से ठंडी ताजगी का अनुभव होता है। पसीने की बदबू हटाने के लिए ताजे फूलों को पानी में मसल कर इस पानी को शरीर पर लगाने से त्वचा मोगरे की खुशबू से महक उठती है। गेंदा के पीले केसरिया फूल त्वचा को निखारने में विशेष उपयोगी हैं। इसे स्किन टॉनिक कहा जाता है जो त्वचा का सौन्दर्य निखारता है। रात में खिलकर महकते रातरानी के फूलों से उपचारित सुगंधित जल से स्नान करने से शरीर में ताजगी का एहसास होता है व पसीने की दुर्गंध से भी छुटकारा मिलता हैं। कमल के फूलों को धारण करने से शरीर शीतल रहता है। फोड़े–फुँसी आदि शांत होते हैं। शरीर पर विष का कुप्रभाव कम होता है। इससे मोटापा कम होता है। पुदीना की सूखी पत्तियाँ पानी में उबालकर छनित जल को नहाने के बाद शरीर पर लगाने से कई घंटों तक ताजा महसूस किया जा सकता है। इसी प्रकार संतरे के छिलके, नींबू, नीम की पत्तियों से उपचारित जल से स्नान कर शरीर को न केवल घंटों तक तरो ताजा रखा जा सकता है, बल्कि कई प्रकार के चर्म रोगों से भी बचा जा सकता है। नहाने के पानी में 2 बूँद पिपरमेंट ऑयल, 4 बूँद रोजमैरी ऑयल और 2 बूँद लैवेंडर ऑयल मिला कर स्नान करने से थकान व बेचैनी दूर होती है। चंपा, चमेली, मौलसरी आदि के प्रयोग से रक्त विकार दूर होते हैं और त्वचा में निखार आता है। ब्राउन शुगर, सी साल्ट, ग्लीसरीन, शहद, बादाम तेल, विटामिन ई, लेमन एसेंशियल ऑइल और लाइम एसेंशियल ऑइल से तैयार उबटन को पूरे शरीर में स्नान से पूर्व लगाने से मृत कोशिकाओं (डेड सेल्स) और सूरज से झुलसी त्वचा से छुटकारा मिलता है। आधुनिक समय में सौन्दर्य निखार के लिए प्रयुक्त हो रहे विभिन्न हर्बल कॉसमेटिक्स उत्पादों जैसे साबुन, शैम्पू, ब्यूटी क्रीम, फेशियल फोम, बॉडी लोशन, हेयर जेल, इत्यादि के साथ–साथ ब्यूटी पार्लरों एवं हेयर स्पा में सुगंधित तेलों और इनसे निर्मित उपादानों का प्रयोग व्यापक रूप से हो रहा है।

निषेधात्मक पहलू

उचित रूप की जाने वाली सुगंध चिकित्सा यूँ तो सुरक्षित एवं हानिरहित मानी जाती है, परन्तु इसे अपनाने से पूर्व कुछ तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति न केवल मानसिक अपितु शारीरिक क्षमता में भी दूसरों से भिन्न होता है, इसलिए इस चिकित्सा से सम्बन्धित किसी भी अनुप्रयोग को अपनाने से पूर्व विशेषज्ञ की सलाह आवश्यक है। अत्यधिक संवेदनशील व्यक्तियों और गर्भवती महिलाओं को रोजमेरी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। गुलाब का प्रयोग कैंसर की रसायन चिकित्सा के साथ नही करना चाहिए। साथ ही गर्भावस्था के दौरान इसके प्रयोग में पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए। गर्भावस्था के दौरान कपूर का प्रयोग भी वर्जित है। रात में पिपरमिंट का प्रयोग नींद पर विपरीत प्रभाव डालता है। चंदन के तेल को अन्य तेलों विशेषकर केस्टर व पाम तेल के साथ मिलाने पर इसकी क्रियाशीलता कम हो जाती है। लेमनग्रास के प्रयोग से पहले कुशल एरोमाथैरेपिस्ट से सलाह अपेक्षित है।

हंसी जिसे ने खोजी वो धन ले के लौटा
खुशी जिस ने खोजी चमन ले के लौटा

मगर प्यार को खोजने जो गया वो
न तन ले के लौटा न मन ले के लौटा

– नीरज

अब न वो दर्द, न वो दिल, न वो दीवाने हैं
अब न वो साज, न वो सोज, न वो गाने हैं

साकी! अब भी यहां तू किसके लिए बैठा है
अब न वो जाम, न वो मय, न वो पैमाने हैं

– नीरज

मसालों का औषधीय उपयोग (स्वाद भरे मसाले, सेहत के रखवाले)

कुमारी शिप्रा नागर, श्री विकास तथा डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

भारत को मसालों का घर कहा जाता है। यहाँ प्राचीन काल से मसालों की खेती, उपयोग तथा अन्य देशों में इनका निर्यात किया जाता है। मसालें हमारे जीवन में स्वाद बढ़ाने में ही नहीं अपितु हमारे व्यंजनों को आकर्षक रंग–रूप तथा शरीर को स्वस्थ रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इनके सेवन से कई बीमारियाँ हमसे दूर रहती है। नवीन शोधों के आधार पर आहार विज्ञानी भी इन करामाती मसालों के गुणों को स्वास्थ्य उपचार में उपयोगी मानते है।

क्या है खासः मसालें केवल हमारे भोजन का स्वाद, रंग व रूप को अच्छा ही नहीं बनाते अपितु अन्य गुणों से युक्त होकर क्षुधावर्धक एंव रोग नाशक भी होते है। ये हमारे मुख में लार का स्रावण वृद्धि व कीटाणुओं के संक्रमण से भी बचाव करते है। विभिन्न शोधों से सिद्ध हो चुका है कि, मसालों में एंटीऑक्सीडेन्ट की मात्रा काफी अधिक होती हैं, जो कि रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाते है। हल्दी, लालमिर्च, लहसुन, अदरक आदि में फाइटोके– मिकल्स होते है, जिसमें कैन्सर–रोधी गुण पाये जाते है। शरीर को रोग मुक्त करने के साथ ही मसालो में रेशे की मात्रा भी होती है, जिससे पाचन तंत्र ठीक रहता है।

मसालें व उनसे संबन्धित औषधीय गुण हमारे शरीर तक पहुँचे अतएव इनका समुचित प्रयोग अतिआवश्यक है। उदाहरणतः पुदीना और धनिया आदि को कपड़े में लपेटने के पश्चात प्लास्टिक के थैले में रखकर ही फ्रीज में रखना चाहिए। साथ ही मसालों के पूर्ण स्वाद हेतु ताजे मसालों को सब्जी इत्यादि पकाने के पश्चात, जबकि सूखी बूटियों को

पकाने की शुरूआत या पकाने के दौरान प्रयोग करना उचित होता है। मसालों व अन्य जड़ी–बूटियों का प्रयोग उपयोगी दवाओं व विभिन्न सौंदर्य उत्पादकों के रूप में भी किया जाता है। रसोई घरों में नियमित रूप से प्रयुक्त प्रमुख मसालों के औषधीय गुण निम्न प्रकार हैं।

मेथी (*ट्रिगोनेला फोइनम–ग्रेयकम*) : यह हरी पत्तेदार सब्जियों में गिनी जाती है। इनके बीज मसालें के रूप में प्रयुक्त किये जाते है। मेथी के बीज रक्त–शर्करा को कम करने में सहायक है, एवं मधुमेह के उपचार हेतु इन्हें रात भर पानी में भिगोकर प्रातः चबाकर खाना चाहिए, जिससे इन्सुलिन मात्रा नियंत्रित होती है एवं चबाकर खाने से पाचक रस प्रक्रिया भी अच्छी तथा मलावरोध भी नहीं होता। यह रक्त को साफ एवं शरीर से हानिकारक विषैले तत्वों की भी सफाई करता है।

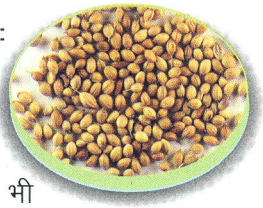

धनिया (*कोरिऐन्ड्रम सैटिवम*) : धनिये के ताजे व सूखे बीज खाना पकाने में प्रयुक्त होते है, ये पाचन क्रिया को ठीक रखती है एवं पेट की गैस सम्बन्धित समस्याओं का भी निवारण करती है। धनिये के बीजों का सेवन बुखार में किया जाता है। इसका रस विटामिन ए, बी1, बी2 एंव सी तथा शरीर में लौह तत्व की कमी को दूर करता है । एक से दो चम्मच धनिये के रस को ताजे मठ्ठे में मिलाकर पीने से पाचन प्रकिया, उल्टी, दस्त, हैपिटाइटिस व अल्सर जैसे रोगों में राहत मिलती है। इसका पानी रक्त शर्करा को कम करने व गुर्दे के रोगों में भी लाभप्रद है।

मिर्च (*कैप्सिकम ऐनुअम*) : आप यह सुनकर आश्चर्य चकित हो सकते है कि, हरी मिर्च अपने तीखे पन के लिए ही नहीं अपितु अपनी औषधीय विशेषताओं के लिए भी जानी जाती है। पूर्व दशकों में वैद्य–हकीम उसे मरहम के तौर पर प्रयोग मे लाते थे तथा इसे दर्द कम करनें के लिए भी लगाया

जाता था व सर्दी एवं पीत ज्वर के उपचार के लिए खाया जाता है। लाल मिर्च में (कैपसियासिन) नामक पदार्थ होता है। जो कि मानव मस्तिष्क में एंडॉर्फिन के संचार को प्रभावित करता हैं, जिससे मॉर्फीन के तुल्य दर्द निवारण अनुभव होता है। यह रक्तचाप बढ़ाती है, तथा इसका मिश्रण फ्रोस्टबाइट के उपचार में भी लाभदायी है।

हल्दी (*करक्यूमा लौंगा*) : खाना पकाने के अतिरिक्त हल्दी का इस्तेमाल कटे घाव चोट एवं जले पर भी किया जाता है। कच्ची हल्दी का रस रक्त को शुद्ध करता हैं। हल्दी में शकरक्यूमिन नामक सक्रिय पदार्थ होता है जिसके एण्टीऑक्सीडेन्ट व एंटीइनफ्लेमेट्री गुणों के कारण ही इसका प्रयोग गठिया रोग के इलाज हेतु किया जाता है। साथ ही साथ यह सौन्दर्य उत्पाद के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरणः धूप रोधक उत्पादकों में हल्दी की रक्षोध्न विशेषता के कारण ये चेहरे की कील व मुहाँसों को ठीक करने में प्रयुक्त होता है। अनुसंधानों द्वारा हल्दी में कैंसर प्रतिरोधी गुण पाया गया है।

लौंग (*सिज़ीजियम ऐरोमैटिकम*) : लौंग जीवाणु प्रतिरोधी गुणों के लिए भी जाना जाता है। ये हमारे शरीर में एंजायमी प्रवाह को प्रभावित करता है, तथा लौंग हमारी पाचन तंत्र के अंगो को स्वस्थ रखने में सहायक है। यह पेट की जलन को भी शांत करता है। लौंग को पीस कर शहद के साथ मिलाकर उल्टी में सुधार होता है। लौंग को पीस कर नमक के साथ चबाने से खॉसी व गले की खराश में राहत मिलती है। यह दमें की तकलीफ को भी कम करता हैं तथा रक्षोध्न होने के कारण दाँत दर्द व मुख के रोगों में भी लाभदायक है तथा लौंग का उपयोग इन्सुलिन को नियंत्रित करने में भी सहायक सिद्ध होता है।

दाल चीनी (*सिनामोमम वेरम*) : दाल चीनी का प्रयोग अधिकांशतः भोजन का स्वाद व सुगंध बढ़ाने के लिए किया जाता है। यह उदर संबन्धी वातहर, पाचन सम्बन्धी रसों के संचार मात्रा को बढ़ाता है। यह मुहँ के कीटाणुओं को मार कर दाँतों व मसूड़ो को सड़न से बचाता है। इसके अतिरिक्त दालचीनी, उबकाई, बुखार, दस्त व माहवारी संबंधी समस्याओं में आराम देती हैं, मधुमेह पीड़ित रोगियों में शक्कर की मात्रा को चयापचयी प्रक्रिया द्वारा नियंत्रित करती है।

काली–मिर्च (*पाइपर नाइग्रम*) : काली मिर्च प्रयोग में आने वाले सर्वाधिक प्राचीन मसालों में से एक है। यह भोजन में स्वाद व सुगन्ध हेतु प्रयुक्त होती है। यह उदर वायु को कम करता है व पाचन तंत्र के अंगों को प्रभावित कर पाचक रसों व थूक के स्रावण को प्रभावित करता है। चुटकी भर पिसी काली मिर्च पाउडर को चुटकी भर जीरा व नमक के साथ लेने से खाँसी में आराम मिलता है। पिसी काली मिर्च व गुड़ के मिश्रण को सेवन करने से उदर संबन्धित परेशानियों में राहत मिलती है।

इलाइची (*इलैक्टेरिया कारडेमोमम*) : इलाइची को मसालों की रानी भी कहा जाता है। यह अपने अनूठे स्वाद व तीव्र सुगंध के लिए जानी जाती है। यह दवाओं में भी उदर वायु को कम करने व पाचन शक्ति औषधि के रूप में प्रयोग में लाते है। इलाइची वाली चाय बदहज़मी से हो रहे सिरदर्द में भी लाभदायक है । इलाइची व दालचीनी के पानी से गरारा करने से फेरिंजिटिस, फ्लू व खराब बंद गले आदि की समस्याओं में राहत प्रदान करती है।

जीरा (*क्यूमिनम साइमिनम*) : जीरे में लौह तत्व भरपूर मात्रा में होता हैं, तथा यह हमारे शरीर के रोग प्रतिरोधी क्षमता को भी बढ़ाता है। उबला हुआ जीरे का पानी पीने से दस्त में आराम मिलता हैं, तथा इसके तेल का सेवन मुख्यतः उदर वायु संबन्धी रोगों में किया जाता है। एक चम्मच जीरे को 1.5–2 लीटर पानी में उबालकर उसे गरम चाय की तरह दिन में तीन बार पीने से पेट में होने वाली जलन से राहत मिलती है।

अज़वाइन (*ट्रेकिस्पर्मम एमी*) : यह हड्डियों को मजबूत करती है तथा श्वास संबन्धी रोगों में लाभप्रद है। अज़वाइन एंव मठ्ठे का मिश्रण सूखी खाँसी के इलाज में प्रयुक्त करते है। अज़वाइन को नारियल के तेल में तल कर तथा उस तेल से शरीर पर मसाज, मॉसपेशियों में दर्द निवारण के लिये किया जाता है। अज़वाइन एक लाभदायक मसाला है, परन्तु आवश्यकता से अधिक उपयोग, आँखों को हानि भी पहुँचा सकता है।

हींग (*फेरयूला एसफॅटिडा*) : हींग का प्रयोग प्रमुख रूप से पाचन क्रिया को स्वस्थ रखने एंव भोजन में सुगन्ध बढ़ाने के लिए किया जाता है। वात संबन्धी समस्याओं में चुटकी भर हींग, नमक व मठ्ठे में भोजन के उपरान्त पीने से आराम मिलता है। पेट दर्द में हींग को पानी में मिलाकर उसका लेप नाभी पर लगाने से राहत मिलती है। हींग का टुकड़ा दाँतों तले दबाने से दॉत दर्द में भी आराम मिलता है। फेफड़ो के संक्रमण (ब्रोनकॉइटिस) से ग्रस्त रोगियों को पाँच ग्राम कच्चा हींग औषधी के रूप में दिया जाता है, जबकि सियाटिका तथा पक्षाघात (पैरालिसिस) से पीड़ित रोगियों को हींग, घी में तल कर दिया जाता है।

यद्यपि उपर्युक्त सभी मसालें स्वाद के साथ अगण्य लाभ भी पहुँचाते है, परन्तु इनका उपयोग आवश्यकता अनुसार न्यूनतम मात्रा में ही करना चाहिए ! इनका अत्यधिक प्रयोग स्वस्थ शरीर को हानि भी पहुँचा सकता है। अतः हमें निश्चित रूप से उचित मात्रा में ही मसालों का उपयोग करना चाहिए जो हमारे खाने के शौक एवं हमारे स्वास्थ्य में सन्तुलन स्थापित कर सके।

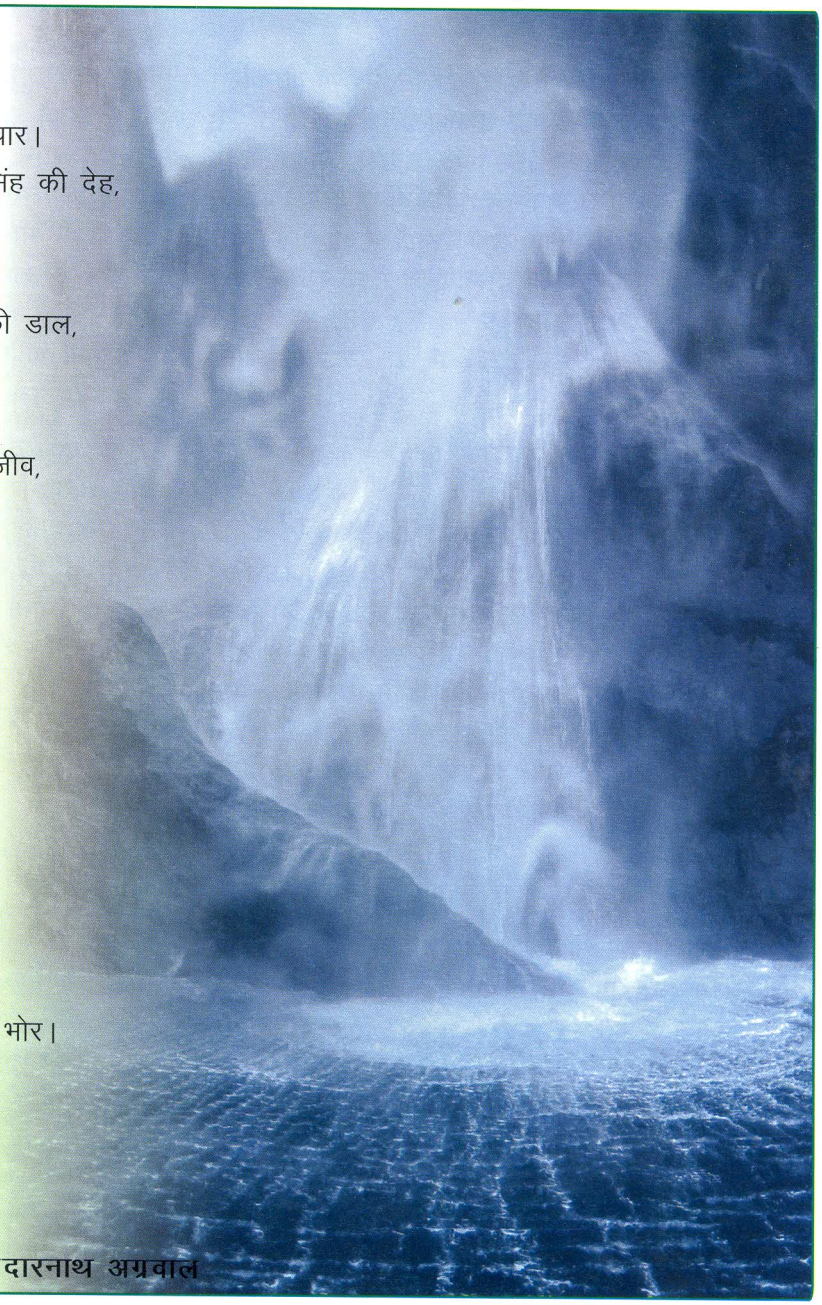

पहला पानी गिरा गगन से
उमंड़ा आतुर प्यार,
हवा हुई, ठंडे दिमाग के जैसे खुले विचार।
भीगी भूमि – भवानी, भीगी समय – सिंह की देह,
भीगा अनभीगे अंगों की
अमराई का नेह
पात–पात की पाती भीगी– पेड़–पेड़ की डाल,
भीगी – भीगी बल खाती है
गैल–छैल की चाल।
प्राण–प्राणमय हुआ परेवा, भीतर बैठा, जीव,
भोग रहा है
द्रवीभतू प्राकृत आनंद अतीव।
रूप –सिंधू की
लहरें उठती,
खुल–खुल जाते अंग,
परस--परस
घुल–मिल जाते हैं
उनके–मेरे रंग।
नाच–नाच
उठती है दामिने
चिहुंक–चिहुंक चहुं ओर
वर्षा – मंगल की ऐसी है भीगी रसमय भोर।
मैं भीगा,
मेरे भीतर का भीगा गंथिल ज्ञान,
भावों की भाषा गाती है
जग जीवन का गान।

– केदारनाथ अग्रवाल

पुस्तकालय विज्ञान के जनक : डॉ. रंगनाथन

श्रीमती पूर्णिमा श्रीवास्तव
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

पुस्तकालय शब्द अंग्रेजी के लाइब्रेरी शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। लाइब्रेरी शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'लाइबर' से हुई है, जिसका अर्थ है 'पुस्तक'। पुस्तकालय पुस्तकों का संग्रहालय होता है, जहाँ पर पुस्तकें सुरक्षित रखी जाती हैं। प्राचीन काल में पुस्तकालय में पुस्तकों के संग्रह पर अधिक बल दिया जाता था, परन्तु आज पुस्तकों के उपयोग पर बल दिया जाता है।

पुस्तकालय विज्ञान के जनक डॉ. रंगनाथन

पुस्तकालय एक सामाजिक संस्था है और इसके द्वारा दी जाने वाली सेवा को 'पुस्तकालय सेवा' कहते हैं। इस संस्था द्वारा विभिन्न प्रकार के पाठकों की विभिन्न मॉगों की पूर्ति की जाती हैं। पुस्तकालय शब्द को अग्रलिखित विद्वानों द्वारा इस प्रकार पारिभाषित किया है–

- पुस्तकालय ही संसार के सच्चे विश्वविद्यालय है – प्रो0 कार्लाइल
- पुस्तकालय के द्वारा ही साहित्य से जीवन की ओर बढ़तें हैं – डॉ. राधाकृष्णन
- पुस्तकालय लोक शिक्षा की सजीव शक्ति है – यूनेस्को
- पुस्तकों, पाठकों एवं पुस्तकालय स्टाफ, इन तीनों का त्रित्व ही पुस्तकालय है– डॉ. एस. आर. रंगनाथन

विज्ञान के दो वर्ग होते हैं – एक तो प्राकृतिक विज्ञान – जिसके अन्तर्गत भौतिक और प्राणि विज्ञान आदि विशुद्ध विज्ञान के विषय आते हैं। दूसरा वर्ग है सामाजिक विज्ञान का – जिसके अन्तर्गत शिक्षा शास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विषय आते हैं। पुस्तकालय एक सामाजिक संस्था है। अतः पुस्तकालय विज्ञान सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत आता है। पुस्तकालय तीन चीजों से मिलकर बना है – पाठक, पुस्तक व कर्मचारी। इन तीनों के अभाव में पुस्तकालय की कल्पना असंभव है। ये तीनों आपस में एक दूसरे के पूरक होते हैं, इन्हें त्रिमूर्ति कहा जाता है।

पुस्तकालय विज्ञान लाइब्रेरी साइंस शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। पुस्तकालय विज्ञान वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत कुछ आदर्श सिद्धान्तों के आधार पर पुस्तकालय सेवा को अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी और प्रभावशाली बनाने के लिए नई प्रविधियों का अनुसंधान और पुरानी प्रविधियों में सुधार किया जाता है जो प्रबंधन, सूचना प्रौद्योगिकी, शिक्षाशास्त्र एवं अन्य विधाओं के औजारों का पुस्तकालय के संदर्भ में उपयोग करता है। पुस्तकालय विकासशील संस्था है क्योंकि उसमें पुस्तकों और अन्य उपादानों की निरंतर वृद्धि होती रहती है। इसलिए इसकी स्थापना के समय ही इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

आधुनिक पुस्तकालय विज्ञान, पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान कहलाता है। क्योंकि यह केवल पुस्तकों के अर्जन, प्रस्तुतीकरण, वर्गीकरण, प्रसूचीकरण, फलक व्यवस्थापन तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसके अन्तर्गत सूचना की खोज, प्राप्ति, संसाधन, सम्प्रेषण तथा पुर्नप्राप्ति भी सम्मिलित है। आधुनिक पुस्तकालय, अद्यतन सूचना संचार प्रौद्योगिकी का बहुत अच्छा उपयोग कर रहे हैं।

वर्गीकरण विज्ञान के सैद्धान्तिक विशेषज्ञ स्वर्गीय सेयर्स ने कहा था कि एक युग मेलविल डयूवी का था उसी प्रकार एक समय आयेगा और वह रंगनाथन युग के नाम से जाना जायेगा। सेयर्स की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य निकली और वर्तमान ग्रंथालय विज्ञान जगत को रंगनाथन युग कहा जाता है।

डॉ. रंगनाथन का पूरा नाम शियाली रामामृत रंगनाथन है। इनका जन्म मद्रास राज्य के तंजोर जिले के शियाली गाँव में 9 अगस्त 1892 को हुआ था। उच्च शिक्षा के लिए वे सन् 1909 में क्रिश्चियन कॉलेज मद्रास में दाखिल हुये, तत्पश्चात सन् 1913 में उन्होंने स्नातक में प्रथम श्रेणी प्राप्त की। उन्होंने स्नातकोत्तर उपाधि गणित विषय लेकर सन् 1916 में उच्च श्रेणी में प्राप्त की। उसके उपरान्त सन् 1917 में उन्होने अध्यापन शास्त्र की

एल. टी. परीक्षा पास की। सन् 1917 से 1923 तक शासकीय महाविद्यालय में (मद्रास) गणित के व्याख्याता तथा सन् 1920 से 1923 तक मद्रास के प्रेसीडेंसी कॉलेज में सहायक प्राध्यापक के रूप में अध्यापन कार्य किया।

सन् 1924 का समय था जब भारत के ग्रंथालयी दृश्य पर डॉ. रंगनाथन का आगमन हुआ। भारत में पुस्तकालय कानून की रूपरेखा बनाने, उसे प्रस्तावित कराने के लिए उन्होंने भगीरथ प्रयास किया। डॉ. रंगनाथन जी ने सर्वप्रथम सन् 1930 में आदर्श पुस्तकालय कानून की एक रूपरेखा बनाई। उसके बाद सन् 1942 में भारतीय पुस्तकालय संघ के निमन्त्रण पर डॉ. रंगनाथन ने आदर्श जन पुस्तकालय बिल' की रूपरेखा बनाई। जिसे उसी वर्ष अखिल भारतीय पुस्तकालय संघ के अधिवेशन में विचार–विमर्श के बाद स्वीकार किया गया। मद्रास में जो पुस्तकालय कानून लागू है वह इसी पर आधारित है। वे प्रथम विश्वविद्यालयीन पुस्तकालयाध्यक्ष थे, जो मद्रास विश्वविद्यालय के ग्रंथालय में प्रथम ग्रंथपाल के पद पर नियुक्त हुये। इस हेतु इन्हें ब्रिटिश म्यूजियम की ग्रंथालय कार्य–प्रणाली का ज्ञान प्राप्त करने हेतु लंदन जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इन्होंने लदंन विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ लाइब्रेरियनशिप में ग्रंथालय विज्ञान की शिक्षा ग्रहण की। सन् 1945–46 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय (बी. एच. यू.) में ग्रंथपाल और ग्रंथालय के प्रोफेसर नियुक्त किये गये। राष्ट्रीय पुस्तकालय कमेटी के एक सदस्य की हैसियत से सन् 1948 में उन्होंने एक संघीय पुस्तकालय बिल की भी रचना की। सन् 1947 से 1955 तक आपने दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्य किया। आप दिल्ली प्रवास के दौरान सन् 1933 में स्थापित ग्रंथालय संघ के सन् 1947 से 1953 तक अध्यक्ष रहे। ग्रंथालय विज्ञान में इनकी अनेक उपाधियों के फलस्वरूप उन्हें 1948 में दिल्ली विश्वविद्यालय ने 'डॉक्टर्स ऑफ लेटर्स' की उपाधि प्रदान की।

सन् 1937 में भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मश्री' से सम्मानित किया। सन् 1962 में इंडियन स्टेटिस्टिकल इंस्टीट्यूट, कलकत्ता के तत्वाधान में बैंगलोर में 'प्रलेखन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्र' की स्थापना इनके द्वारा की गई। आप 'ब्रिटिश लाइब्रेरी एसोसियेशन' के आजीवन अध्यक्ष रहे। इन्हें भारत में पुस्तकालय विज्ञान का जनक कहा जाता है। 27 सितम्बर 1972 को डॉ. रंगनाथन का स्वर्गवास हुआ।

डॉ. एस. आर. रंगनाथन कोलन वर्गीकरण तथा क्लासिफाइड केटलॉग कोड के प्रणेता हैं। पुस्तकालय विज्ञान को महत्व प्रदान करने तथा भारत में ग्रंथालय व्यवसाय का प्रचार प्रसार करने में इनका सक्रिय योगदान रहा। उन्होंने अपने जीवन के अनमोल क्षणों को एकल अनुसंधान में तल्लीन करके भारत में ग्रंथालयी परिदृश्य को सबसे पहले परिवर्तित किया।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने डॉ. रंगनाथन के 71वें जन्मदिन के अवसर पर बधाई देते हुए लिखा है– "डॉ. रंगनाथन ने न केवल मद्रास विश्वविद्यालय ग्रंथालय को संगठित किया और स्वयं को एक मौलिक विचारक के रूप में स्थापित किया बल्कि देश में सम्पूर्णतः ग्रंथालय चेतना को भी जागृत किया। उनके कार्य–कलापों के परिणामस्वरूप ही भारत में ग्रंथालय विज्ञान तथा ग्रंथालय व्यवसाय उचित प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका।"

डॉ. रंगनाथन ने सृजनात्मकता के साथ काम किया तथा स्वयं के विचारों को विकसित किया। उन्होने कई पत्र तथा शोध–पत्र लिखें। उन्होंने जन–ग्रंथालय विधेयकों का प्रारूप तैयार किया और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्रिया–कलापों को प्रोत्साहित करते हुए अपना सहयोग दिया। उन्होंने 50 से अधिक ग्रंथ तथा 2000 शोध लेख, सूचना लेख, टिप्पणियॉ आदि लिखी हैं। सन् 1950 में उन्होंने अपने विशाल ग्रंथ 'पुस्तकालय विकास योजना' की भी रचना की थी। उनकी रचनाओं की ग्रंथसूची ए. के. दास गुप्ता द्वारा तैयार की गयी।

डॉ. रंगनाथन के कुछ प्रमुख ग्रंथ हैं–

1. प्रोलेगोमेना टू लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन – यह एक अतुलनीय पुस्तक है।
2. फाईव लॉ ऑफ लाइब्रेरी साइंस
3. कोलन क्लासीफिकेशन
4. लाइब्रेरी साइंस विथ ए स्लाइंट टू डाक्यूमेन्टेशन
5. जर्नल – अबगिला, एनअल्स ऑफ लाइब्रेरी साइंस
6. क्लासीफाइड केटलॉग कोड

यह डॉ. रंगनाथन ही थे जिन्होने वर्गीकरण की एक नवीन रूप– स्वतंत्रमुख, विश्लेषणात्मक– संश्लेषणीय वर्गीकरण का निर्माण किया, जो न केवल फलक व्यवस्थापन के लिए ही अपितु अनुक्रमणिका तैयार करने के लिए भी मुक्त–कंठ रूप से स्वीकार की गयी। वर्गीकरण के क्षेत्र में डॉ. रंगनाथन का सर्वाधिक अंशदान द्विबिन्दु वर्गीकरण (कोलन क्लासीफिकेशन) है जो सर्वप्रथम सन् 1933 में प्रकाशित हुआ। इसका अन्तिम सातवाँ संस्करण सन् 1987 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में (:) के द्वारा अक्षरों और संख्याओं को जोड़ने का प्रयोग किये जाने के कारण ही इसका नाम कोलन क्लासीफिकेशन पड़ा। डॉ. रंगनाथन बाद में इसका नाम सूक्ष्म वर्गीकरण रखना चाहते थे लेकिन कोलन क्लासीफिकेशन तब तक इस नाम से ख्याति प्राप्त कर चुका था।

डॉ. रंगनाथन ने पुस्तकालय विज्ञान जगत में एक डायनामिक थ्योरी का निर्माण किया था जिसका प्रयोग आपने

कोलन क्लासीफिकेशन में किया था। इन्होंने ज्ञान जगत को पॉच मूलभूत श्रेणियों में बाँटा, जो इस प्रकार है–

1. व्यक्तित्व – (,) कौमा
2. पदार्थ – (;) सेमी कोलन
3. उर्जा – (:) कोलन
4. देश – (.) डॉट
5. काल – (') इन्वर्टेड कौमा

इनको पी.एम.ई.एस.टी. के नाम से भी जाना जाता है जिससे हम अमूर्त से मूर्त की ओर बढते हैं। डॉ. रंगनाथन ने भारत में पुस्तकालय व्यवसाय को प्रोत्साहित करने हेतु निम्नलिखित विभिन्न व्यक्तिगत विशेषताओं को चुना। जैसे– प्रजनक लेखक, वर्गीकरणाचार्य और वर्गीकरणकर्ता, सूचीकरणकर्ता, संगठनकर्ता, अध्यापक–शिक्षक– गुरू दाता, सभापति, अध्यक्ष, सलाहकार, सदस्य, प्रलेखनज्ञाता इत्यादि।

डॉ. रंगनाथन केवल वर्गीकरणाचार्य के रूप में ही नहीं, अपितु एक वर्गकार के रूप में भी जाने जाते हैं। सन् 1946–47 के दौरान जब वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ग्रंथालय विज्ञान के प्रोफेसर तथा पुस्तकालयाध्यक्ष थे, उन्होंने अपनी वर्गीकरण योजना के अनुसार विश्वविद्यालय के ग्रंथालय के लगभग एक लाख ग्रंथों का फिर से वर्गीकरण लगभग 18 महीनों के अल्प समय में किया। इस कार्य के लिए उन्होने अपने ही दिये गये नियम की सहायता ली। सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि यह सब कुछ उन्होंने अपने उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों जैसे– पाठन कार्य, प्रशासनिक कार्यों आदि का पालन करते हुए अपनी 56 वर्ष की अवस्था में किया। उन्होंने सर्वप्रथम 'वर्गीकरण सिद्धान्त' का सूत्रपात किया। यह सिद्धान्त वर्गीकरण तन्त्रों का ढाँचा तैयार करने तथा अन्य शब्द–भंडार नियंत्रक उपायों के लिए तारतम्यता, एकरूपता और ठोसपन प्रदान करते हैं। डॉ. रंगनाथन के अनुसार वर्गीकरण ग्रंथालय के पंचसूत्र के ध्येय की प्राप्ति का साधन है। ये सूत्र रूप हैं–

1. पुस्तकें उपयोग के लिए है।
2. प्रत्येक पाठक को उसकी अभीष्ट पुस्तक मिले।
3. प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिले।
4. पाठकों का समय बचे।
5. पुस्तकालय एक वर्द्धनशील संस्था है।

पुस्तकालय विज्ञान की सभी मान्यताएं इन सिद्धान्तों में गागर में सागर के समान हैं। डॉ. रंगनाथन ने अपनी बहुचर्चित पद्धति कोलन क्लासीफिकेशन में विभिन्न प्रकार के चिन्हों का प्रयोग कर मिश्रित अंकन का सूत्रपात किया। डॉ. रंगनाथन ने अपनी अंकन संबंधी तीन उपसूत्रों का वर्णन किया है– सापेक्षता, अभिव्यंजकता, मिश्रित अंकन, स्मृति सहायक उपसूत्र। उन्होंने नवीन विचारों को अत्यधिक आतिथ्य प्रदान करने के लिए तथा अंकन की दृढ़ता को तोड़ने हेतु अनेक युक्तियों को सम्मिलित किया। ये खण्ड युक्ति, रिक्ति युक्ति, रिक्त अंक, शून्यकरण अंक तथा शून्य–शून्य कारक अंक आदि नये–नये विचारों का प्रयोग किया। उन्होंने अंकन के लिए परिवर्तनशील शक्ति प्रदत संयोजक चिन्हों का प्रयोग किया जो संकेतक अंक नाम से जाने गये।

डॉ. रंगनाथन ने वर्गीकरण आचार्यों तथा वर्गीकारों को एक दिशा प्रदान करने के लिए अभिधारणाओं, उपसूत्रों तथा सिद्धान्तों का एक संगठित समूह समावेशित किया जिसे भारत के विभिन्न विश्वविद्यालय के ग्रंथालयों में परखा जा चुका है। उन्होंने सैद्धान्तिक विकास पर आधारित बहुत से विषयों के लिए वर्गीकरण तन्त्र का ढाँचा तैयार किया था। लगभग 150 ऐसे विषय हैं जिनके लिए कोलन क्लासीफिकेशन के आधार पर गहन तालिकाएँ तैयार की जा चुकी हैं। एनअल्स ऑफ लाइब्रेरी साइंस तथा डाक्यूमेन्टेशन एण्ड लाइब्रेरी साइंस में वर्गीकरण पर प्रकाशित उनके लेख, गहन वर्गीकरण से संबंधित कठिन समस्याओं को हल करने में पर्याप्त रूप से सहायक हैं।

पुस्तकालय विज्ञान के पितामह कहे जाने वाले डॉ. रंगनाथन को भविष्य में कोलन क्लासीफिकेशन के लिए नहीं बल्कि इसके आधारभूत सिद्धान्तों के लिए हमेशा याद किया जाता रहेगा।

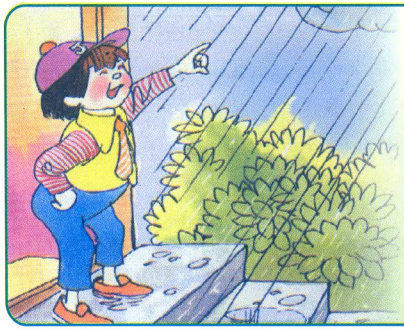

अब के सावन में शरारत ये मेरे साथ हुई
मेरा घर छोड़ के कुल शहर में बरसात हुई

आप मत पूछिए क्या हम पे सफर में गुजरी
था लुटेरों का जहां गांव, वहीं रात हुई

– नीरज

कृषकों के लिए बांस उत्पादन : उन्नत तकनीक एवं प्रवर्धन विधि

डॉ. पी के दास
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान जोरहाट

बांस

विश्व के बांसों का सर्वाधिक संसाधन भण्डार हमारे देश में ही विद्यमान है। सामान्यतः बांस मोनोकार्पिक होता है अर्थात् बांस अपने जीवन काल में केवल एक ही बार फूलता फलता है और बीज उत्पादन के पश्चात मर जाता है। इसीलिए सामान्य तौर पर बीज द्वारा बांस तैयार करना सम्भव नहीं हो पाता है।

कल्म कटिंग द्वारा प्रवर्धन– कल्म कटिंग द्वारा वर्धी प्रवर्धन आफसेट्स प्रवर्धन विधि का अच्छा विकल्प है। इस विधि के अनुसार कल्म कटिंग में जड़ के विकास को तीव्र करने के लिए वृद्धि नियंत्रक हारमोन का उपयोग किया गया है। इस विधि का उपयोग आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण बांस की प्रजातियों में सफलता पायी गई है। इस प्रकार तैयार पौध के रोपण करने पर बांस के कल्ले, बीज द्वारा तैयार पौधों की तुलना में अधिक तीव्रता से बढ़ते हुए जल्द ही बेड़ी में परिवर्तित होते हैं। इस प्रक्रिया के विस्तारित वर्णन नीचे दिये गये हैं।

कल्म कटिंग द्वारा पौधों की उत्पादन पद्धति

बांस कटिंग के लिये क्यारी बनाने की विधि – ऊपरी मिटटी की परत 15 सेंटीमीटर नीचे तक खोद कर निकाल ली जाती है। क्यारी का आकार 10 मी.×1.2 मी. रखा जाना चाहिए। गड्ढे में 3 – 5 सेंटीमीटर परत बालू बिछा दिया जाता है। डरसबान कीटनाशक 0.5 मिली लीटर/लीटर पानी (ml/lit.) के अनुपात में इस बालू की परत पर एवं क्यारी के चारों तरफ छिड़काव करें ताकि दीमक के प्रकोप को रोका जा सके।

बांस प्रवर्धन–क्यारी तैयारी

इसके बाद निकाली गई मिट्टी को चूर कर पुनः गडढे में भर देना चाहिये।

दो गांठों वाला कल्म /कटिंग की तैयारी – 1 से 1.5 साल पुरानी बांस मार्च–अप्रैल के माह में प्रथम गांठ के ठीक ऊपर से काट लिया जाता है। पौधों की शाखाएं काट दी जाती है। पत्तियों और किनारे की शाखाओं को अलग करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रस्थ कलिकाओं को कोई हानि न पहुंचे। कलम को सूखने से बचाने हेतु अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए।

कटिंग बनाना – पूरे बांस को धारदार औजार या तेज आरी से दो गांठ वाले टुकड़े/कटिंग में काट दिया जाता है। कटिंग करते समय बांस को गांठ से 5–7 सेंमी. दूरी पर काटना चाहिए। बांस के ऊपरी अंश का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

दो गांठों वाला कटिंग की तैयारी

कटिंग/ बांस टुकड़ा में छिद्र करना – दोनों गांठों के बीच मे एक छोटा सा छिद्र बनाया जाता है। यह छिद्र आगर (auger) द्वारा बनाया जाता है। छिद्र करते समय यह ध्यान देना चाहिये कि कटिंग/ टुकड़ा के दोनों गांठ भूमि के समतल दिशा में रहें।

हॉरमोन मिश्रण बनाने की विधि – एक साफ बर्तन में 4–5 मिली लीटर इथाइल एल्कोहल 90 प्रतिशत् लेकर उसमें 1 ग्राम आई.बी.ए. (इनडोल वियूटारिक एसिड), बी. डी. एच.

कल्म कटिंग से तैयार बांस पौधे

लोबा केम या ई–मर्क डालकर सावधानी पूर्वक हिलाते हुए घोलना चाहिए।

उससे दो पौध प्राप्त किये जा सकें। फिर इन्हें मिट्टी सहित क्यारी/जमीन से उठा लिया जाता है। पौधे क्यारी से उठाते समय ज्यादा गड्ढा खोद कर निकाल ली जानी चाहिए ताकि जड़ को नुकसान से बचाया जा सके। जड़युक्त कटिंग को क्यारी से उखाड़ कर रोपण क्षेत्र में जून–जुलाई महीने में लगाया जाता है।

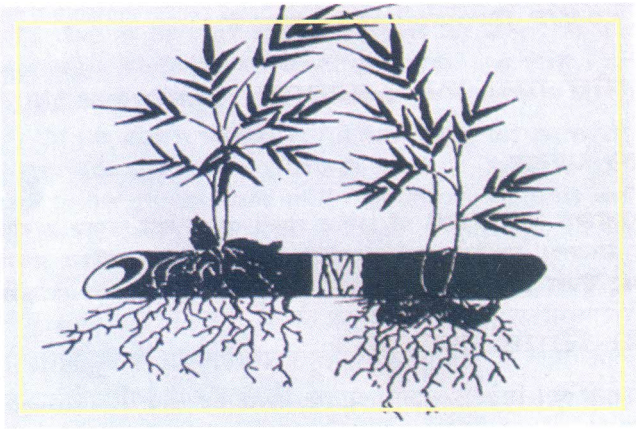

पूर्ण तैयार कल्म कटिंग को काट कर रोपित करें

इतने बदनाम हुए हम तो इस जमाने में
तुमको लग जाएंगी सदियां इसे भुलाने में

न तो पीने का सलीका, न पिलाने का शऊर
अब तो ऐसे लोग चले आते हैं मैखाने में

– **नीरज**

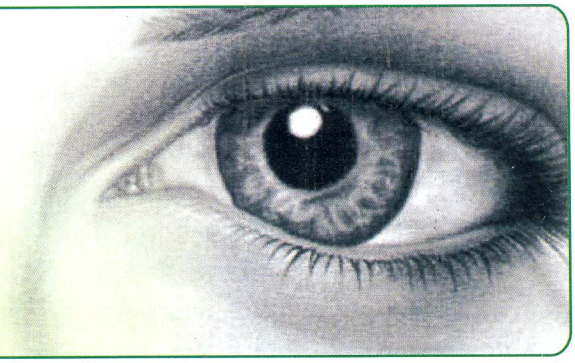

माईमोसा डिप्लोट्राईका : काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान (असम) के सवाना घास पारिस्थितिक-तंत्र के लिये बढ़ता हुआ खतरा और उसके संभावित निदान

श्री प्रवीण कुमार वर्मा, डॉ. ध्रुबज्योति दास, डॉ. विश्वजीत कुमार एवं डॉ. रंजीत कुमार
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

मानव के उद्भव ने प्रकृति की बहुत धीरे–धीरे चलने वाली विकास की प्रक्रिया के चक्र को बदल दिया जिसकी वजह से सारी दुनिया मे कई प्रजातियों अपने वासस्थान से दूसरी जगह में फैल गई। कभी भिज्ञता से तो कभी अनभिज्ञता से। यह पौधे पहले तो वंहा के पारिस्थितिकी–तंत्र मे घुसपैठ कर तेजी से फैलते है, फिर आदिम प्रजातिओं को विस्थापित कर वंहा के संसाधनो पर अपना कब्जा कर लेते है और पारिस्थितिकी–तंत्र के संतुलन को बिगाड़ कर बहुत बड़ी संख्या मे स्थापित हो जाती है। विदेशी अंक्रांत पादप भारत की जैव–विवधिता के लिए एक बहुत बड़े खतरे के रूप में सामने आये है। यह आये तो भारतीय भू–भाग में मेहमान की तरह लेकिन बहुत ही कम समय में इन्होंने स्थायी प्रजातियों पर अपना बहुत गंभीर प्रभाव छोड़ा है, चाहे वह पचास के दशक में अमेरीकन गेहूं के साथ आया हुआ *परिथ्रिनिम हिस्टोफोरुस* (गाजर घास) या फिर *लैनटना कमारा* हो या फिर *मिकैनिया मैकरनथा*। इनमे से ही एक है फैबेसी कुल का नाइट्रोजन प्रदान करने वाला पौधा *माईमोसा डिप्लोट्राईका*। यह पौधा दक्षिणी अमेरीकी देश ब्राजील मूल का है जो कि बहुत ही शीघ्रता से विषुवत रेखा के दोनों तरफ के देशो में फैल गया और इंडोनेशिया के रास्ते भारत की ब्रह्मपुत्र घाटी में चाय के बागानों में नाइट्रोजन प्रदान करने वाले पौधे के रूप मे 1960 के दशक में लाया गया। उष्णकटिबंधीय जलवायु आश्रित यह पौधा बहुत कम समय में ही ब्रह्मपुत्र घाटी के परिस्थितिकी तंत्र में फैल गया और बहुत जल्दी ही खुले मैदानो में उगने वाली घासों और झाड़ियों को अपनी चपेट में लेता चला गया। इसका उदाहरण है अपनी विविध जीवन शैली से परिपूर्ण काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान (यूनेस्को विश्व प्रकृतिक धरोहर), जोकि अपने सवाना घासतंत्र और दुनिया में एक सींग वाले भारतीय गैण्डे (राइनोसिरोस यूनीकार्निश) के लिए प्रसिद्ध है जो इस वन क्षेत्र में उन्मुकत रूप से विचरण करते है। यह उद्यान माइमोसा के बढ़ते खतरे की वजह से पर्यावरणविदो और वन प्रबंधको के लिये बड़ी चिंता का विषय है। मा. *डिप्लोट्राईका* की भयावहता इसकी पत्तियों और तने में पाया जाने वाले जैव–रसायन *'मिमोसिन'* नमक विषाक्त रसायन में छिपी है, साथ ही साथ इसकी एक उपप्रजाति *माइमोसा डिप्लोट्राईका* उपप्रजाति *डिप्लोट्राईका,* जिसके तनो पर हुकनुमा कांटे पाये जाते है जिसकी वजह से वन्य–जीवों का विचरण प्रभावित होता है। यह समस्या काजीरंगा प्रशासन के लिये उद्यान में प्रबंधन के लिये एक चुनौती बना हुआ है।

काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान में वृहत अनुसंधान के दौरान इस पौधे की जीवन–वृत्ति के विभिन्न आयामों का अध्यन किया जा चुका है। इसकी शुरुआत जनवरी से फरवरी माह के दौरान वन क्षेत्र में नियंत्रित आग लगाने की प्रक्रिया से होती है इसी समय माइमोसा के पौधों में बीजों का परिपक्वन हो चुका होता है और आग की गर्मी इनके सख्त बीज आवरण को प्रभावित करती है जिसकी वजह से यह फलियो से छिटकर जमीन पर गिर जाते है साथ ही साथ में पौधों के दूसरे परिपक्व बीज भी जमीन पर गिरते रहते है परंतु आग के प्रभाव में आए बीज तुरंत नमी पाकर अंकुरण शुरू कर देते है जबकि सामान्य बीज धीरे धीरे उगना प्रारम्भ करते है यह प्रक्रिया जुलाई –अगस्त (बारिश के माह) तक तेजी से चलती रहती है और व्यापक रूप से इसके पौधे घास के विशाल सवाना मैदानों में फैल जाते है और निकटवर्ती पौधों को अपने खतरनाक प्रभाव में ले लेते है।सितम्बर से अक्तूबर माह में इसकी अग्रिम तनो में काक्षीय पुष्प कलिकायें आने लगती है जिनमें से गुलाबी रंग के पुष्प अक्टूबर से लेकर दिसम्बर माह तक समान्य रूप खिलते रहते हैं और यह 3–5 (6) बीजों से भरी फलियों का निर्माण करते है जो कि दिसम्बर से लेकर फरवरी माह तक परिपक्व होकर बीजों का विकरण शुरू कर देती है। बीज पानी के बहाव से, हवा (कम दूरी), जीवों के रोयेदारों बालों या भीगी मिट्टी से लिपटी त्वचा, यहाँ तक पर्यटक के वाहनों के द्वारा भी लंबी दूरी तक बिखर जाते है। एक परिपक्व पौधा एक वर्ष मे 60,000–70,000 बीजों को जन्म देता है, जिनमें 95–97% तक अंकुरण की क्षमता होती है। माइमोसा के बीजों का आवरण इतना सख्त होता है कि वर्षो तक पानी में पड़े रहने के

बाद भी यह नष्ट नहीं होते और अनुकूल वातावरण में फिर से अंकुरित हो जाते है, जमीन के अंदर यह 50 वर्षो तक सुप्तावस्था मे पड़े रह सकते है।

बचाव के संभावित उपाय :

1. पादप को प्रारम्भिक अवस्था में ही जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए एवं यह प्रक्रिया तब तक अपनानी चाहिये जब तक मृदा के अंदर बीज का पूरा भंडारण अंकुरित हो कर खत्म न हो जाए।
2. अधिक विकसित पौधों को बीज बनने से पहले जड़ से कम से कम एक सेंटीमीटर ऊपर से काट देना चाहिये या फिर जला देना चाहिये।
3. जन–जागरूकता के कार्यक्रम चला कर उसकी भयावता से आम–जन को अवगत कराकर इससे लंबी दूरी तक उसके निदान की रणनीति बनाई जा सकती है।
4. माइमोसा प्रभावित क्षेत्रों को जी. आई. एस. विधि से पूरे पार्क का मानचित्रण कर संभावित क्षेत्रों में उसके फैलाव को रोका जा सकता है।
5. संभावित उपायों के लिये यह आवश्यक है कि वह सामाजिक, सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य हो और उसका कोई भी हानिकारक प्रभाव वन्य–जीवन, घरेलू पालतू जीवों और उगाई जाने वाली फसलों पर ना पड़े।

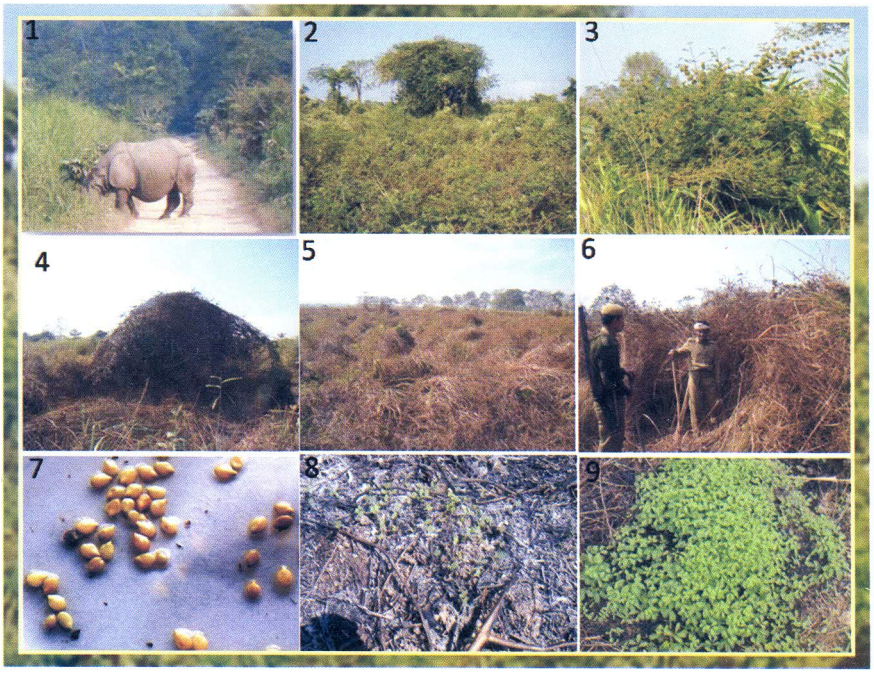

चित्र विवरण : 1. स्वछन्द विचरित करता हुआ एक गैंडा, 2–3. माइमोसा का घास–तंत्र पर प्रभाव, 4–6. सम्पूर्ण परिपक्व पौधा, 7. बीज, 8–9. आग के बाद नये पौधो का अंकुरण

डायेटरी फाइबर

डॉ. विकास राना एवं श्री शंकर शर्मा
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट, असम

डायेटरी फाइबर क्या है ?

डायेटरी फाइबर अनाज, फल, सब्जी, सेम, नट और बीज में पाये जाने वाले वे हिस्से है ज़ो कि हम नहीं पचा सकते है। डायेटरी फाइबर एकल पदार्थ नहीं है, यह समान गुणों से समृद्ध पदार्थों का एक समूह है। फाइबर के घटकों के नाम कुछ इस प्रकार है – सेलुलोंज, हेमि सेलुलोंज, लिगनिन, गम, पेक्टिन आदि।

डायेटरी फाइबर दो प्रकार के होते हैं

डायेटरी फाइबर को उनके गुण और शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। ये दो प्रकार के हैं – घुलनशील और अघुलनशील फाइबर।

अघुलनशील फाइबर जैसे सेलुलोंज, हेमि सेलुलोंज, लिगनिन आदि पानी में नहीं घुलते है। अघुलनशील फाइबर गेहूं की भूसी, साबुत अनाज, और सब्जियां आदि जैसे खाद्य पदार्थों में पाया जाता है। अघुलनशील फाइबर पानी को सोख लेता है और आंत के आकार को बढ़ा देता है, जिससे आंत को सही तरह से काम करने के लिए सहायता मिलती है। घुलनशील फाइबर जैसे गम और पेक्टिन पानी में घुल जाते है और ये सेम, जई, जौ, फलों, सब्जियों आदि में पाए जाते हैं। रक्त कोलेस्ट्रॉल कम करने और शरीर में शूगर के स्तर को नियमित करने में घुलनशील फाइबर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

कौन से खाद्य पदार्थ फाइबर की आपूर्ति करते है ?

पौधे से प्राप्त खाद्य पदार्थ डायेटरी फाइबर के एकमात्र स्रोत हैं। फाइबर का सबसे अच्छे स्रोत है: अनाज से बने ब्रेड और अनाज, फल और सब्जियां, सूखे सेम और मटर। इन खाद्य पदार्थों से घुलनशील और अघुलनशील दोनों ही फाइबर पाये जाते है।

डायेटरी फाइबर क्या करता है ?

डायेटरी फाइबर पोषण और स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायी है। डायेटरी फाइबर के सेवन से कई रोग जैसे बृहदान्त कैंसर, हृदय रोग, मधुमेह आदि रोगो का निवारण किया जा सकता है।

अघुलनशील फाइबर के स्रोत

सेलूलोज़	हेमि सेलुलोंज	लिगनिन
गेहूं के आटे	अनाज	अनाज
असंशोधित चोकर	साबुत अनाज	असंशोधित
गोभी	ब्रसेल्स स्प्राउट्स	चोकर
मटर	सरसों का साग	स्ट्रॉबेरीज
हरी बीन्स	चुकंदर	बैंगन
वैक्स बीन्स		नाशपाती
ब्रोकोली		हरी बीन्स
हरी मिर्च		मूली
सेब		
गाजर		

घुलनशील फाइबर के स्रोत

गम	पेक्टिन
दलिया	स्क्वाश
जई उत्पाद	सेब
सूखी सेम	खट्टे फल
फूलगोभी	
हरी बीन्स	
गोभी	
सूखे मटर	
गाजर	
आलू	
स्ट्रॉबेरी	

पाचन तंत्र

डायेटरी फाइबर हमारें स्वास्थ्य के लिए लाभदायी है। यह पाचन तंत्र के माध्यम से काम करता है। फाइबर से समृद्ध आहार कब्ज़ की परेशानी से राहत दिलाने के लिए मदद करता है। पाचन प्रक्रिया में दोनों प्रकार के फाइबर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अघुलनशील फाइबर पाचन प्रणाली से पानी सोख लेता है जिससे आंत का आयतन बढ़ जाता है और यह भोजन को पचाने योग्य कोमल बनाता है। इससे पाचन तंत्र में पाचन प्रक्रिया में जो समय लगता है वह कम हो जाती

है और खाद्य आसानी से सोख ली जाती है। घुलनशील फाइबर से पाचन और पोषक तत्वों के अवशोषण में देरी लगता है और यह एंजाइम और हार्मोन के काम को बदल डालता है।

पेट के कैंसर

उच्च चर्बी युक्त आहार के सेवन का सहसंबद्ध पेट के कैंसर के साथ है। फाइबर से समृद्ध, कम चर्बी वाले आहार के सेवन से कई मायनों में पेट के कैंसर का खतरा कम किया जा सकता है। पहला, फाइबर जल अवशोषित करता है, आंत में संभावित कार्सीनोजेनिक (कैंसर पैदा करने) पदार्थों के घनत्व को कम करता है। दूसरा, अघुलनशील फाइबर बृहदान्त्र में अपशिष्ट पदार्थ के प्रवाह को गति देता है जिससे कि आंत में कैंसर उत्पन्न करने वाले पदार्थों को पेट के संपर्क में आने के लिए बहुत कम समय मिलता है। अंत में, उच्च फाइबर युक्त आहार में आम तौर पर चरबी कम होती है और कम चरबी के सेवन से पेट के कैंसर के खतरे से बचा जा सकता है।

हृदय रोग

घुलनशील फाइबर रक्त में कोलेस्ट्रॉल के घनत्व को कम करके दिल के रोग के जोखिम को कम करने में अहम भूमिका निभा सकता है। जैसे ही कोलेस्ट्रॉल आंत के अंदर गुजरता है, घुलनशील फाइबर इस को बांधता है, और शरीर से इसे बाहर निकालने में मदद करता है। यह भी मालूम हुआ है कि घुलनशील फाइबर दिल में कोलेस्ट्रॉल के उत्पादन को धीमा कर सकता है, और साथ ही साथ कम घनत्व के लेपोप्रोटीन कणों को बदल कर उन्हें स्वास्थ्य के लिए जोखिम बनने में रोक सकता है।

मधुमेह

रक्त में शर्करा के उच्च स्तर के कारण मधुमेह रोग होता है। फाइबर के सेवन से रक्त ग्लूकोज़ (रक्त शर्करा) कम करने में मदद मिलती है। घुलनशील फाइबर से पाचन प्रक्रिया और रक्त में ग्लूकोज के अवशोषण में देरी होती है, जिससे रक्त ग्लूकोज के परिमाण को जमने से रोकने में मदद मिल सकती है।

क्या आप पर्याप्त फाइबर का सेवन कर रहे हैं?

एक औसत नागरिक 10 से 15 ग्राम के बीच फाइबर प्रति दिन सेवन करते है, परन्तु विभिन्न स्वास्थ्य एजेंसियां प्रतिदिन विभिन्न खाद्य पदार्थों से 20 और 30 ग्राम के बीच फाइबर के सेवन की सिफारिश करते है। आप ब्रेड और अनाज से अपने आहार में फाइबर की मात्र में वृद्धि कर सकते हैं। फाइबर के अन्य कुछ अच्छे स्रोत है ताजा फल,सब्जियां, छिलके, सूखे सेम, मटर आदि।

खाद्य लेबल पर फाइबर

भोजन में फाइबर की मात्रा को ग्राम में और न्यूट्रिशन लेबल में उसकी दैनिक मूल्य के आधार पर प्रतिशत के रूप में दिखाया जाता है। विभिन्न खाद्य सामग्रियों के निर्माता भी अपने उत्पाद में अघुलनशील फाइबर और घुलनशील फाइबर की मात्रा को सूचीबद्ध कर सकते हैं।

1993 में स्वास्थ्य संबंधी दावे को एफडीए (यू. एस. फूड एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन) ने अनुमोदित किया था जिसमें यह कहा गया था कि कम वसा युक्त आहार और फाइबर युक्त अनाज उत्पादों, फल, और सब्जियों के सेवन से कुछ किस्म के कैंसरों के खतरे को कम किया जा सकता हैं।

खाद्य सूची में फाइबर बढ़ाने के लिए कुछ उपायः

रोटी, अनाज, चावल, और पास्ता आदि से–

- ब्रेड खरीदते समय यह देंखे कि जो आटा इस्तेमाल किया गया है वह "पूरे गेहूं का आटा", "चक्की में पिसे "या" 100 प्रतिशत गेहूं का आटा" हो।
- ब्राउन चावल में, परिष्कृत सफेद चावल की तुलना में ज्यादा फाइबर होता है।
- हरी सब्जी, सलाद आदि में फाइबर की मात्रा अधिक होती है।

फलों और सब्जियों से

- फलों में प्राकृतिक रुप से फाइबर की मात्रा अधिक होती है। डिब्बे में बंद या फ्रिज में रखे फलों की तुलना में ताजे फलों में फाइबर अधिक होता है। फल के छिलके और बीज फाइबर की मात्रा में बढ़ोत्तरी करते है।
- सब्जियां भी प्राकृतिक रुप से फाइबर से समृद्ध होती है। उच्च फाइबर के लिए सब्जियों को कच्चा या भाप में पका के खाने की कोशिश करें। छिलकों को फैंके बिना खाने की कोशिश करेंगे तो यह और अधिक लाभदायी होगा।
- अनाज, ब्रेड आदि के साथ सूखे फलों के सेवन से फाइबर की मात्रा में बढ़ोत्तरी होगी।

सूखी सेम और अखरोट आदि से

- सूखी सेम और मटर आदि में चर्बी कम होती है और फाइबर, विटामिन और खनिजों के बहुत अच्छे स्रोत होते हैं। सूप, सलाद, और चावल के व्यंजनों में सेम, मटर, दाल का सेवन करें।
- अखरोट फाइबर का अच्छा स्रोत हैं, लेकिन इसमें चर्बी भी अधिक होती है।

फाइबर की खुराक

खाद्य सूची (गाइड) का पालन करके आप कृत्रिम फाइबर का सेवन किए बिना अपने आहार से पर्याप्त फाइबर प्राप्त कर सकते हैं। खाद्य सूची (गाइड) के अनुसार आपको अपने आहार में प्रत्येक दिन कम से कम छह रोटी और अनाज और कम से कम पांच फल और सब्जियां लेनी होगी। भोजन फाइबर के सबसे अच्छे स्रोत हैं। भोजन में घुलनशील और अघुलनशील दोनों प्रकार के फाइबर पाये जाते हैं।

आहार में फाइबर को बढ़ाने के लिए दिशा निर्देश

जब आप अपने आहार में फाइबर की मात्रा में वृद्धि करते हैं, यह महत्वपूर्ण है कि इसे धीरे–धीरे बढ़ायें। बहुत तेजी से आहार में फाइबर की मात्रा बढ़ाने से शुरू में पेट में अतिरिक्त गैस का गठन या दस्त हो सकती है। जैसा कि पानी में अघुलनशील फाइबर पानी को अवशोषित करता है, इसलिए अतिरिक्त तरल पदार्थ पर्याप्त मात्रा में पीना महत्वपूर्ण बन जाता है। प्रत्येक दिन कम से कम छह से आठ गिलास तरल पदार्थ का सेवन करें। आहार में फाइबर वृद्धि करने के लिए कुछ दिशा निर्देश हैं :

- धीरे – धीरे मात्रा में बढ़ोत्तरी करें
- पानी का खूब सेवन करें

दैनिक 30–36 ग्राम फाइबर के लिए खाद्य सूची का उदाहरण

खाद्य युग्म	कुल एओएसी फाइबर (ग्राम में)	कुल एनएसपी फाइबर	अघुलनशील एनसीपी फाइबर	घुलनशील एनसीपी फाइबर	प्रतिरोधी स्टार्च
दूध के साथ मूसली (70 ग्राम)	3.9	3.9	1.8	0.9	2.2
संतरे का रस, चाय / कॉफी (50 मिलीलीटर)	0.1	0.1	0.1	0.1	लागू नहीं
बेक्ड बीन्स (150 ग्राम)	7.0	5.3	0.9	3.3	2.9
कसा हुआ पनीर के साथ व्होलमील टोस्ट (70 ग्राम)	5.4	4.1	2.2	1.1	1.0
सेब (112 ग्राम)	2.7	2.0	0.4	0.8	लागू नहीं
मिश्रित नट (40 ग्राम)	3.2	2.4	1.1	0.7	लागू नहीं
ट्यूना मेयोनेज़ के साथ बेक्ड आलू (180 ग्राम)	6.5	4.9	0.7	2.7	लागू नहीं
ब्रोकोली (85 ग्राम)	2.6	2.0	0.3	0.9	लागू नहीं
टमाटर (85 ग्राम)	1.1	0.9	0.2	0.3	लागू नहीं
	33.6	25.3	7.7	10.6	6.1
	कुल एओएसी फाइबर (ग्राम में)	कुल एनएसपी फाइबर	अघुलनशील एनसीपी फाइबर	घुलनशील एनसीपी फाइबर	प्रतिरोधी स्टार्च
दूध के साथ दलिया (160 ग्राम)	1.7	1.3	0.5	0.8	0.3
दम किया हुआ रेवतचीनी (140 ग्राम)	5.0	3.8	2.2	0.7	लागू नहीं
संतरे का रस, चाय / कॉफी (50 मिलीलीटर)	0.1	0.1	0.1	0.1	लागू नहीं
मटर सूप (220 ग्राम)	4.7	3.6	0.5	1.1	2.8
आरएस समृद्ध रोटी (70 ग्राम)	9.2	6.9	0.4	0.6	3.9
केले (120 ग्राम)	1.8	1.3	0.1	2.0	7.4
मिश्रित सूखे फल (50 ग्राम)	1.5	1.1	0.2	0.6	लागू नहीं
ठंड आलू के सलाद के साथ ग्रील्ड चिकन (180 ग्राम)	6.5	4.9	0.7	2.7	9.0
मशरूम (40 ग्राम)	0.8	0.6	0.2	0.1	लागू नहीं
टमाटर (50 ग्राम)	1.1	0.9	0.2	0.3	लागू नहीं
आरएस समृद्ध रोटी (35 ग्राम)	4.6	3.4	0.2	0.3	1.8
	0.1	0.1	0.1	0.1	लागू नहीं
	37.0	27.9	5.5		25.2

एओएसी–एसोसिएशन ऑफ ऑफिसिएल केमिस्ट, एनसीपी–नॉन–स्टार्च पॉलीसेकेराइडस, नॉन सेलुलोज पोलीसेकेराइडस

ज्ञान पर आधारित समाज के लिए भविष्य में पुस्तकालयों का प्रबंध

श्रीमती अनुराधा भाटी
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान,जोधपुर

भारत में दो प्रकार के पुस्तकालय वर्तमान में उपलब्ध हैं वे हैं डिजीटल तथा प्रचलित प्रकार के। हमारी अधिकांश मानव शक्ति पुस्तकालयों का परम्परागत तरीके से प्रबंध करती है जहाँ वर्गीकरण, सूचीकरण, पुस्तक परिसंचरण व अन्य गतिविधियां अधिकांश हाथ से की जाती है। पुस्तकालय व सूचना विज्ञान को दोनों पहलुओं पर ध्यान देना पड़ता है अर्थात् मानव शक्ति से प्रचलित पुस्तकालय पद्धति पर व पूर्ण रूप से एक नेटवर्क पर आधारित पुस्तकालय व सूचना केन्द्र पर (शिक्षण के नए तरीको व सूचना तकनीकी ने पुस्तकालय व सूचना के व्यवसायियों को अपने व्यवसाय को ई–निहित विषय सूची के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया है) हाल ही में इस भारत देश के कुछ पुस्तकालय व विज्ञान के विभागों ने कुछ वैकल्पिक विषयों को भी पाठ्यक्रम के अन्दर सम्मिलित किया है।

पुस्तकालय व सूचना विज्ञान में परिवर्तन

संसार के इस बदलते स्वरूप में पुस्तकालय व सूचना विज्ञान की शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के विभाग को शिक्षण व प्रशिक्षण की प्रक्रिया में विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के प्रयास निम्न प्रकार से करना चाहिए :

1. अध्ययन काल में पुस्तकालय विज्ञान के उपयोक्ताओं की मनोविज्ञानिकता व उनकी दार्शनिकता को समाज के सम्बन्ध में चर्चा करनी चाहिए।
2. पुस्तकालयों में सूचना तकनीकी के उपयोग हेतु ई–संसाधनों, डिजीटल पुस्तकालयों के विभिन्न अवयवों, भविष्य के पुस्तकालयों का नेटवर्कींग पर दवाब डालना और पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के क्षेत्र में विकास के नवीनतम् कदमों की ओर अधिक ध्यान देने के लिए बल देना चाहिए।
3. पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के क्षेत्र में सेमिनार, अधिवेशन व वर्कशॉप में विद्यार्थियों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए आदि–आदि।

मामले

अब समय आ गया है कि पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के पाठ्यक्रमों मे ज्ञान पर आधारित समाज के संदर्भ में पुनर्विचार किया जाए जिससे विद्यार्थियों को निम्नलिखित बातें समझने के अवसर मिले :

1. अन्तर्राष्ट्रीय व भारत के संदर्भ में पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के महत्व को समझ सकें।
2. विभिन्न प्रकार के पुस्तकालयों के आपस के सम्बन्धों को समझ सकें।
3. अपने विषय विशेष के अर्न्तगत होने वाले नवीनतम विकास के बारें मे अवगत रह सकें।
4. शिक्षा की पूर्ण पद्धतियों में अध्यापकों के योगदान को समझने के लिए विभिन्न प्रकार के पुस्तकालयों के संगठन व प्रंबंध की जानकारी प्राप्त कर सकें।
5. अपने व्यक्तित्व, दीक्षा–संस्कार व नवीनता लाने की क्षमता के विकास के अवसरों को उपयोग में ला सकें, और
6. कम्प्यूटर के प्रयोग को प्रोत्साहित कर सकें व साथ ही साथ पढ़ाने व सीखाने की प्रक्रियाओं में सूचना संचार तकनीकि को अधिक उपयोग में लाने के लिए प्रोत्साहित कर सकें।

यूजीसी के पाठ्यक्रम में बदलाव की आवश्यकता

करीसीडप्पा कमेटी (2001) के द्वारा वर्तमान पाठ्यक्रम का मॉडल तैयार किया गया है जिसमें अत्यधिक प्रयास सूचना तकनीकी के अवयवों के पर्याप्त संख्या में सम्मिलित करने का किया है। इस रिर्पोट ने छः अनिवार्य व एक ऐच्छिक पाठ्यक्रमों के स्वतंत्र भाग प्रदान किए है। ये मोडूॅल्स निम्न प्रकार है।

पुस्तकालय व सूचना विज्ञान की स्थापना, ज्ञान का संगकठन, सूचना की प्रक्रिया व पुर्नः प्राप्ति, सूचना के स्त्रोत, उत्पाद व सेवाऐं, पुस्तकालय व सूचना केन्द्रो/संस्थाओं का प्रंबंध, सूचना तकनीकीः आधारभूत व प्रयोग में लाना, शोध के तरीके व सांख्यिकी तकनीकी व ऐच्छिक विषय।

राष्ट्रीय ज्ञान कमीशन

एनकेसी (2005) ने समाज के बदलते स्वरूप में पुस्तकालयाध्यक्ष के आपेक्षित योगदान पर बदल दिया है जिससे कि वे प्रभावशाली ढ़ंग से सीखने के वातावरण को विकसित करने के लिए शिक्षकों के साथ सूचना साक्षरता प्रोजेक्ट व ऑन लाइन के द्वारा अधिक घनिष्ठता बनाकर कार्य

कर सकें। भारत में इसके लिए पुस्तकालय व सूचना में विज्ञान में एक मजबूत प्रशिक्षण शास्त्र और सूचना संचार तकनीकी में कुशलता की आवश्यकता है जिससे कि वे डिजीटल अंतर्वस्तु (कन्टेंट) के प्रबंध की चुनौतियों के लिए स्वयं को तैयार रख सके, विशेषकर वैज्ञानिक व विद्ववतापूर्ण पत्रिकाओं के निहीत लेख व थेसिस, डिजटरटेशन, तकनीकी रिर्पोट्स, प्रोजेक्ट रिपोर्टस् आदि–आदि और अन्य सम्बन्धित क्षेत्र जो डिजीटल वस्तुओं के निर्माण व प्रबंध से सम्बन्धित है। यह यहाँ उल्लेखनीय है पुस्तकालयाध्यक्ष मेटाडाटा (केटलॉग) का निर्माण कर रहे है और उनके बचाव के कार्य सफलतापूर्वक कर रहे है। हालांकि, पुस्तकालयाध्यों को इस नए संदर्भ के कार्यों के करने के लिए अतिरिक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ेगी जो कि पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के पाठ्यक्रम का एक अनिवार्य विषय के पेपर के रूप में एक भाग बन जाना चाहिए जिससे कि एनकेसी द्वारा प्रस्तावित पुस्तकालय पर राष्ट्रीय मिशन प्राप्त किया जा सकें।

ज्ञान का कार्य करने वालों के रूप में पुस्तकालयाध्यक्ष

यह ध्यान में रखते हुए कि सूचना संचार तकनीकी से सम्बन्धित बढ़ती हुई तकनीकियों के कारण पुस्तकालय विज्ञान के व्यवसायि को बहुत बड़ा योगदान ज्ञान पर आधारित समाज के लिए करना पड़ेगा, जिनमें से कुछ निम्न कदम उठाने आवश्यक होंगे :

1. सूचना संचार तकनीकि का सहयोग प्रदान कर प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति को बढ़ावा देना।
2. डिजीटल युग में ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता बढ़ाना और उपयोक्ता समुदाय के लिए जीवन पर्यन्त ज्ञान प्राप्त करते रहना।
3. ज्ञान व सूचनाऐं प्राप्त करना और उन्हें चहूँ ओर वितरित करना।
4. पुस्तकालय के सूचना संचार तकनीकि और नेटवर्किंग की सहायता से ज्ञान व सूचनाऐं प्राप्त करने वालों को सेवाऐं प्रदान करना।
5. डाटाबेस और शोध व अध्ययन के लिए उपयोगी स्त्रोतों के रख–रखाव, उनका आवश्यकता पड़ने पर संस्था अथवा सोसायटी के भीतर ही हस्तान्तरण और अन्य तरीके द्वारा आपस में बाँटने की सेवाऐं प्रदान करना।
6. पुस्तकालय विज्ञान की शिक्षा के द्वारा ज्ञान प्रबंधन की कुशलता को बढ़ावा देने में और सामान्य प्रशिक्षण कार्यक्रम को न केवल स्वयं के पुस्तकालय में वरन् संगठन के बाहर भी बढ़ावा देकर सहयोग प्रदान करना। क्योंकि व्यवसायिओं की गुणवता व सेवाओं को सुधारने के लिए किसी भी संस्था के लिए प्रशिक्षण व विकास बहुत महत्वपूर्ण है।

पुस्तकालयाध्यक्षों व पुस्तकालय विज्ञान के अध्यापकों को प्रशिक्षण

किसी भी पद्धति की सभी गतिविधियों का मुख्य केन्द्र पुस्तकालय होता है यह मुख्य दर्शन हमेशा याद रखना चाहिए। पुस्तकालयाध्यक्ष केवल सूचनाओं को पाठको तक प्रेषित करने के कार्य तक ही सीमित नही रहे वरन् उन्हें विद्यार्थियों/सीखने वालों को ज्ञान के समाज की चुनौतियों का सामना करने के लिए पुनः जागृत करें। पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के व्यवसायिओं को अपने कुशलता हासिल विषय के ज्ञान को लगातार अद्यतन रखने की आवश्यकता होती है। महाविद्यालय व विश्वविद्यालय स्तर पर बड़ी संख्या में अध्यापकों को व्यवस्थित, क्रमानुसार व संगठित ओरियन्टेशन प्रोग्राम प्रदान करना आवश्यक है। इससे पुस्ताकलय व सूचना विज्ञान के व्यवसायिओं को अपने स्वयं के योगदान को सुपरवाइजर के रूप में सुधारने के लिए इस ज्ञान के समाज के युग में सक्षम बना देगें।

उपसंहार

इस प्रकार 21वीं शताब्दी के पुस्तकालयाध्यक्षों, स्वयं को नेटवर्क के वातावरण में कार्य करने के लिए योग्य बनाना पड़ेगा तथा नेतृत्व, सूचना को व्यवहार में लाने के लिए बढ़ावा, सूचना संचार को बढ़ावा देना, समस्याओं के निराकरण के लिए प्रबंधन करना, टीम का निर्णय व नतीजे निकालना आदि–आदि मे आवश्यक योग्यता, कुशलता हासिल करनी पड़ेगी। इसके साथ–साथ पुस्तकालयाध्यक्षों के व्यवसाय में प्रतियोगिता अन्य इसी प्रकार के व्यवसायों के साथ बढ़ गई है, विशेष कर सूचना तकनीकि के क्षेत्र में। अतः पुस्तकालय व्यवसायिओं/प्रोफेशनल्स् को सूचना के संसार में अस्तित्व में रहने के लिए सम्बन्धित कुशलताऐं व विशेषताऐं प्राप्त/हासिल करनी चाहिए और एक डिजीटल संस्कृति के अन्दर अस्तित्व में रहने के लिए पर्याप्त निपुणता हासिल/प्राप्त करनी चाहिए।

बहुउपयोगी प्रकृति प्रदत्त भारतीय धरोहर : हिमालय भोजपत्र वृक्ष रहस्यमयी छाल-शास्त्रोक्त दृष्टि

श्री बाबूलाल शर्मा
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

प्राचीन मान्यताओं एवं प्रमाणित सदग्रन्थों के अनुसार हिमालय पर्वत पुरातन काल से ही देव–भूमि एवं ऋषि, मुनि योगियों एवं मनीषियों आदि की ध्यान योग साधना, ईश्वरोपासना, जप, तप, श्रेष्ठ कर्म, यज्ञानुष्ठान तथा ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति की पवित्र रमणीय शान्त तपस्थली तथा विश्वविख्यात कैलाश पर्वत, मानसरोवर भगवान शिव की प्रिय तपस्थली रही है।

हिमालय पर्वत विशिष्ट प्रकार की प्रकृति प्रदत्त दुर्लभ औषधीय गुण जड़ी बूटी वनस्पति वन सम्पदा, जीवन रक्षक संजीवनियों, अन्य प्राकृतिक उत्पाद तथा विभिन्न प्रकार व जातियों के छोटे बड़े वृक्ष, झुन्डों, झाड़ियों, पौधों, पृथ्वी पर उगने वाले घास, पातों, तृण एवं नदियों, सरोवरों, झीलों, मनमोहक प्राकृतिक झरनों के आसपास जल के किनारे छोटे–छोटे पौधे इसके अतिरिक्त वहां के वनों में विविध प्रकार के तथा घाटियों में रंग बिरंगे पुष्पों तथा वृक्षों आदि पर लगे पत्र, पुष्प, फल, छालादि मानव जाति तथा अन्य प्राणी पशु, पक्षी, वन्य जीव जन्तु समुदाय के जीवन निर्वाह व सदुप्रयोग के लिए विख्यात रहा है।

हिन्दु सांस्कृतिक सदग्रंथ, पुरातनकालिक वेद, पुराण, उपनिषद महाभारत, वाल्मिकी रामायण, मनु स्मृति आदि, उस काल के रचित ऋषि प्रणीत आर्षग्रन्थ, स्मृति, दर्शन शास्त्र तथा आयुर्वेदशास्त्र तथा उपवेद व अन्य धर्मग्रथ आदि प्रमाण के रुप भारतीय संस्कृति का प्रतीक माने जाते हैं।

सृष्टि कर्ता परब्रह्म परमेश्वर–'जन्मादस्य यतः'।। (वेदान्त सूत्र 1/1/2) जिससे इस जगत का जन्म, स्थिति व प्रलय होता है, जिससे यह चराचर जगत उत्पन्न हुआ तथा जिसका ज्ञान, बल क्रिया स्वाभाविक है (श्वेताश्वर उपनिषद 6/8) जो चेतन अकाय, निराकार, सर्वसार्मथ्यवान, सबका प्रकाशन व आत्मा, जिसने पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा, अंतरिक्ष में तारा नक्षत्र गणों तथा लोक–लोकान्तरों तक को धारण कर रखा है (ऋग्वेद 10/190/3) वेद, सत्य, पवित्र विद्या जिससे उत्पन्न हुई, उसके मुख की 'शब्द ब्रह्म' वाणी है, समस्त जगत का नियामक जिसकी सत्ता सर्व व्यापक है, उसने अपनी ईक्षण शक्ति व सामर्थ्य से समस्त जीवों के उद्धार व कल्याण हेतु सर्वप्रथम 'स्थावर जगत' की मानव (जीव सृष्टि) रचना से पूर्व ही समस्त जीव सृष्टि (मानव, पशु, पक्षी, वन्यजीव आदि) के निर्वाह हेतु तथा सुखशान्ति पूर्वक जीने हेतु, प्रकाशमय जगत की रचना की, उस अनन्त विश्व रुप 'परब्रह्म परमेश्वर' को कोटि कोटि नमस्कार है।

उत्तर पश्चिम हिमालय के वन क्षेत्र में पाये जाने वाला, पुरातन काल से ही चिर परिचित प्रकृति प्रदत्त भारतीय धरोहर पर यह लेख वृक्ष से संबधित विशिष्ट जानकारियों तथा नवीन तथ्यों प्रमाणों सहित प्रस्तुत है।

1. **भारतीय धरोहर हिमालय भोज पत्र–वृक्ष सामान्य परिचय :** यह एक मध्यम श्रेणी आकार, 18 मीटर ऊँचाई का वृक्ष कुछ–कुछ असमतल सा, अधिकतम ऊँचाई वाले मुख्य हिमालय, भूटान पश्चिम से आगे कुर्रम घाटी–3300 मीटर ऊँचाई तक और कभी–कभी नीचे से कम ऊँचाई वाले 2200 मीटर वाली घाटी, हिमालय प्रदेश और कश्मीर में भी पाया जाता है।

2. **वृक्ष के प्रादेशिक भाषायी भेद अन्य पर्यायवाची एवं वनस्पतिक, नाम, कुलादि विवरण :** हिमालय प्रदेश : पाद, फाटक, शाक, टकपा, उत्तराखण्ड (जौनसार) : भुज, पंजाब : भुज, भुजपत्रा, बुर्ज, वुर्जल, फुर्ज, कश्मीर–भोज, बंगाल : भुज्जीपत्र, उत्तरपश्चिम हिमालय : भुर्जपत्र, शाक, पाद, हिन्दी : भोजपत्र, संस्कृत : भुर्जपत्र, भुर्ज चर्मी, बहुवल्कल।

वैज्ञानिक वनस्पतिक नाम व कुल : *बिटुला यूटिलिस* डी. डान–कुल–विटूलेसी (Scientific Botanical name and family: - *Betula utills* D.Don Family-Betulaceae) भारतवर्ष में इसकी दूसरी जाति : *बिटुला अलनौयाडिस* (*Betula alnoides*) भी पायी जाती है किन्तु 'भोजपत्र' के नाम से विख्यात होने से *बिटुला यूटिलिस* डी. डान को ही मुख्य माना जाता व मान्यता दी जाती है।

बताते चलें कि पुरातन काल से ही इस वृक्ष की छाल को – 'भोजपत्र' के नाम से ऋषि, मुनियों, योगियों आदि द्वारा जाना जाता रहा है क्योंकि उन्होंने इस भोजपत्र वृक्ष की खोज, करते व निरीक्षण कर उस वृक्ष से उखड़ती स्वयं निकलती छाल को एकत्र कर लाकर, काट–छाँट कर सँवारकर, अपने

निजी कार्यों में इसका प्रयोग व सदुपयोग किया, यह तथ्य प्रमाण जो शास्त्रों में भी उल्लेखित है झुठलाया नहीं जा सकता है। यह उन्हीं ऋषियों, मुनियों आदि की देन है, जिन्होने पर्वतों वनों आदि में प्रकृति के साहचर्य में रहकर योग अभ्यास, ईश्वरोपासना, जप–तप यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करते हुए ब्रहमज्ञान प्राप्त कर, परमधाम ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये।

3. **'भोज पत्र वृक्ष की छाल' एक सामान्य परिचय** : इस वृक्ष की छाल चिकनी, चमकदार लाल सफेद अथवा सफेद, समस्तर, आयताकार दीर्घकार लैन्टीसेल (*Lenticel Periderm*) विविध आकृतिनुमा, किन्तु प्रायः (Lenticular) ढ़ीले, व्यवस्थित कोशिकायें वाली होती है। बाहर की छाल स्पष्ट छोटे–छोटे पतले अनेक कागज जैसी परतें समस्तर, अनुप्रस्थ, स्वतः उखड़ने निकलने, छिलने पर, चौडी, लम्बी, गोल वाली रौल के रुप में होती है। इन परतों में लेन्टीसेल पैरीडर्म (Pinkish tinge) दिखाई देता है जो लम्बा पैबन्द जोड़ने वाला होता है। शास्त्रों के अनुसार इस "भोजपत्र" वृक्ष छाल बहुत मूल्यवान बताई जाती है तथा कहते हैं कि पुरातन काल में, जब लिखने के लिए कागज आदि साधन नहीं थे, तब इसका प्रयोग कागज की तरह लिखने के कार्य में किया जाता था। इसकी छाल का प्रयोग छाता पैक करने, हुक्कानली तथा पूर्वकाल में हिमालय पर्वतीय क्षेत्रों में मकान छत सीलिंग कार्य में प्रयोग में लिया जाता था। (साभार–ए मैनुअल ऑफ इंडियन टिम्बरस)।

4. **प्रसिद्ध आयुर्वेद निधण्टुकार 'भाव प्रकाश मिश्र' अपनी रचित पुस्तक में इस भारतीय 'भोज पत्र' वृक्ष के विषय में ऐसा लिखते है** : 'भोजपत्र' के पेड़ पर्वतीय प्रदेशों में अधिक ऊँचाई पर ही पाये जाते हैं। इसकी छाल को ही 'भोजपत्र' कहते हैं। छाल कागज की तरह यंत्रादि लिखने के लिए काम में लाया जाता है। इसको धूप भी लगने देते हैं। इससे ग्रह बाधा नष्ट होती है। इसके अतिरिक्त 'भोजपत्र' के गुण के विषय में ऐसा अपने पाठ में लिखते हैं।

'भुर्जपत्रः स्मृतो भुजश्चिर्मी बहुत वल्कलः।
भुर्जो भूतग्रह श्लेष्म् कर्ण रुक्पित रक्तजितः'।।47।।
कषायो राक्षसघ्नश्च मेदो विषहरः परः ।।48।।

भोज पत्र के गुण : भोजपत्र कषैला और भूत ग्रह, कफ, कर्णरोग, पित्त, रक्तविकार, राक्षस बाधा, भेद तथा विष विनाशक है। **47–48 (साभार–भावप्रकाश निधण्टु)**

5. **दिवंगत आचार्य शत्रुघ्न लाल शुक्ल अपनी रचित पुस्तक : 'अलौकिक शक्तियों की साधना – (यंत्र–मंत्र–तंत्र)'** में 'भोज पत्र' पर यंत्र रचना के विषय पर ऐसा लिखते है : शास्त्रों के अनुसार तांत्रिक कार्य प्रयोजन हेतु, सामान्यतः 'भोज पत्र' ही यंत्र रचना करने का आहार है जो समस्त आधारों की पूर्ति कर देता है। यंत्र में मंत्र को रुपाकार दिया जाता है। रेखाओं और बिंदुओं द्वारा विभिन्न प्रकार के चक्र, वृत कोण, त्रिभुज आदि अथवा अन्य आकृतियां बनाई जाती है। उनमें कुछ वर्ण शब्द मंत्र भी अंकित किये जाते है। इस रुपांकन को ही 'यंत्र' कहते हैं। यंत्र रचना के लिये विशेष प्रकार की सामग्री का विधान होता है। 'भोजपत्र' काष्ठ पीठ, विभिन्न वनस्पतियों के पत्ते, वस्तु, धातुपत्र पर यंत्रों की रचना की जाती है। इसी प्रकार उनके लेखनादि की रचना में भी कुछ विशेष वस्तुयें– जैसे अनार की लकड़ी, उदम्बर की काष्ठ, अर्क शाखा जैसी वस्तुयें प्रयोजन भेद से युक्त होती हैं। यंत्र लेखन में मुख्यतः अष्ठ–गंध की स्याही का प्रयोग किया जाता है।

बातातें चलें पूर्वकाल में भी 'भोजपत्र' का प्रयोग सिद्ध, योगी, संत, पीर महात्मा तथा तंत्र विद्या का दीर्घकालिक अनुभूति ज्ञान रखने वाले विद्वान तंत्राचार्य उस पर यंत्र की रचना कर लोक कल्याण की भावना व परोपकारहित को दृष्टिगत रखते हुये, भूत, प्रेत, पिशाच, भय, धबराहट, दुष्ट तामसिक आत्माओं के दुष्प्रभावादि को रोकने दूर करने हेतु ताबीज में बंद कर, यंत्र को अभिमन्त्रित करते हुये, रोगोपचार, कष्ट निवारण हेतु, पीड़ित व्यक्ति को शीघ्र स्वास्थ्य लाभ भी इससे प्राप्त हुआ। ऐसे चमत्कारिक प्रभावकारी घटनायें वृतांत चाहे अल्पकालिक या दीर्घकालिक हो सुनने, पढ़ने में आती रही हैं। इससे यह पता चलता है कि पूर्वकाल में तंत्र विद्या भी विकसित रही तथा शास्त्रों के अनुसार तंत्र शास्त्रों की भी सिद्ध योगियों तंत्र विज्ञानियों व आचार्यों द्वारा रचना हुई।

6. अर्थशास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि आदि की प्रथम सृष्टि में वेदों का ज्ञान (प्रकाश) पर ब्रह्म परमेश्वर ने चार ऋषियों जो ध्यानवस्थित थे तथा अत्यंत पवित्र आत्मा वाले थे, अन्य उनके सदृश्य नहीं थे। अग्नि ऋषि के आत्मा में 'ऋग्वेद' वायु ऋषि के आत्मा में 'यर्जुवेद', आदित्य ऋषि के आत्मा में 'सामवेद' और अड्गिरस ऋषि के आत्मा में 'अथर्ववेद' का ज्ञान (प्रकाश) कराया। वेद अपौरुषये है वैदिक भाषा संस्कृत में है। **(साभार सत्यार्थ प्रकाश)**।

तत्पश्चात् उन ऋषियों ने एक–एक वेद, प्रजापति ब्रह्मा को पढ़ाया सुनाया अर्थात उनकी आत्मा पवित्र सत्य विद्या का ज्ञान (प्रकाश) कराया। प्रजापति ब्रह्मा ने उन चारों ऋषियों से वेदों का ज्ञान प्राप्त कर अपने समस्त मानस पुत्रों को सुनाकर पढ़ा कर उनकी आत्मा में वेदों का सत्य विद्या का पवित्र ज्ञान प्राप्त कराया। इस प्रकार पवित्र सत्य विद्या वेद ईश्वर के मुख की शब्द अक्षर वाणी, एक से दूसरे को मौखिक रुप में सुन–सुनाकर ज्ञान कराते हुए श्रुति प्रथा आदिकाल के ऋषियों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति भाषा देव वाणी पवित्र सत्य विद्या वेद

के प्रचार प्रसार की परस्परा प्रथा लोकोपकार जनकल्याण ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त कराने हेतु चलती रही।

कहते है इस प्रकार शताब्दियां बीत गई, वे प्रथम चार ऋषि जिनके आत्मा में वेदों का प्रकाश (ज्ञान) परमेश्वर ने कराया, वे ऋषि, मुनि, योगि, तपस्वी जनादि, पवित्र आत्मा स्वच्छ, हृदय वाले तथा दृढ़ शिव संकल्प वृति वाले एवं सत्वगुणी बाहुल्य होने के कारण वेदों की सुनी हुई ऋचाओं को तथा उसके ज्ञान को कण्ठस्थ स्मरण व धारण कर लेते थे, क्योंकि वह ईश्वर के मुख की सत्य व पवित्र वाणी थी।

तत्पश्चात ज्यों ज्यों आध्यामिक शक्ति व आन्तरिक पवित्रता कम होने लगी तथा स्मरण व धारण शक्ति भी क्षीण होने लगी, तब स्मरण व धारणा शक्ति के क्षीण व शिथिलता के कारण, ग्रन्थ लेखन प्रणाली का, सुने हुये वेदों के ज्ञान को स्मृति के रुप में सुरक्षित बनाये रखने हेतु आविष्कार हुआ। वैदिक युग में वेदों का ज्ञान प्रचार व प्रसार श्रुति प्रथा दीर्घकाल तक जारी रही।

ऐसा भी कहा जाता है कि वैदिक काल के पश्चात्, बाद के महर्षियों ने शतपथ ब्राहमण ग्रंथादि, उपनिषद, वाल्मिकी रामायण, पुराणशास्त्र, वेदांत सूत्र, स्मृति शास्त्र, संहिता, न्यायसूत्र, सांख्यसूत्र, उपवेद, आयुर्वेद शास्त्र, निघन्टु, ज्योतिषशास्त्र, तंत्रशास्त्र, योगदर्शन, धर्मशास्त्र महाभारत तथा श्रीमद भगवद गीता व भागवत पुराण आदि अनेक ग्रंथों लोक कल्याण, मानव जाति के हित को दृष्टिगत रखते हुए, जो उन्होंने पर्वतों वनों में, उस युग में पर्णकुटी में रहते हुए, ध्यान योग साधना, श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म, ईश्वरोपासना, वेदाभ्यास श्रुत ज्ञान, चिन्तन मनन, स्मरण धारण द्वारा अर्जन किया, उसे उस युग काल की अभिव्यक्ति भाषा में प्रकृति प्रदत्त 'भोजपत्र' ताड़पत्र, ताम्रपत्रादि में अपने–अपने ग्रंथों में अकिंत, लिपिबद्ध कर, वे महर्षिजन महान आत्मा ब्रहमलोक को प्राप्त हुए।

उनका अमूल्य योगदान, उपरोक्त ग्रंथ लेखन कार्य, भारतीय संस्कृति साहित्य में सदैव के लिए चिरस्मरणीय व प्रेरणादायक रहेगा। यह ईश्वर प्रदत्त प्राप्त शाश्वत ज्ञान, उस युग के ऋषि मुनि, योगियों आदि की देन माना जाता है क्योंकि उस युग में मुद्रण कला प्रकाश में नहीं आई थी, तथा लेखन हेतु कागजादि साधन भी न ही थे। शास्त्र यह भी बताते हैं कि त्रेताकाल व महाभारतकाल में विश्वविद्यालय में महात्मा निदेहकेतु, आयुर्वेदाचार्य की निधण्टु और वनस्पति औषधियों के ऊपर बहुत सी पुस्तकें थी, उनका क्रियात्मक योग भी था। वह सर्वत्र 'भोजपत्रों' की आभा में निहित रहता था। कहते हैं उसकों मुहम्मद के मानने वालों ने अग्नि के मुख में प्रदान कर दिया और कुछ महावीर के मानने वालों द्वारा नष्ट हुआ। **(साभार वनस्पति से दीर्घ आयु)**

इसके अतिरिक्त शास्त्रों में ऐसा भी कहा गया कि कागज के अविष्कार से पूर्व, भारत में 'भोजपत्रों' पर अंकित करने व लिखने की कला का ज्ञान था। अतः लेख में प्रस्तुत महत्वपूर्ण विषय संबन्धित तथ्यों का अवलोकन करते हुए, इस पुरातन कालिक वृक्ष की महत्त्व को ध्यान में रखते हुए, भारतीय हिमालय– 'भोजपत्र' वृक्ष को 'राष्ट्रीय वृक्ष' का पद सूचक सम्मान घोषित किया जाये तथा इसकी छाल का दोहन वन अधिनियम के अर्न्तगत प्रतिबन्धित किया जाये।

हिन्दु विश्वकोष खण्ड–7 में नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी 1933, प्राचीनकालिक भारतीय संस्कृति व समाज पर विषय संबन्धित रोचक तथ्य, पुरातन काल के प्रमाण देते हुये उल्लेख किये गये हैं, उनमें ऐसा कहा गया है कि आज से लगभग 6 हजार पूर्व सिंधु घाटी सभ्यता अपनी चरम सीमा पर थी। इस प्रकार के अनेक प्रमाण मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त हुये। सिंधु सभ्यता का सुसंस्कृत समाज पंजाब से लेकर सिंधु और बिलोचिस्तान तक फैला हुआ था। इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में अनेक पुस्तकालय थे। सिंधु सभ्यता के पतन के पश्चात् लगभग 3000 ई. पूर्व भारत आर्यों का आगमन हुआ और इन्होने ब्राह्मी लिपि का आविष्कार किया।

भोज पत्र एवं ताड़ पत्रों पर ग्रंथ लिखे जाते थे, परन्तु शिष्यों के लिए उपयोग समिति ही था। गुरुओं के पास इस प्रकार के हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह रहता था, जिसे हम निजी पुस्तकालय कह सकते हैं।

वैदिक काल में वेदों, इतिहासों, पुराणों व्याकरण और ज्ञान के अनेकानेक शाखाओं से संबन्धित ग्रन्थों से लिपिबद्ध किया गया। इस काल में अनेक विषय गुरुकुलों में पढ़ाये जाते थे, और उनसे संबंधित अनेक ग्रंथ पुस्तकालयों में रहते थे।

बौद्ध काल में तक्षशिला और नालन्द जैसे शिक्षा केन्द्रों का विकास हुआ, जिनके साथ–साथ बहुत अच्छे–अच्छे पुस्तकालय थे। तक्षशिला के पुस्तकालय में, वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, चित्रकला, कृषि, विज्ञान, पशु पालनादि अनेक विषयों के ग्रंथ संग्रहित थे। ईसा. से लगभग 500 वर्ष पूर्व नालन्दा के विशाल पुस्तकालय का वर्णन मिलता है।

अनेकों विदेशी विद्वानों चीनी यात्री फाहीयान ह्वेनसांग और इत्सिह ने अपने–अपने यात्रा वृतान्तों में नालन्दा पुस्तकालय का वर्णन किया है। ये अपने साथ अनेक हस्तलिखित ग्रंथ भी ले गये थे। इसके अतिरिक्त अनेकों विदेशी विद्वान नालन्दा के पुस्तकालय में अध्ययन करने के लिए आये।

शस्त्रकार ऐसा भी कहते हैं बुद्ध युग से बहुत पूर्व, भारत देश में लिखने का प्रचार था।

'ऋग्वेद' की कुछ ऋचायें 1500 ई. पूर्व तक लिखी जा चुकी थी 1000 ई. पूर्व तक को यह प्रायः पूर्णयः लिखी जा चुकी थी। यह बहुत सम्भवः है कि आर्द, जलवायु तथा नदियों की बाढ़ आदि के कारण पुरानी लिखित सामग्री जो 'भोज पत्रादि' पर रही हो, सड़ गल गई हो **(साभार सौजन्य से प्राप्त भाषा विज्ञान कोष, डॉ. भोलानाथ तिवारी ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी–1, 25 जनवरी 1964 प्रथम संस्करण, माघ सम्वत् 2020)।।**

बताते चलें आयुर्वेद का प्राचीन ग्रंथ **'काश्यप'** संहिता है। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, भेड़ सहिता, भारद्वाज संहिता, ये सभी आयुर्वेद संहितायें ग्रन्थों में प्राचीन हैं। इसके अतिरिक्त च्यवन मुनि ने, जीवदान नामक ग्रंथ, विदेह योगी जनक ने वेद्य संदेह भजन नामक ग्रंथ, की रचना की। दिवोदास ने चिकित्सा दर्पण तथा अश्विनी कुमारों ने चिकित्सा सार तंत्र की रचना की। ये सभी वेदांग विद्या में पारंगत थे **(साभार आरोग्य अंक–75 वें वर्ष के कल्याण विशेषांक–गीता प्रेस, गोरखपुर)।**

इसके अतिरिक्त पुरातनकाल में ऋषि मुनियों द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ :

योग वशिष्ठ, भृगु संहिता, वाल्मीकी रामायण, मनुस्मृति, अंगिरा स्मृति शतपथ ब्राह्मण, शुक्ल यजुर्वेद, याज्ञवलक्य स्मृति तथा अन्यान्य अनेक सदग्रंथ।

प्रस्तुत लेख में विषय संबंधित महत्वपूर्ण तथ्य व जानकारियों संदर्भों सहित प्रमाणित सदग्रंथों का मुख्य–मुख्य संकलन, लोकहित में ज्ञान कराने हेतु लेखक का एक प्रयास है तथा ग्रन्थकारों के प्रति आभार प्रकट करता है।

कांपती लौ, ये स्याही, ये धुआं, ये काजल
उम्र सब अपनी इन्हें गीत बनाने में कटी

कौन समझे मेरी आंखों की नमी का मतलब
जिंदगी गीत थी पर जिल्द बंधाने में कटी

– नीरज

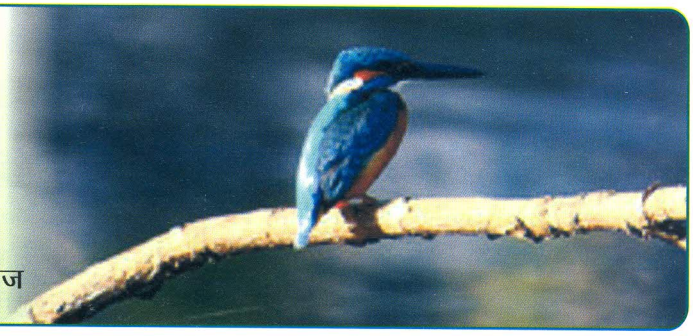

है प्यार से उसकी कोई पहचान नहीं
जाना है किधर उसको कोई ज्ञान नहीं

तुम ढूंढ रहे हो किसे इस बस्ती में
इस दौर का इंसान है इंसान नहीं

– नीरज

सहजन के हानिकारक कीट एवं उनका प्रबन्धन

डॉ. अरविन्द कुमार एवं डॉ. संजय सिंह
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

प्रस्तावना

सहजन (*मोरिंगा ओलिफेरा*) एक बहुपयोगी बहुवर्षीय पौधा है जिसकी जड़ से लेकर पत्ती फूल एवं फल मानव उपयोग में लाया जाता है। यह भारत में विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसेः पश्चिमी बंगाल में सहजन, सोजना, सुजाना; गुजरात में सुरवागो, सहजन; ओडीशा में मुनिघा; मध्य प्रदेश में मूलका एवं सैहन आदि नाम से जानते है। सहजन का अँग्रेजी नाम ड्रम स्टीक है। सहजन में मानव जीवन के लिए विभिन्न प्रकार के 400 से भी अधिक पोषक पदार्थ, विटामिन, खनिज पदार्थ आदि उपलब्ध होते है साथ ही बहुत सारे ऐसे पदार्थ भी पाये जाते है जोकि विभिन्न बीमारियों के लिए औषधि में उपयोग किए जाते है। सहजन के फलों का अधिक सेवन शरीर में कैंसर जैसी बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। भारत में सहजन की पत्ती, फूल एवं फल सब्जी के रूप में प्रयोग होता है साथ ही इसकी पत्तियां चाय के रूप में उपयोग किया जाता है। देखा गया है कि इसके पेड़ की छाल, पत्ती, फूल एवं बीजो से तेल प्राप्त किया जाता है जिसका उपयोग विभिन्न रोगो के उपचार में किया जाता है। इसके अलावा इसकी पत्तियों में पादप वृद्धि कारक तत्व भी पाये जाते है। सभी महत्वपूर्ण गुणो से भरपूर सहजन के वृक्षों में कई सारे हानिकारक कीटों का प्रकोप होता है जिनका वर्णन एवं प्रबंधन निम्नतः है–

पत्ती की सूँडी (*पर्सिकेलिया रिसिनी*)

इसका वयस्क कीट भूरे रंग का पतंगा होता है जिसकी पिछले पंख गुलाबी रंग के जिस पर काले गाढ़े धब्बे पाये जाते है। इसकी सूंडिया काले रंग की जिसका मुख भूरे रंग का होता है। इसकी इल्लिया मुख्य रूप से सहजन की पट्टियों को खाकर नष्ट करती है अधिक संख्या में आक्रमण होने पर पेड़ो की सम्पूर्ण पत्तियां खाकर नष्ट कर देती है। जिससे पेड़ ढूंठ की तरह दिखता है।

प्रबन्धन :

- नीम किखली का अर्क की 2 मिली. मात्रा 1 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।
- इसके अलावा नीम का तेल की 15 मिली. मात्र को 5 ग्राम डिटर्जेंट में मिश्रित कर/12 लीटर पानी में मिलकर छिड़काव करना चाहिए।
- नियंत्रण न होने की दशा में मोनोक्रोटोफोस की 0.04% का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।
- इसके अलावा प्रोफेनोफोस की 0.05% के पानी के घोल का भी प्रयोग किया जा सकता है।

पत्ती खाने वाली सूँडी (*नूरदा ब्लीटेलिस*)

यह कीट गहरे भूरे रंग का होता है जिसके पंखों का अंदर का भाग सफ़ेद एवं बाहरी किनारा गहरा भूरा होता है। यह कीट क्रीम रंग के अंडे समूह में पत्तियों पर देता है। इसका लार्वा पत्तियों को खाकर नष्ट कर देता है तथा पत्तियाँ पारदर्शी हो जाती है। इस कीट के अधिक संख्या में आक्रमण से पौधे की बढ़वार रुक जाती है।

प्रबन्धन :

- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करे जिससे मिट्टी में कीट की अवस्था नष्ट हो जाए।
- लार्वा को पत्तियों से इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए
- खेत में प्रकाश प्रपंच लगाकर वयष्क कीट को पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- अंततः कर्बरील 50 WP की 1 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
- मैलाथिओन 50 EC की 2 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

रोमिल सूँडी (*यूप्टेरोट मोलिफेरा*)

इसका व्यस्क कीट बड़े आकार का हल्का पीला भूरा होता है। इसका लार्वा भूरे रंग का होता है जिसके शरीर पर घने रोएँ पाये जाते है। व्यस्क मादा कीट नयी शाखाओं तथा पत्तियों पर समूह में अंडे देते है। लम्बे मटमैले भूरे रंग के लार्वा रात के समय समूह में पट्टियों एवं पेड़ की छाल को खाते है। जिससे पत्तियाँ नष्ट हो जाती है तथा शाखायें सूखने लगती है।

प्रबन्धन :

- कीट द्वारा समूह में दिये गए अंडों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए
- वर्षा के बाद प्रकाश प्रपंच लगाकर व्यस्क कीट को पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए
- शाखाओं पर समूह में सूंड़ियों को नष्ट कर देना चाहिए।
- कीटनाशक दवा प्रोफेनोफोस 50 EC की 0.05% पानी का घोल का छिड़काव करना चाहिए।
- कर्बरील की 0.02% के पानी का घोल द्वारा भी नियंत्रित किया जा सकता है।

फल मक्खी (*गिटोना डिस्टिग्मा*)

यह डिप्टेरा कुल का कीट है। इसका वयस्क कीट घरेलू मक्खी की तरह ही होता है परंतु इसका रंग पीलापन लिए हुए होता है तथा इसकी आंखे लाल रंग की होती है। यह मक्खी सिगार के प्रकार के अंडे देती है। मादा कीट मुख्यतः अपने अंडे नए बन रहे फलों के धारियों में देती है जिससे क्रीम के रंग का मैगट निकलता है जो फलो के अंदर घुस जाता है। इस कीट की सूंडिया मुख्य रूप से फलो को हानि पहुचाती है। इसकी सूंडिया छेद करके फलो के अंदर घुस जाती है तथा अंदर ही अंदर फलो को खाकर नष्ट करती रहती है। इसके प्रकोप के परिणाम स्वरूप फलो से लसलसा पदार्थ निकालने लगता है तथा बाद में फलिया फटने लग जाती है। अंततः फल जमीन पर गिरने लगते है।

प्रबन्धन :

- सभी प्रभावित एवं गिरे हुए फलों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए।
- पेड़ों के किनारे की मिट्टी को समय–समय पर खोदते रहना चाहिए मुख्यतः गर्मियों में जिससे कीट की भूमि में छिपी अवस्था को नष्ट किया जा सके।
- मक्खियों को सिट्रोनेल्ल तेल, यूकेलिप्टस के तेल एवं गुड के मिश्रण द्वारा आकार्षित कर नष्ट कर देना चाहिए।
- पेड़ों के किनारे एवं खेत में फोरेट 10G की 25 किलो मात्र प्रति हेक्टर की दर मिट्टी मे मिला कर प्रयोग करना चाहिए।
- फल बबाने के समय नीम युक्त कीटनाशक का (निंबीसिडीन) की 3 मिली. मात्र प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

तना भेदक (*कोपटोप्स एडिफिकटोर*)

इसके वयस्क कीट शाखाओ एवं तनो पर एक–एक अथवा समूह में अंडे देते है तथा इसमे से सफ़ेद लार्वा निकाल कर शाखाओं में छेद करके घुस जाता है। लार्वा कीट अंदर ही अंदर शाखा को खाता रहता है जिससे प्रभावित शाखा मर जाती है। अधिक आक्रमण होने पर सम्पूर्ण पेड़ सूख जाता है।

प्रबन्धन :

- प्रभावित शाखा को काटकर नष्ट कर देना चाहिए
- कीट द्वारा बनाए गए छेद में लोहे की तार डाक कर अंदर के कीट को नष्ट कर देना चाहिए
- कीट द्वारा बनाए गए छेद में डायक्लोरोवॉस कीट नाशक का 0.03% घोल डालकर बंद रुई अथवा गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए

फूल भेदक (*नूरदा मोरिंगी*)

यह एक गहरा भूरे रंग का पतंगा होता है जिसकी पिछली पंख की किनारियाँ सफेदी रंग की होती है, जो क्रीम रंग के अंडे सहजन के फूलो पर एक–एक कर देता है। इसके लार्वा मटमैले भूरे रंग के होते है। इस लार्वा के किनारे गहरी धारियाँ पायी जाती है एवं मुख काले रंग का होता है। इसके लार्वा कीट फूलों की कालिका में छेद करके अंदर से खाता है जिससे फूल गिर जाता है।

प्रबंधन :

- खेत में प्रकाश प्रपंच लगाकर वयस्क कीट को पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- नीम की खली के अर्क की 2 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी मे मिलकर छिड़काव करना चाहिए।

छाल खाने वाली गिड़ार (*इनदरबेला टेट्रोनिस*)

इसका वयस्क कीट भूरे रंग का होता है जिसके अगली पंखों पर धब्बे तथा पाये जाते है तथा पिछली पंख पर सफ़ेद धारियाँ होती है। इसका लार्वा मोटा लंबा मटमैले रंग का होता है। इस कीट की लार्वा अवस्था ही हानिकारक होती है जो पेड़ो की छाल को खाकर टेढ़ी–मेढ़ी नकियान बनाता है तथा छाल के कटे हुए टुकड़े तथा अपने मल पदार्थ को रेशमी जाले में लपेटकर ढकता रहता है। यह लार्वा पेड़ की शाखाओं में छेद करके अंदर भी घुस जाता है जिससे शाखाओं मर जाती है।

प्रबन्धन :

- पेड़ों पर लंगे हुए छाल के कटे हुए टुकड़े तथा मल पदार्थ के जाले को हटा देना चाहिए।
- कीट द्वारा बनाए हुए छेद में कीटनाशक, नीम का तेल, डीजल इत्यादि डाल कर मिट्टी आदि से बंद कर देना चाहिए।

माहू (*एफिस क्रक्सिवोरा*)

यह एक नरम शरीर वाला भूरे रंग का कीट है जिसके मुखांग चुभोने एवं चूसने वाले होते है। यह कीट समूह में नरम शाखाओं एवं पत्तियों का रस चूसता है जिससे पट्टीय एवं शाखाओं पीली पड़ने लगती है।

प्रबन्धन :

- पौधे की प्रभावित शाखा या भाग को नष्ट कर देना चाहिए।
- नीम की खली के अर्क की 2 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी मे मिलकर छिड़काव करना चाहिए।
- क्लोरपाइरीफोस की 0.03 प्रतिशत मात्रा का घोल का छिड़काव करना चाहिए।

राजस्थान की जीवन रेखा खेजड़ी पर किये जा रहे जैव प्रौद्यौगिकी शोध कार्य

सुश्री शालिनी स्वरुपा, डॉ. तरुण कांत एवं
डॉ. टी. एस. राठौड़
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

खेजड़ी राजस्थान राज्य तथा मरूभूमि क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए एक वरदान है। इससे मिलने वाले उत्पाद न केवल भोजन में (हरी तथा सूखी फलियाँ) बल्कि मवेशियों को खिलाने में (हरी तथा सूखी पत्तियाँ) तथा ईधन (लकड़ी) के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके अलावा ये मिट्टी की उर्वरा शक्ति को भी बढाती है तथा अकाल व सूखे के समय में जानवरों को छाया प्रदान करती है। इसके फल, फूल, पत्तियाँ तथा तने से विभिन्न प्रकार की बिमारियों (जैसे– अस्थमा, डायाबिटिज, डिसेन्ट्री, लेप्रोसी, ल्यूकोडरमा) को दूर करने के लिए दवाईयाँ बनाई जाती है। ये नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर उसे मृदा में संचित करता है। इन्हीं गुणों के कारण धान के खेतो में खेजड़ी की उपस्थिति इसके उपज को बढ़ाती है। तथापि इतनी गुणवत्ता वाली प्रजाति होने के बावजूद भी खेजड़ी के पेड़ों की संख्या में हो रही निरंतर कमी चिन्ता का विषय है। बड़े खेद की बात है कि क्षेत्रीय निवासी अपने निजी स्वार्थ को पूरा करने के लिए लगातार इसकी कटाई कर रहे है जिससे कुछ जिलो मे इसकी संख्या बिल्कुल ही कम हो गयी है।

विवरण – खेजड़ी (*प्रोसोपिस सिनेरेरिया*) फेबेसी कुल का छोटी से मध्यम ऊँचाई वाला एक झाड़ीदार वृक्ष है, इसकी शाखाएँ शंक्वाकार काटों युक्त तथा पर्ण गहरे हरे रंग के होते है। इनकी पत्तियों में शिराओं के जाल जैसी संरचना नहीं दिखती। इसका तना सीधा छाल हल्की मोटी खुरदरी तथा कहीं अधिक उभरी तो कही कम उभरी हुई होती है, जो बाहर से हल्के भूरे रंग की दिखती है। इन पेड़ों मे फरवरी से मार्च के बीच नई पत्तियाँ लगती है। इसके फूल आकार में छोटे और पीले या हल्के सफेद रंग के होते है जो मार्च से मई महीनों में नई पत्तियों के आने के बाद लगते है। इसमें हरें रंग की फलियाँ लगती है जिसको सांगरी कहते है। इसकी पत्तियों को दूध देने वाले मवेशियों को भोजन के रूप में खिलाने से दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है। इसकी जड़े रेशेदार लगभग 35 कि. मी. (115 फिट) लम्बी तथा काफी विकसित होती है जिससे इसे अधिक गहराई से भी पानी अवशोषित करने में मदद मिलती है। फेबेसी कुल के दूसरी प्रजाति की तरह ही इसकी जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले सहजीवी होते है जो नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते है।

आवास – खेजड़ी मरूस्थलीय क्षेत्रों में लगभग उन सभी स्थानों पर पाया जा सकता है जहाँ वार्षिक वर्षा 100 से 600 मि.मी. (3.9 से 24 इंच) तक होती है। वहाँ के पेड़ों मे काफी विभिन्नता पाई जाती हैं। यह कम से कम 9 जव 16° सी (48 से 61° एफ.) तथा अधिक से अधिक 40 जव 46° सी (104 से 115°एफ.) तापमान में आसानी से वृद्धि कर सकता है। इसे विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है पर रेत व क्ले (चिकनी) युक्त बलुई मिट्टी में इसकी वृद्धि अच्छी होती है।

भारतवर्ष में यह राजस्थान के उत्तरपश्चिमी प्रदेशों जैसे– नागौर, सिकर, झुन्झुनु और चुरू में मुख्य रूप से पाया जाता है। इसके अलावा यह गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्रप्रेदश, कर्नाटक, हरियाणा और पश्चिमी उत्तरप्रेदश में भी पाया जाता है। भारतवर्ष के अलावा यह ओमान, सऊदी अरब, अफगानिस्तान, ईरान और पाकिस्तान मे भी पाया जाता है।

उपयोगिता – खेजड़ी से प्राप्त लकड़ियों का उपयोग दरवाजे खिड़कियाँ बनाने में, पानी की पाइप बनाने में, कृषि में उपयोग में आने वाली सामग्री बनाने में जैसे–कुल्हाड़ी के हत्थे, बैलगाड़ी के पहिये आदि बनाने में किया जा सकता है। इसकी पत्तियों तथा फलियों से सब्जी तथा अचार बनाया जाता है। इसकी फलियों को उबालकर सुखाया जाता है एवं वर्ष भर के लिए संग्रह करके रखा जाता है एवं इसका उपयोग वर्ष पर्यंत सब्जी बनाने में किया जाता है। इसकी लकड़ियों को जलाने पर ये काफी मात्रा में ऊष्मा प्रदान करती है इसीलिए इसे एक अच्छा ईधन माना जाता है। इसकी छंगाई की हुई टहनियों का उपयोग खेतों की मेड़वंदी में किया जाता है। खेजड़ी के एक पूर्ण विकसित पेड़ का मुख्य तना को छोड़कर बाकी सभी शाखाओ की छंगाई करने पर लगभग 60 किग्रा तक हरा चारा मिलता है।

औषधीय उपयोगः खेजड़ी के प्रत्येक भाग– छाल, पत्तियाँ एवं फूल का उपयोग दवाई बनाने के लिए भी किया जाता है। इसके फूल को चीनी में मिलाकर अच्छी तरह पीसकर खिलाने से गर्भपात से बचाया जा सकता है। मई तथा जून के महीनों में इस पेड़ की छाल से गोंद का स्राव होता है। इसकी सूखी छाल स्वाद में कड़वी होती है, जिससे कुष्टरोग, दस्त, अस्थमा, ल्यूकीमिया आदि बीमारियों के निदान हेतु दवाईयाँ बनाई जाती है।

- इसकी पत्तियो का धुँआ नेत्र विकारों को दूर करने के लिए अच्छा होता है।
- इसकी छाल से बनी दवाइयों का उपयोग गठिया, कफ, जुखाम तथा बिच्छू व साँप के काटने से बचने के लिए भी किया जाता है।
- तंत्रिका विकार, डायरिया, बवासीर, घावों को भरने मे व त्वचा के अन्य बीमारियों के निदान मे भी इन दवाइयों का उपयोग करते है।
- इस पेड़ से स्त्रावित गोंद पौष्टिक तथा स्वाद मे अच्छे होती है इसलिए इसे गर्भवती महिलाओं को प्रसव के समय खिलाया जाता है।

जैव प्रौद्योगिकी शोध कार्य : खेजड़ी को थार मरुस्थल की जीवन रेखा भी कहा जाता है। इन पेड़ों की लकड़ी के अत्यधिक उपयोग के कारण इनकी संख्या लगातार घटती जा रही है। इस वर्तमान अध्ययन में इस संकटग्रस्त प्रजाति के सुधार एवं संरक्षण हेतु सूक्ष्म प्रवर्धन तकनीकों को विकसित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार सूक्ष्म प्रवर्धन की कलिका–शाखा प्रचुरोद्भवन (एक्सेलरी शूट प्रोलिफेरेशन) द्वारा *प्रोसोपीस सिनेरेरिया* (खेजड़ी) पादपों का उत्पादन किया गया (चित्र 1–4)। इस परिपक्व पादप की तरुण शाखा के नोडल भाग को कतोतक (एक्सप्लांट) के रूप मे लिया गया जिन्हे विभिन्न सांद्रता वाले पादप हार्मोन युक्त मुराशिग एवं स्कुग माध्यम पर नोडल भाग को संरोपित किया गया। 3 से 4 सप्ताह पश्चात उच्च सांद्रता युक्त साइटोकाइनीन पादप हार्मोन वाले माध्यम पर कक्षीय कलिका का निर्माण हुआ। इन कलिकाओं की लम्बाई 2 से 3 सेंटीमीटर हो जाने के पश्चात इन्हे गुणन एवं दीर्घीकरण के लिए दूसरे माध्यम मे संरोपित कर दिया जाता है, और इनसे प्राप्त सूक्ष्म शाखा को जड़ निर्माण के लिए विभिन्न सांद्रता वाले पादप हार्मोन आक्सिन युक्त अर्ध सांद्रता वाले मुराशिग एवं स्कुग माध्यम पर रखा गया। सफलता पूर्वक जड़ निर्माण होने के पश्चात इन्हे वातावरण के अनुरूप दृढ़ीकृत करने हेतु परीक्षण जारी है। इस प्रकार से निर्मित पूर्ण पादपों का तदुपरान्त प्रायोगिक क्षेत्र मे परीक्षण जारी है।

निष्कर्ष – अतः खेजड़ी मरूस्थलीय मवेशियो के लिए न केवल छायादार वृक्ष है बल्कि इसकी पत्तियाँ, फल, फूल, छाल और शाखाएँ भी आर्युवेद के क्षेत्र में दवाईयाँ बनाने के लिए बहुत उपयोगी है। अतः मरूस्थलीय मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने

मृदा क्षरण को रोकने तथा क्षेत्रीय निवासी को अधिकाधिक लाभ पहुँचाने या उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए इस वृक्ष का भारी मात्रा में सुखाग्रस्त क्षेत्रों में तथा कृषि योग्य भूमि में लगाना आवश्यक है। इससे न केवल कृषि योग्य भूमि की उर्वरता बढ़ेगी बल्कि उन्हें भरपूर मात्रा में मवेशियों को खिलाने को चारा भी मिल जायेगा।

आयुर्वेद से लेकर मवेशियों को चारा खिलाने तक खेजड़ी के समग्र (पत्ते फल, फूल, छाल) भागों की उपयोगिता को देखते हुए वैज्ञानिकों का मत है कि शुष्क क्षेत्र में इसका वृहत स्तर पर वृक्षारोपण कर इससे प्राप्त उत्पादो का विक्रय कर राजस्थान की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है। इस क्षेत्र में अग्रिम कदम उठाते हुए स्थानीय निवासियों को अधिकाधिक लाभ पहुँचाने के लिए शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर ने एक परियोजना आरम्भ की है, जिसके तहत खेजड़ी पेड़ के हर भाग पर भिन्न–भिन्न प्रभागों मे अनुसंधान जारी है। परन्तु अनुसंधान को वृहत रूप देने तथा क्षेत्र को आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए इस क्षेत्र में कृषकों तथा क्षेत्रीय निवासियों का सहयोग भी अत्यन्त आवश्यक है, ताकि लोग इसकी उपयोगिता को समझें और इसका वृहत स्तर पर रोपण कर थार मरुस्थल को हरा–भरा बना सकें।

कुछ मुख्य पादपों का परिचय एवं उनका औषधीय उपयोग

सुश्री ज्योति काण्डपाल एवं डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

दारुहरिद्रा :

वर्णीकरण –

जगत	–	पादप
वर्ग	–	रेनन कुलेल्स
कुल	–	बर्बेरिडिएसी
वंश	–	बरबेरिस
जाति	–	एरिस्टाटा
वैज्ञानिक नाम	–	*Berberis aristata* (*बर्बेरिस एरिस्टेटा*)

परिचय (Description) :

दारूहरिद्रा को दारूहल्दी, दार्वी क्योंकि इसका तना एवं जड़ पीले रंग की होती है। गढ़वाली में इसको किंगोर के नाम से जाना जाता है। इसको Indian Barberry भी कहते है।

दारूहल्दी का कंटकित गुल्म 6–18 फीट ऊँचा एवं हिमालय प्रदेशों में 6–10,000 फीट तक की ऊँचाई पर मिलता है। इसके पत्र विशेष पहचान आयताकार दूर–दूर स्थित कंटकीय दांतों युक्त 1–3 "लम्बे होते हैं। पुष्पमज्जरी 2–3" लम्बी जिसमे पीले पुष्प लगते हैं। फल अण्डाकार, नीले बैंगनी रंग के चमकीले होते हैं। इसकी लकड़ी गहरे पीले रंग की स्वल्पगन्धि होती है। उबलने के बाद भी काष्ठ का पीलापन बना रहता है। इसमें बरविराइन (Berberine) नामक क्षाराभ होता है।

औषधीय प्रयोग (Medicinal Effects) :

- दारूहरिद्र का प्रयोग त्वचा विकारों एलेर्जी (Allergy) आदि में लेप करने से तुरन्त आराम मिलता है।
- अजीर्ण, उदर आदि रोगों में इसके क्वाथ का सेवन करते हैं।
- कामला (Jaundice) में अत्यन्त चमत्कारिक एवं लाभकारी औषध है। आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसार दारूहरिद्रा को इसी कर्म के कारण, यकृत–प्लीहा पोषक द्रव्यों के समुह में रखा गया है।
- जीर्णज्वर, विषमज्वर (मलेरिया) में ज्वर रोधक रूप में विशेष लाभकारी है।
- दारूहरिद्रा के रसक्रिया–पाक से एक घनसत्व प्राप्त होता है जिसको रसाज्जन कहते हैं। इस रसाज्जन को पारम्परिक तौर पर बहुतायत से आंखों की पलकों पर नेत्रभिष्मन्द (Conjuctivitis) आदि रोगों में लगाने से लाभ मिलता है।
- कर्णशूल, कान पकने में इस रसाज्जन को कान में डालने से फायदा होता है।
- इसका क्वाथ स्त्रियों में श्वेतप्रदर एवं रक्तप्रदर में विशेष लाभकारी है।
- शोथवेदनायुक्त स्थानों पर लेप से तुरन्त सुजन में फायदा होता है।

तिक्ता दारूहरिद्रा स्यादूक्षोष्णा व्रणमेहनुत्।
कर्णनेत्रमुखेदभूतांरूजं कण्डूं च नाशयेन्।

घृतकुमारी

वर्णीकरण :

जगत	–	पादप
वर्ग	–	एसपरगेल्स
कुल	–	लिलिऐसी
वंश	–	एलोय
जाति	–	वैरा
वैज्ञानिक नाम	–	(*एलो वैरा*) *Aloe vera*

परिचय (Description) :

घृतकुमारी लगभग सम्पूर्ण भारत में प्राप्त होती है। यह व्यापक रूप से सजावटी पौधें के रूप में घरों में देखने को मिलता है। इसको ग्वारापाठा, घीकुवाँर, कुमारी आदि नामों से भी जाना जाता है। इसका 1–2 फुट ऊँचा क्षुप होता है। इसमें जड़ों के ऊपर से ही चारो तरफ मोटे–मोटे 15" लम्बे, 4" चौडे, 3/4" मोटे मांसल गुदे से परिपूर्ण पत्तें होते हैं, जिनके किनारों पर छोटे–छोटे कांटे होते है। पत्तियों के अन्दर घी सृदश द्रव्य होता है जिसकी कुमारी सार कहते है।

आजकल तो इसकी खेती बहुतायत, बल्कि घरों में गमलों में भी औषधीय प्रयोग के लिए लगाते हैं।

औषधीय प्रयोग (Medicinal Effects) :

- औषधीय प्रयोग के लिए घृतकुमारी की पत्तियों के सार का ही प्रयोग करते हैं। घृतकुमारी में अलोयेन (Aloin) नामक ग्लुकोसाइड समूह होता है।

- मुख्यतः घृतकुमारी की पत्तियों से प्राप्त जैली को विभिन्न प्रकार के त्वचा विकारों में प्रयोग सर्वविदित है। सामान्यतः त्वचा के लिए अच्छी पोषक है।
- जले या कटे के निशानों में नियमित प्रयोग से काफी लाभ होता है। आयुर्वेदानुसार घृतकुमारी केवल त्वचा विकारों या मुँह पर लगाने वाली क्रीमों के अलावा कई विभिन्न रोगों में अत्यन्त लाभकारी है।
- अजीर्ण, उदर रोग, लीवर रोग आदि में घृतकुमारी का पत्रस्वरस काफी लाभप्रद है।
- गठिया के रोगी के लिए नियमित सेवन से दर्द में काफी आराम मिलता है।
- जोड़ों में सूजन हो तो, घृतकुमारी की मज्जा को हल्दी छिड़ककर बांधते हैं।
- अधिक मात्रा इसका पत्रस्वरस कब्ज आदि में लाभकारी है।
- प्रसव के दौरान काफी लाभकारी है।
- स्त्रियां में रजोवरोध में एलुआ की वर्ति (Suppositorie) रखने से लाभ मिलता है।
- ग्वारपाठा के गुद्दे को सिर में लेप करने से बाल काले हो जाते है तथा गंजेपन में भी लाभ होता है।
- बवासीर, अल्सर, पीलिया हेतु इसका स्वरस लाभकारी है।

गृहकन्याहिमा तिक्ता मदगन्धिः कफापहा।
प्तिकास विषश्वास कुष्ठघ्नी च रसायनी।।

एरण्ड

वर्णीकरण :

जगत	–	पादप
वर्ग	–	मालपिघिएल्स
कुल	–	यूफोरबिऐसी
वंश	–	रिसिनस
जाति	–	कम्युनिस
वैज्ञानिक नाम	–	*रिसिनस कम्युनिस* (*Ricinus communis*)

परिचय (Description) :

एरण्ड लगभग सभी जगह 7000 फीट तक पायी जाने वाली 8–15 फीट ऊँची झाड़ी (गुल्म) है। सामान्यतः इसको एरण्डी के नाम से जाना जाता है। इसके पत्ते बड़े–बड़े 30–60 से.मी. व्यास के खण्डित एवं हाथ की अंगुलियों की तरह 5–11 संख्या मुक्त होने है। इसीलिये इसका एक नाम पञ्चांगुल भी है। पुष्प एकलिंगी, पुष्पदंड में ऊपर की ओर स्त्रीपुष्प तथा नीचे की ओर पुपुष्प होते हैं। फल कंटकवत् प्रवर्धनयुक्त होता है। बीज प्रायः आयताकार एवं बहुवर्णी होते हैं।

इसके बीजों में एक विषाक्त द्रव्य, रिसीनाइन (Ricinine) होता है। प्रायः देखा गया है कि ग्रामीण इलाकों में छोटे बच्चे इसके बीजों को खा लेते है। जिसके फलस्वरूप बच्चों को वमन, उदरशूल आदि विषाक्त लक्ष्ण हो जाते हैं एवं उन्हें तुरन्त चिकित्सीय उपचार देना पड़ता है।

औषधीय प्रयोग (Medicinal Effects) :

- एरण्ड का पारम्परिक तौर पर औषधीय रूप में बहुतायत प्रयोग होता है।
- एरण्ड तेल (Castor Oil) का कब्ज, गुल्म, उदर रोगों में प्रयोग सर्वविदित है।
- एरण्ड–पत्तों के स्वेदन से विभिन्न वातिक रोगों जैसे–कटिशूल (Bachache), Cervical & lumbar spondylitis, गृध्रसी (Sciatica) आदि में दर्द का चमत्कारिक नाश हो जाता है।
- इसी प्रकार यदि दर्द के कारण शरीर में कई सूजन हो जाये तो इसके पत्तों को गरम कर बांध देते है।
- प्रसव के समय एरण्ड तेल पीने से प्रसव शीघ्र हो जाता है।
- एरण्ड की मूल का क्वाथ (Decoction) पीने से शरीर की चर्बी घटती है।
- एरण्ड के बीजों को सैंधा नमक के साथ पकाने पर उसको हल्का गर्म सेक गठिया वाले मरीजों के लिए अत्यन्त लाभकारी है। इससे उनका दर्द एवं सूजन दोनों कम हो जाते हैं।

एरण्डमूलं वष्य वातहराणाम्
(चरक संहिता)

पाषाण भेद

वर्णीकरण :

जगत	–	पादप
वर्ग	–	सेक्सीफ्रेगेल्स
कुल	–	सेक्सीफ्रेगेसी
वंश	–	बर्जिनिया
जाति	–	लिगुएलाटा
वैज्ञानिक नाम	–	*बर्जिनिया लिग्युलाटा* (*Bergenia ligulata*)

परिचय (Description) :

पाषाणभेद को पत्थरचूर, सिलफड़ा, पखानभेद आदि नामों से भी जानते हैं। क्योंकि यह पत्थरों को फाड़ कर निकलता हैं।

- इसका छोटा, बहुवर्षायु क्षुप पहाड़ों की चट्टानों पर फैला होता हैं, चट्टानों के बीच में जो दरारें होती है उनमें से इसका काण्ड बाहर निकलता है।
- यह 7–10 हजार फीट की ऊँचाई पर हिमालय राज्यों की पहाड़ियों पर मिलती है। इसकी मूल रक्तवर्ण, स्थूल एवं लगभग 1–2" लम्बी होती है। इसके पत्र गोलाकार प्रायः

5–10" व्यास के, मांसल, किनारों पर दाँतयुक्त, ऊपरी पृष्ठ पर हरे तथा निचले पृष्ठ पर रक्ताभ होता है।
- पुष्प श्वेत, गुलाबी, अप्रैल–मई में होते है।

औषधीय प्रयोग (Medicinal Effects) :

- इसकी मूल ही प्रायः औषधीय प्रयोग में आती है।
- पाषाण भेद को मुख्यतः अश्मरी (Renal stone) में करने हैं। गुर्दे की पथरी में इसका प्रयोग सर्वथा उपयोगी है। पथरी के लिए पाषाण–भेद का चूर्ण या क्वाथ (Decoction) के रूप में लेते हैं।
- इसी प्रभाव के कारण इसका एक नाम अश्मघ्न है।
- मूत्र रोगों जैसे मूत्रकृच्छ (Burning Micturation) आदि में भी प्रयोग करते हैं।
- स्त्रीयों में रक्तप्रदर एवं श्वेत प्रदर (Leucorrhoea) में प्रयुक्त करते हैं।
- बच्चों में दांत निकलते समय इसका लेप प्रयोग करते हैं।
- अहीफेन–विष (Opium Poisoning) में एन्टीडोट (Antidote) के रूप में प्रयोग कर सकते है।

अश्मभेदों हिमस्तिक्तः कषायो वस्तिशोधनः।
भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्मकृच्छाश्महृद्रुजः।।

योनिरोगान् प्रमेहांश्र प्लीहशूलव्रणनि च। (भावप्रकाश)

गुडूची (गिलोय)

वर्णीकरण :

जगत	–	पादप
वर्ग	–	रेननकुलेल्स
कुल	–	Menispermaceae मेनिर्स्पमेएसी
वंश	–	टिनोसफोरा
जाति	–	कोर्डिफोलिया
वैज्ञानिक नाम	–	*टिनोस्पोरा कॉरडीफोलिया* (*Tinospora cordifolia*)

परिचय (Description) :

- गुडूची को आमतौर पर गिलोय के नाम से प्रमुखता से जानते हैं।
- इसके अतिरिक्त इसको अमृता, चक्रलक्षणिका आदि नामों से भी जानते हैं।
- आमतौर पर गिलोय 1000–1500 फीट की ऊँचाई तक सर्वत्र भारत में पायी जाती है। यह एक झाड़ीदार लता है जो वृक्षों पर कुण्डलाकार लिपटी रहती है। इसका तना काफी मोटा एवं मांसल होता है जो शाखाओं से अनेक मांसल सूत्रवत् वायवीम मूल निकलकर नीचे की ओर झूलते रहते है।
- इसके पत्र हृदयाकार, एकान्तर व जालीदार होते है। प्रायः पीले व हरे रंग के फूल झुंड में लगे रहते हैं।
- फल मटर के समान, अंडाकार, चिकने व मांसल होते है। जो पकने पर लाल हो जाते है।
- इसके तने को तोड़ने पर अंदर से कई छोटा चक्र हो ऐसा लगता है इसीलिए इसको चक्रलक्षणिका भी कहते है। इससे भी इसकी पहचान की जाती है।

औषधीय प्रयोग (Medicinal Effects) :

- आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसार गुडूची सर्वोत्तम रसायन (Immuno Modulator) औषधि है।
- मुख्यतः इसका काण्ड (तना) ही प्रयोग होता है एवं यथासंभव गुडूची को ताजा ही प्रयोग करना चाहिए।
- आयुर्वेदानुसार गुडूची त्रिदोषशामक औषधि है।
- वैसे तो गुडूची को लगभग सभी बीमारियों में दे सकते हैं क्योंकि यह हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ाने का कार्य करती है।
- गिलोय को मुख्यतः जीर्णज्वर – (टायफाईड) विषमज्वर (मलेरिया आदि) में देते हैं।
- मधुमेह एवं उच्चरक्तचाप में अत्याधिक लाभकारी है।
- जीर्ण प्रतिश्याय (Sinusitis) में गिलोय सत्व अत्यन्त लाभकारी है।
- दूध के साथ इसका चूर्ण देने से गठिया एवं मूत्राम्लता शांत हो जाते हैं।
- रक्त कैंसर में ताजीगिलोय का नियमित प्रयोग करने से काफी चमत्कारिक लाभ होते हैं।
- उदर रोगों में इसका चूर्ण लाभकारी है।

अमृता सांग्राहिक–वातहर दीपनयि श्लेष्मशोणित विबन्ध प्रशमनानाम्

(चरक संहिता)

पादप रोगों का जैविक नियंत्रण

डॉ. अमित पाण्डेय, सुश्री ज्योति शर्मा एवं सुश्री शिखा तिवारी
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सामान्यतया पादप जगत को होने वाली हानि में ज्यादातर नुकसान सूक्ष्मदर्शी जीवों के कारण होता है। प्रचलित रोग नियंत्रण की पद्धति में रसायनिक फँफूदनाशकों का प्रयोग पर्यावरण को बढ़ाता है। इस समस्या के निदान के लिए जैविक नियंत्रण द्वारा कीट, फँफूद एवं खरपतवार का नियंत्रण व उन्मूलन एक प्रभावी उपाय हैं। यह पर्यावरण उन्मुखी भी हैं। जैविक नियंत्रण को भविष्य की आवश्यकता मानकर रसायनों के विकल्प के रूप में चयनित किया गया हैं जिससे रसायनों के अनावश्यक प्रयोग को हतोत्साहित किया जा सके। आज के परिप्रेक्ष्य में जैविक नियंत्रण उस कार्यशैली का एक भाग हैं जिसमें एक जीव को दूसरे जीव के शत्रु के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं जो इससे दूसरे जीवों को हानि न पहुंचा पाए। वे जीव जो दूसरे जीव के विकास को अवरूद्ध करते हैं उनके प्रतिद्वंदी कहलाते हैं। जैविक नियंत्रण या तो प्रतिद्वंदी का प्रयोग करके अथवा मृदा एवं पादप में उपस्थित प्रतिद्वंदी को सक्रिय करके प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही वैज्ञानिक शोधों द्वारा जैव नियंत्रण प्रभावकारिता को उत्प्रेरित किया जा सकता है व दूसरे साधनों को भी विकसित किया जा सकता है। *ट्राइकोडर्मा* (*Trichoderma* Spp.) प्रजाति की फँफूद का मृदा में एक जैविक नियंत्रक के रूप में प्रयोग आदर्श उपचार के रूप में परिलक्षित हुआ हैं। यह प्रजाति बहुत तेज और प्रभावशाली रूप से उगने और रोगकारक फँफूद पर आच्छादित होने के कारण जैव नियंत्रक के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय रूप में मान्य हो चुकी है। इस फँफूद की अनेक प्रजातियां एक अवसरवादी सहजीवी के रूप में सुस्थापित हुई हैं। इसके प्रयोग से जैविक नियंत्रण के लिए अनेक तकनीकों का विकास भी हुआ हैं। इस फँफूद द्वारा रोग नियंत्रण हेतु सुझाई गई कार्यप्रणाली के मूल रूप प्रतिस्पर्धा हैं जिसमें स्थल एवं पोषक तत्वों पर नियंत्रण के लिए रसायनों का स्त्राव आदि सम्मिलित हैं। *ट्राइकोडर्मा* (*Trichoderma* Spp.) फँफूद निश्चित रूप से प्रभावकारी एवं आदर्श रोग नियंत्रक फँफूद हैं। यह ऐसे रसायन का भी स्राव करता हैं जो रोगकारक सूक्ष्मजीवों के लिए हानिकारक होता हैं। यह रोगकारक फँफूदों पर परजीवी की तरह भी उगने की क्षमता रखता हैं।

ट्राइकोडर्मा (*Trichoderma* Spp.) फँफूद 25–30 डिग्री. सेटीग्रेट के तापमान में तीव्रता से बढ़ता हैं। इसका प्रयोग एक जैव नियंत्रण के रूप में अनेक रूपों में किया जाता हैं। इस फँफूद के प्रयोग के उपरान्त आश्चर्यजनक परिणाम सामने आए हैं।

जैविक नियंत्रण पद्धति को समझने के लिए *ट्राइकोडर्मा* (*Trichoderma* Spp.) फँफूद की प्रणाली अपवाद स्वरूप एक उदाहरण हैं। यह सरलता से परिष्कृत रूप में अनेक प्रकार के कार्बनिक अवशिष्टों पर उगाई जा सकती हैं। इसके पादपीय रोगकारकों को प्रभावित करने की लंबी सूची हैं। वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून ने वन रोग सर्वेक्षण के अध्ययन कर निष्कर्ष में पाया कि प्रायः पादपों के विभिन्न भाग जैसे पत्तियां, जड़ एवं तनें सूक्ष्म रोगकारकों द्वारा प्रभावित होते हैं। उत्तर–प्रदेश, हरियाणा, पंजाब एवं उत्तराखंड में वन प्रजातियों के अध्ययन से पता चला कि रोगों के प्रभाव से वन आधारित उत्पादों का अपेक्षित दोहन नहीं हो सका। जैविक नियंत्रण उत्पादों के विकास में सूक्ष्म जीवों का भण्डारण एक महत्वपूर्ण चुनौती हैं। वन अनुसन्धान संस्थान के वन व्याधिकी प्रभाग ने *ट्राइकोडर्मा हारजियानम* (*Trichoderma harzianum*) प्रयोग अनेक प्रकार से जैविक नियंत्रण में किया हैं। निष्कर्ष में पाया गया हैं कि इस फँफूद में रोगकारकों के विकास को अवरूद्ध करने की अद्भुत क्षमता है। इस फँफूद के पौधों पर किए गए छिड़काव से भी सुखद परिणाम सामने आए हैं। इसके गन्ने की खोई पर उगाए 5 प्रतिशत मिश्रण अथवा चीड़ की पत्तियों पर उगाए गए 5 प्रतिशत मिश्रण द्वारा छिड़काव यूकेलिप्टस के छोटे पौधों पर अत्यंत प्रभावकारी रहा है। इससे झुलसा रोग का नियंत्रण संभव हैं। *लैन्टाना कमारा* (*Lantana Camara*) के सूखे तनों को बारीक कर उन पर उगाई इस फँफूद के मिश्रण का छिड़काव प्रभावकारी रहा और मृदा पर कोई प्रतिकूल परिलक्षित नहीं हुआ। उपचारित पौधे अन्य पौधों की तुलना में अधिक स्वस्थ पाए गए। भावी प्रयोगों में लैन्टाना *कमारा* (*Lantana Camara*) की बारीक की गई सूखी टहनियों पर उगाई इस फँफूद के प्रयोग का और अध्ययन किया जायेगा जिससे नर्सरी में स्वस्थ्य पौध का उत्पादन बिना पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया जा सके।

दीमक एवं उसका नियंत्रण

डॉ. के. पी. सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

प्रस्तावना

दीमक आइसोप्टीरा गण से संबंधित है। विश्व में ज्ञात लगभग 2300 जातियों में से लगभग 337 जातियों को अब तक भारतीय क्षेत्र से अभिलिखित किया गया है। इन्हें तीन कुलों –केलोटर्मिटिडी, राइनोटर्मिटिडी और टर्मिटिडी में वर्गीकृत किया गया है। दीमक उत्कृष्ट रूप से सामाजिक कीट हैं, जों कॉलोनियों में रहती हैं। दीमक मुलायम काया, बहुरूपी हैमिटाबोलस सामाजिक कीट हैं, जो बड़े और छोटे समुदायों में संगठित होकर रहती हैं। ये संरचनात्मक और प्रक्रमित प्रकाष्ठ, वानिकी में निर्मित काष्ठीय वस्तुओं, कृषि एवं औद्योगिकी फसलों आदि को भारी क्षति पहुंचाती है। दीमक सजीव पादप/काष्ठ ऊतकों से शुष्क, अपक्षीण, मृदा और हयूमस के साथ मिश्रित अपघटित पादप ऊतकों तक पादप पदार्थ, मांस और कवक छत्ता एवं कवक के प्रमुख उपभोक्ताओं में से एक है। इन खाद्यों के अलावा संश्लेशित उच्च पॉलीमर और प्लास्टिक पर भी आक्रमण करती हैं। तथापि, कोषाधु और अर्धकोषाधु समूह दीमक के भोजन के प्रमुख खाद्य है। दीमक लगभग 450 उत्तर और 450 दक्षिण अक्षांश की भौगोलिक सीमाओं के भीतर और 100 से. के औसत समताप के भीतर सभी उष्णकटिबंधीय एवं उप–उष्णकटिबंधीय में विश्वभर में पाई जाती है। जैसे–जैसे अक्षांश और ऊँचाई बढ़ती है, इनकी संख्या और वितरण का पैटर्न घटता है। वास्तव में, बहुत कम आदिम प्रजातियाँ (हिमालयन क्षेत्र में आर्कोटरमौप्सिस रॉटोनी) वास्तविक शीत शीतोष्ण जलवायु का सामना करने में सक्षम है।

सामाजिक कार्य

आर्द्रता और तापमान की अनुकूल अवस्थाओं के तहत वर्ष के खास समय पर लैंगिक रूप परिपक्वता पर पहुंचता है। पंखदार नर और मादाएं तब तक घोंसले में बने रहते हैं, जब तक कि झुण्ड में उडने न लग जाएं। राजा और रानियां बडी संख्या में घोंसले को छोडते हैं और दूर–दूर फैल जाते हैं, श्रमिक और सिपाही सामान्यतः उडान के समय निकास छिद्र बनाते हैं। जमाव असंख्य जगहों में होता है और एक–एक जोडों में मिल जाते हैं। पंख आधारीय जोड से टूट जाते हैं और राजा एवं रानी के जोडे एक नया घोंसला तलाशना शुरू करते हैं। मृदा में एक छोटा सा छिद्र खोदकर अण्डे दिए जाते हैं। पहली अण्डाजनित जातियां श्रमिकों एवं कुछ सिपाहियों की होती हैं और जोडे द्वारा पूर्ण विकसित–कई महिनों की अवधि तक इनकी देखभाल की जाती है। आगामी दीमक बस्ती एक रॉयल जोडे की सन्तति होती है।

दीमक का भोजन

दीमकें खाद्य के रूप में काष्ठ–कोषाधु का उपयोग करने की अपनी क्षमता के कारण अपने आवास में एक प्रधान समूह है। कोषाधु ऊर्जा में एक कार्बोहाइड्रेट समृद्ध हैं और अत्यधिक प्रचुर मात्रा में पादपों द्वारा लगातार उत्पादित होता है किन्तु बहुत कम किस्म के पशु इसे पचाने में समर्थ होते हैं। अतः दीमकों के लिए प्रचुर खाद्य आपूर्ति रहती है और बहुत कम प्रतिस्पर्धी होती हैं। अधिकांश काष्ठ खाने वाली दीमकों की पश्च आँत में इन्जाइम धारित समृद्ध प्रणिजात और वनस्पति अन्तविष्ट प्रोटोजोआ होता है, जो कोषाधु के पाचन को प्रभावित करता है। किसी भी कीमत पर यदि दीमकों को प्रोटोजोआ से वंचित रखा गया तो वे जीवित नहीं रह सकती है। लाईकेन, एल्गी और घासों को चारे वाली दीमकों द्वारा खाया जाता है। सभी जातियां पतली उदरीय त्वचा के जरिए वसीय पदार्थों को स्रवित करती हैं, जिसे बस्ती के अन्य सदस्यों द्वारा खाया जाता है। फेंकी त्वचा, मृत काया एवं बीमार एकलों को सिपाही खाते हैं।

दीमकों का आर्थिक महत्व

दीमकों के कार्यकलाप मनुष्यों के लिए लाभदायक और हानिकारक दोनों है।

(क) लाभ

दीमक मात्र मृत वनस्पति पदार्थों का भोजन करती हैं और ये निर्जीव पादप पदार्थ के विघटन को तेज करने और हयूमस, जिसका तत्काल वनस्पति बढ़ाने में उपयोग किया जा सकता है, में रूपांतरित करने के लिए जीवाणु, उच्च तापमान और आर्द्रता के साथ सम्मिलित होकर कार्य करती हैं।

(ख) हानियां

दीमक जीवित और मृत दोनों वनस्पति एवं भवनों में काष्ठ कर्म साथ ही साथ वहाँ भण्डारित पदार्थ को सीधे क्षतिग्रस्त

करती हैं। अपक्षीण और जीवित पादप ऊतक में रहने की अपनी क्षमता के कारण दीमक हानिकारक हैं।

1) जीवित पादपों को क्षति :

(क) दीमक बाहर से आक्रमण करके पौधशालाओं और वनों में जीवित पादपों को हानि पहुंचाती हैं। छाल में प्राकृतिक दरारों, खरोंच अथवा अन्य घावों का विस्तार करके, इस प्रकार जीवित कैम्बीयम और काष्ठ को अनावृत करके और मिट्टी से ढकें संकीर्ण मार्गों अथवा विस्तृत स्थानों की आड़ के अन्तर्गत तने की मृत छाल को हटाकर भूम्यूपरिक जडों की छाल को खोखला बनाकर ऊतकों को लगातार क्षति पहुंचाती है। वृक्षों की जडों में उस वक्त आक्रमण होता है, जब पादप काफी युवा होते हैं।

(ख) दीमक शाखाओं अथवा जडों में कमजोर रूप से प्रतिरोधी क्षेत्रों अथवा घाव में छाल के जरिए अथवा ठूंठ के द्वारा जीवित वृक्ष में छेद करती हैं, और अन्तः काष्ठ में गुहिका में स्वयं को स्थापित कर लेती है, जो धीरे–धीरे तब तक बडा होता है, जब तक कि यह कार्टेन अथवा मिट्टी के चैम्बरों और इसके भराव के साथ एक सहायक घोंसले जितना बड़ा न बन जाए।

(2) क्षतिग्रस्त प्रकाष्ठ : वन में प्राकृतिक अवस्थाओं के तहत गिरे वृक्षों, शाखाओं, टहनियां, पत्तियों को दीमक खा जाती हैं।

(3) भवनों को : भवन, पुलों, फर्नीचर, खम्भों, अलमारियों, बक्सों, रेलवे स्लीपरों की वस्तुओं के निर्माण में प्रयुक्त प्रकाष्ठ, को दीमक द्वारा क्षतिग्रस्त किया जाता है।

दीमक का नियंत्रणः

(1) **भवन स्थल की सफाई :** भवन के लिए भूमि स्थलों में दीमक के सभी प्रजनन स्थानों की सफाई की जानी चाहिए और अपक्षीण लट्ठों, मृत अथवा जीवित ठूंठों और दबी जडों को हटा देना चाहिए।

(2) **मृदा का विसंक्रमण :** भवन निर्माण के लिए नीव डालने से पहले और निर्माण के उपरान्त ऐन्डोसल्फान अथवा क्लोरपाइरिफोस अथवा इमिडेक्लोप्रिड जैसे

किसी भी कीटनाशक के 0.2% जल इमल्सन का विशाक्तीकरण करके मृदा का विसंक्रमण किया जाना चाहिए।

(3) **भवन के चारों ओर विषाक्तीकरण :** भवन के चारों ओर खाईयां खोदकर उपरोक्त किसी भी कीटनाशक के द्वारा मृदा का विशाक्तीकरण कर देना चाहिए।

(4) **फर्श डालने के लिए नीव का विषाक्तीकरण :** स्लैब डालने के लिए नींव भरने के समय मृदा विशाक्तीकरण उपरोक्त किसी भी कीटनाशक के द्वारा कर देना चाहिए।

(5) **संक्रमित भवन में मृदा विषाक्तीकरण :** फर्श में छोटे छिद्र करें और ऊपर बताया गया कोई भी कीटनाशक उसमें भर दें और ठीक से बंद कर दें। फर्श में दरारों में मृदा विशाक्तीकरण कर दें और दरारों को ठीक कर दें।

(6) **प्रकाष्ठ का ठीक से चट्टा लगाना :** डिपो की भूमि को पर्याप्त जलोत्सारण के द्वारा शुष्क रखना चाहिए और लकडी के बुरादे और कूड़े के अवशेष एवं बचे टुकडों के संचयन से बचाव करके दीमक को आकर्षित करने वाले पदार्थ की सफाई रखें। सारे प्रकाष्ठों को भूमि से ऊपर उठाकर भण्डारित करना चाहिए।

दीमक

मृदा का विसंक्रमण

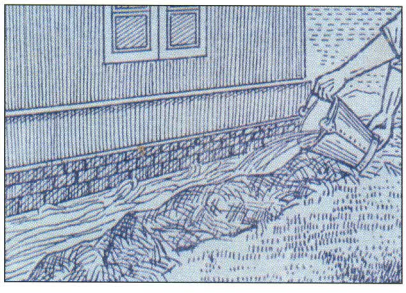

भवन के चारों ओर विषाक्तीकरण

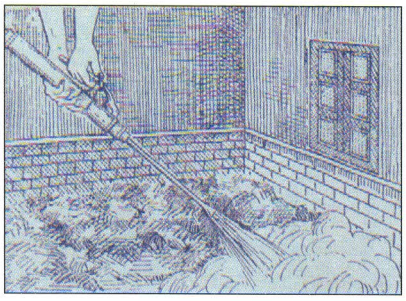

नीव का विषाक्तीकरण

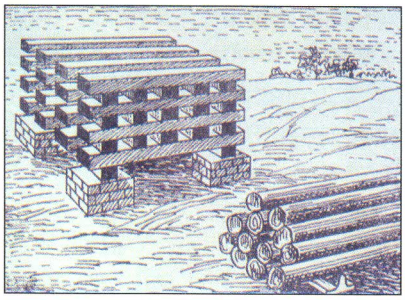

संक्रमित भवन में मृदा विषाक्तीकरण

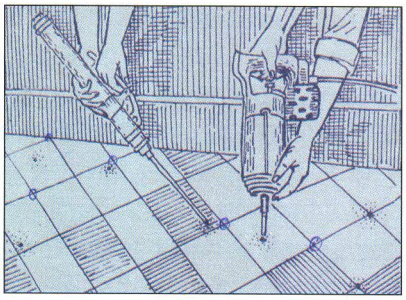

प्रकाष्ठ का ठीक से चट्टा लगाना

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान परिसर में तितलियों की जैव विविधता

श्री संजय पौनीकर, डॉ. नितिन कुलकर्णी एवं डॉ. एन. रॉयचौधरी
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, (भारतीय वानिकी अनुसंधान संस्थान एंव शिक्षा परिषद, पर्यावरण एंव वन मंत्रालय) मध्य भारत के मध्य प्रदेश राज्य के जबलपुर शहर के दक्षिण–पूर्व में मंडला रोड तथा गौर नदी के तट पर 79°59, 23.50° E .21°08, 54.30° N स्थित है। संस्थान 109 हेक्टेयर के विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है, इसमें विविध वनपौधशाला, प्रायोगिक और वृक्षारोपण क्षेत्र, आवासीय कालोनी है, जिससे ये संस्थान घनी हरियाली सें ढका हुआ है। यहा पर 57 से ज्यादा विविध प्रकार के पेड.–पौधे पाये जाते हैं। कुछ पेड़–पौधे प्राकृतिक रूप से उगे है तथा कुछ पेड़–पौधों का लगाया गया है। इनमें प्रमुख है सागवन, नीम, बबूल, करंज, बरगद, पीपल, आम, महुआ, हरड़ा, बीजा, बेर, अरडू, बाम्बू, निलगिरी, पलाश, सिरिस तथा अन्य प्रकार के पेड़ है। फूलों में गुलाब, बोगनवेलिया, चमेली, डहेलिया, लैंटाना और अन्य है। इसके चारो तरह खेती, नदी व घने वनों से घिरा होने के कारण यहा से बहुत मनोरम दृश्य दिखता है तथा वन्यजीवों के लिए प्राकृतिक आवास के लिए ये बहुत आकर्षित जगह बन गई है। इसी कारण बहुत से विविध प्रकार के वन्यजीव जैसे कीट, उभयचर, सरिसृप, पक्षी एंव स्तनधारी आकर्षित होते है। इनमें कीट समुदाय की एक प्रमुख कीट तितलियॉ भी है।

तितलियाँ प्राणी वर्ग के लेपिडोप्टेरा गण (Order-Lepidoptera) में समाविष्ट है। इस गण में आनेवाले कीटों की विशेषताएं इनके पंख में शल्क होते है। इनके शल्क पर विविध रंग और स्पॉट होते जिससे ये बहुत ही सुदंर दिखती है और सभी को आकर्षित करती है। इस वर्ग में कीट–पतिंग, (Moth) भी रखा गया है। तितलियों की कुछ विशेंषताएं कीट–पतिंग से इनको अलग करते है जैसे मुँह में घड़ी के स्प्रिंग तरह प्रोवोसिस नामक खोखली लम्बीं सूँडनूमा (Probasis) जीभ होती है जिससे यह फूलों का रस नेक्टर चूसती है। इनकी रंगबिरंगी रंगों के कारण इन्हें 'उड़न सुदंरिया' भी कहा जाता है। तितलियाँ की कुछ ही प्रजातियाँ वानिकी एवं कृषी के पौधों की पीड़क कीट (Insect Pests) है। इनके लार्वा को पत्तियाँ खाकर पौधों का नुकसान पँहुचाती है। पर ये कीट–पतिंग कि तरह बहुत सारे वानिकी एवं कृषि के पौधों को बुरी तरह नुकसान नही पँहुचाती। तितलियाँ पारिस्थितिकी एक प्रमुख कीट है। तितलियाँ पौधों के लिए अति महत्वपूर्ण है क्योंकि ये एक फूल से दुसरे फूल पर परागण करके पौधों को प्रजनन में मदद करती है। तितलियाँ बदलते पर्यावरण की सूचक होती है। ये वातावरण में होने वाले परिवर्तन के प्रति बहुत गंभीर एवं नाजुक होती है।

भारत में तितलियों की करीब 1,504 प्रजातियाँ पायी जाती है। इनमें से भारत के पश्चिमी घाट में सबसे ज्यादा तितलियों की जैवविविधता पायी जाती है। एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक डी. एब्रू ने 1931 में मध्य भारत के मध्य प्रदेश एंव विदर्भ राज्य में इनकी 177 प्रजातियाँ पायी जाती का उल्लेख है। बाद में विविध कीट वैज्ञानिक ने मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ राज्य में तितलियों की विविध प्रकार की प्रजातियों का वर्णन किया है। हाल मे ही कीट वैज्ञानिकों ने 2007 में मध्य प्रदेश एंव छत्तीसगढ राज्य में तितलियों 177 प्रकार की प्रजातियों की अभिलेखित की है।

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, परिसर में कितनी और कौनसी प्रजातियाँ की तितलियाँ पायी जाती है, इसका गहन अध्ययन करने के लिए माह जून 2010 से माह मई–2011 तक सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण के लिए सुबह 8:00 से 11:00 और श्याम को 4:00 से 6:00 का समय चुना गया क्योंकि उपर्युक्त समय में तितलियाँ ज्यादा सक्रिय रहती है। उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान के विभिन्न वनपौधशालाओं, प्रायोगिक तथा वृक्षारोपण क्षेत्र में, मुख्य परिसर (कॅम्पस), आवासीय कॉलोनी एवं गोर नदी के किनारे सघन भ्रमण कर सर्वेक्षण किया गया। विविध प्रकार की तितलियाँ की पहचान करने के लिए उनकी फोटो ली गयी तथा कुछ तितलियों को कीट जाली (इनसेक्ट नेट) में पकड़कर प्रयोगशाला में लाया गया । बाद में उनकी पहचान विविध कीट वैज्ञानिको की किताब (फिल्ड गाईड) लेकर पहचान की गई। कुछ तितलियों की पहचान उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान के वन कीट विज्ञान प्रभाग के कीट संदर्भ कक्ष में रखी गई विविध तितलियों की प्रजातियों से की गई। फिर तितलियों को उनको कौनसी प्रजातियों कों और कितनी बार देखा गया या उनकी संख्या पर इस प्रकार से विभाजित किया गया, बहुत सामान्य (VC -Very Common-100 बार से ज्यादा देखी गई), सामान्य (C-Common–50 से 100 बार, देखी गई), कम (NR- Not Rare –15 से 50 बार देखी गई), बहुत कम (R- Rare 2 से 15 बार देखी गई) बहुत ही कम (VR-Very Rare, 1 से 2– बार देखी गई)।

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, परिसर में तितलियों कि कुल 66 प्रजातियाँ 47 जेनेरा तथा 5 परिवार (फेमीली) उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, परिसर में पायी गई। इनके 5 परिवार इस प्रकार है, पापिलीओनिडी (5 प्रजातियाँ), पेरिडी (9 प्रजातियाँ), निम्फॅलीडी (25 प्रजातियाँ), लाइकिनीडी (18 प्रजातियाँ) तथा हॅसपीरिडी (9 प्रजातियों)की पहचान की गयी। इनमें 24 (37 प्रतिशत) प्रजातियों को बहुत सामान्यतः में (Very Common), 16 (24 प्रतिशत) सामान्य (Common), 2 (3 प्रतिशत) कम (Not Rare),18 (27 प्रतिशत) बहुत कम (Rare), 6 (9 प्रतिशत) बहुत ही कम (Very Rare) देखी गई।

इनमें से कॉमन इंड़ियन क्रो, कॉमन कॉस्टर, पॉपिलीयों ड़ेमोलस, कॅटोप्सीला पोमोनो, यूरेमा हेक्ब,कॉमन ग्रास येलो, लेमन पॅन्सी, कॉमन लेपर्ड़, कॉमन बुश ब्राउन, ब्ल्यू टाइगर, प्लेन टाइगर, कॉमन सेलर, पी ब्ल्यू तथा बारोनेट तितलियों की प्रजातियॉ बहुत ही सामान्यतः (Very Common) से पायी जाती है। पिकॉक पॅन्सी,चॉकलेट पॅन्सी, ब्ल्यू पॅन्सी,ड़ार्क बॅन्ड़ेड़ बुश ब्राउन, पेन्टेट लेड़ी, टाउनी कास्टर, कॉमन जेजेबल, कॉमन मॉरमान, ग्रेट एग्जफ्लाई, डॅनीड एग्जफ्लाई, लाईम ब्ल्यू, रॉईस स्वीफ्ट तथा कॉमन बॅन्ड़ेड़ आउल तितलियॉ सामान्यतः (Common) से पायी जाती है। ग्राम ब्ल्यू तथा कॉमन रोज ये दो तितलियों की प्रजातियॉ कम (Not Rare) संख्या में देखी गई है।

कॉमन गल्, क्रिमोन रोज, स्पाट् स्वोर्ड़टेल, व्री स्पाट् ग्रास येलो, कमाड़ंर, ग्रे पॅन्सी, लार्ज ओक ब्ल्यू, प्लम जूड़ी, कॉमन पॅरोट, स्पाटलेस ग्रास येलो, इंड़ियन स्कीपर बहुत कम (Rare) संख्या में पायी गई। कॉमन फाईव रिंग, कॉमन बॉरोन, ब्लॅक राजा, ड़ार्क सेरूलियन, येलो पॅन्सी, पॅल पॉल्म ड़ार्ट इत्यादी तितलियॉ बहुत ही कम (Very Rare) से देखी गई।

कुछ तितलियों कि प्रजातियाँ सालभर जनवरी से लेकर दिसम्बर माह तक पायी जाती है। तितलियों की संख्या मानसून के शुरूआती माह जून से लेकर जुलाई तक बहुतायत में देखी जा सकती है। इनमें से 53 प्रजातियाँ सिर्फ मानसून के शुरूआती माह जून से लेकर जुलाई तक पायी जाती है। बाद के महीनों शुरूवाती सर्दी के मौसम अक्टूबर–नवम्बर में इनकी संख्या कम होती है तथा जनवरी–फरवरी माह आते आते इनकी संख्या में काफी गिरावट होते हुये गर्मी तक ओर भी कम हो जाती है।

कुछ तितलियों की प्रजातियों को भारतीय वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 के अंतर्गत समाविष्ट की गई है। इनमें से 5 प्रजातियाँ कॉमन इंड़ियन क्रो, ड़ॅनीड एग्जफ्लाई, क्रिमोन रोज, ग्राम ब्ल्यू और पी ब्ल्यू उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, परिसर पायी जाती है।

आजकल तितलियों की संख्या में भारी गिरावट देखी गई है। इसका प्रमुख कारण मानव द्वारा जंगल को खेती के लिए काटना, उजाड़ना, प्राकृतिक आवास का उजड़ना, इनके पेड़ फूल– पौधों का कम होना, मानव द्धारा इनको मारकर घरों में सजावट करना और तस्करी कर बाहर देशों में बेचना तथा वातावरणीय बदलाव कारण भी इनकी संख्या में निरंतर गिरावट हो रही है। कुछ प्रजातियाँ तो विलुप्तता की कगार पर खड़ी है।

तितलियाँ हमारे पर्यावरण के अति आवश्यक है, क्योंकि तितलियॉ वातावरण में हो रहे परिवर्तन की सूचक होती है। ये फूलों पर परागण करके पौधों को प्रजनन और संख्या बढाने मदद करती है और हमारे पर्यावरण कों स्वस्थ एंव सुरक्षित रखती है। इसीलिए इनका संरक्षण करना अति आवश्यक है।

उपर्युक्त शोध से ये पता चलता है की, कोई भी अनुसंधान या शैक्षिणिक परिसर (कॉम्पस) जहाँ पर विविध प्रकार के पेड़–पौधों, फूलों तथा बाग– बगीचों को सजावट के लिए लगाया जाता है, तितलियों के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक आवास बन जाता है। उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, परिसर में लगाए गये विविध प्रकार के पेड़–पौधों, फूलों तथा बाग–बगीचों को व्यवस्थित तरीके से देखभाल की जाये तो और भी तितलियों की प्रजातियों के लिए एक उच्च कोटि का प्राकृतिक आवास और संरक्षित क्षेत्र बन जायेगा। जिससे तितलियों का संरक्षण और भविष्य में अनुसंधान किया जा सकेगा।

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, परिसर पायी गई कुछ तितलियों की प्रजातियाँ

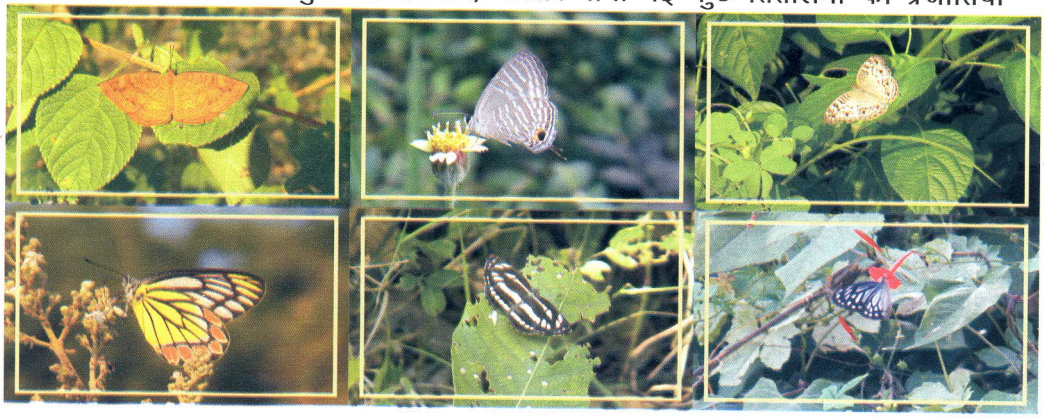

पर्यावरण संकट, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का द्वन्द

श्री विपिन कुमार
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

पर्यावरण संकट एक दृश्य

समाजशास्त्री सच्चिदानन्द सिन्हा के इस कथन से अपनी बात शुरू करना प्रासंगिक प्रतीत होता है "इस विकास प्रक्रिया के रहते प्रदूषण पर थोड़ी रोक भले ही लग जाए, संसाधनों के विशाल क्षय को रोकना तो दूर, इसे कम भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि मात्रा में विभिन्न कच्चे मालों और विशाल मात्रा में ऊर्जा की खपत रोकने से ही सम्भव है।"

आदमी की दावेदारी दुनिया के सभी प्राणियों से बेहतर होने की है। अब वह है या नहीं, इस बहस में पड़े बिना यह स्वीकार भी लिया जाए, तो अचरज होता है कि ऐसा दावा करने के बावजूद, उसने जैसी दुनिया बनाई है, वह बेहतर नहीं है। यदि होती तो इसमें अन्य प्राणियों के जान के लाले नहीं पड़े होते, वनस्पतियों की प्रजातियां लुप्त नहीं हुई होती, पानी का संकट नहीं आया होता जंगल नष्ट नहीं हुये होते, समुद्र उफन नहीं रहा होता और पर्वत पिघल नहीं रहा होता। उसने अपनी सुविधाओं के लिए अन्य प्रणालियों समेत प्रकृति के तमाम उपादानों को ध्वस्त किया है। इस दलील के साथ कि विकास के लिए यह सब जरूरी है। बेशक उसने जिस भौतिक विकास को विकास का एकमात्र पैमाना मान लिया है उसी की वजह से आदमी सहित समूची धरती को विनाश के मुहाने पर ला खड़ा कर दिया।

संयुक्त राष्ट्र आई.पी.सी.सी. से जुड़े 600 से ज्यादा वैज्ञानिकों के मुताबिक इस बात की संभावना 90 फीसदी से ज्यादा है कि वैश्विक तपन आदमी की करतूतों का नतीजा है। पिछली आधी सदी के दरम्यान खासतौर पर कोयला और पेट्रोलियम जैसे जीवाश्म ईंधनों को फूंकने से वातावरण में कार्बनडाईओक्साइड और दूसरी ग्रीन हाऊस गैसों की मात्रा खतरनाक हदों तक जा पहुँची है।

गौरतलब है कि करीब 20 हजार वर्ष पूर्व आये एक लघु हिमयुग के दौरान पृथ्वी के औसत तापमान से जीव–जगत की तस्वीर बदल गयी थी। आज मौसम के अप्रत्याशित व्यवहार को भी वैश्विक तपन से जोड़ा जा रहा है। सूखा, अतिवृष्टि चक्रवात और समुद्री हलचलों को वैज्ञानिक तापमान वृद्धि का नतीजा बताते हैं। इन नतीजों के कारण ही पर्यावरण का ऐसा गम्भीर खतरा पैदा हो गया है कि अब सामूहिक विनाश की आशंका सताने लगी है। 1972 के स्टाकहोम सम्मेलन से लेकर रियो और 1997 में क्योटों में और उसके बाद भी कई पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किए गए, लेकिन इन आयोजनों के बावजूद ऐसा नहीं लगता कि पर्यावरण के कारण और प्रदूषण में कोई कमी आई है और इस संकट की भयावहता कुछ कम हुई है। इसकी वजह सिर्फ भौतिक विकास को विकास का एकमात्र पैमाना मान लेना है, जिसके मुताबिक भौतिक वस्तुओं का अधिकाधिक उपभोग करने वाला आदमी और मुल्क विकसित कहलाता है तथा जो आदमी और मुल्क ऐसा नहीं कर पाते उसे विकाशसील कहा जाता है। अब क्योंकि विकास का यह पुरा ताना बाना उद्योग–केन्द्रित है, इस कारण विकसित देश उन्नत उद्योगों द्वारा अत्यधिक भौतिक संपदाओं का उत्पादन कर उनका अनियंत्रित उपभोग करते है और विकासशील देश यही सब करने की होड़ में लगे हुए हैं। क्योंकि ऐसा करके ही वे विकसित कहला सकते हैं। अब इन भौतिक चीजों के उत्पादन में जंगल, खनिज और पेट्रोलियम आदि प्राकृतिक संसाधनों का बेतहाशा उपयोग हो रहा है। उत्पादन की इस प्रक्रिया में धुआँ पानी, रासायनिक, कचरा, विषाक्त गैस तथा ज्यादा मात्रा में धुंआ आदि उत्पन्न होकर प्रकृति में मिल जाते है जिससे वह दूषित हो जाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक विकास ही पर्यावरण – संकट का मूल है; क्योंकि उत्पादन पर आधारित होने के कारण इस विकास–प्रक्रिया में कोयला और पेट्रोलियम आदि जिन पदार्थों की आवश्यकता होती है, वे पदार्थ असीमित नहीं हैं। ये बड़ी तेजी से कम होते जा रहे हैं और अगर उत्पादन की यही रफ्तार रही तो बहुत जल्द खत्म हो जायेगा। इसीलिए इनके अनियंत्रित खपत पर रोक लगाना जरूरी है।

लेकिन यह रोक इसलिए नहीं लगाई जा सकती कि इस भौतिकवादी विकास के विचार ने एक ऐसी उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रचार प्रसार किया है जिसमें आवश्यक और अनावश्यक वस्तुओं का अन्तर किए बगैर व्यक्ति अधिक से अधिक वस्तुओं का उपभोग कर लेना चाहता है। इसी कारण

आदमी की थोड़ी सी आवश्यकताएं भी इस हद तक विस्तार पा जाती हैं कि वह उन्हें पूरा करने के प्रयास में ही अनावश्यक वस्तुओं का जखीरा जमा करने लगता है। उत्पादन में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और प्रकृति का प्रदूषण भी होता है। इसलिए भारत डोगरा कहतें हैं कि "विलासिता की जीवनशैली अनिवार्य रूप से पर्यावरण के विनाश से जुड़ी है। नयी उपभोक्ता वस्तुओ को बहुत आक्रामक ढंग से बेचा जा रहा है, नित नयी–नयी उपभोक्ता वस्तुओं की कृत्रिम भूख को उकसाया जाता है, उस समाज में न तो लोगों को संतोष मिल सकता है, न ही वहां का पर्यावरण बच सकता है।"

पर्यावरण संकट के लिए उत्तरदायी पाश्चात्य दर्शन

अगर ये समस्याएं यूँ ही नहीं खड़ी की जा रही है, बल्कि इसके पीछे एक सुनिश्चित दार्शनिक सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त सुखवाद का है। बैंथम, मिल, एपिक्यूरस, एसिस्टीपस तथा सिजविक जैसे दार्शनिक इस सिद्धांत के समर्थक हैं। यों तो इन सभी विचारकों के सुखवादी सिद्धांतों में कुछ अन्तर भी हैं, लेकिन इन अन्तरों के बावजूद ये सभी विचारक सुख को जीवन का चरम लक्ष्य मानने के मामले में एकमत हैं। इसलिए ये सभी ऐसा मानते हैं कि मनुष्य जीवन भर सुख की खोज में लगा रहता है और उसका ऐसा करना उचित है। तभी तो वेंथम कहता है, "अपने लिए सुख का अधिकांश भाग प्राप्त करना प्रत्येक बौद्धिक प्राणी का लक्ष्य है।"

हालांकि मिल इससे उबरने के लिए सुखों में गुणात्मक भेद मान लेते है और वेंथम के विचार को संशोधित कर मानसिक सुख की शारीरिक सुख से श्रेष्ठतर घोषित करते हैं और इसका फर्क दिखाने के लिए "सुख" के बदले आनन्द शब्द का इस्तेमाल भी करते हैं अगर इतना कुछ करने के बाद भी वह सुख और आनन्द में कोई भेद नहीं कर पाते जिसके कारण उनका आन्नद भी सुख का पर्याय ही हो जाता है और अन्ततः वह भी वेंथम की तरह सुख को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानने वाले दार्शनिक सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार दूसरे सारे सुखवादी दार्शनिक भी कमोवेश हेर–फेर के साथ सुख को ही जीवन का परम लक्ष्य प्रतिपादित करते हैं। अब चूंकि यह सुख भौतिक वस्तुओं से प्राप्त होने वाला पूरी तरह शारीरिक और ऐंद्रिक है और भौतिक वस्तुएं प्राकृतिक संसाधनों के विनाश और दोहन से उत्पादित होती है इसलिए यह तार्किक परिणति के रूप में स्थापित होता है कि सुखवाद पर्यावरण–संकट का मूल दार्शनिक आधार है।

भारतीय दर्शन में भी यह भौतिकवाद के रूप में मिलता है जिसके प्रणेता चार्वाक हैं। चार्वाक कहते हैं, "यावत जीवेत् सुखं जीवेत ऋणं कृत्वा घृतमं पिवेत" (खाओ पीओ और मौज करो) यह सिद्धान्त दैहिक सुख को इस हद तक महिमाभण्डित करते है कि उसके लिए कुछ भी किया जाना अवांछित नहीं होता।

भारतीय दर्शन से समाधान

इस सुखवादी विनाश का एक हल अध्यात्म दिखाई पड़ता है। गौड़ पाढ़ से लेकर शंकराचार्य, विवेकानन्द, श्री अरविन्द और स्वातत्योत्तर दार्शनिक ओशो (रजनीश) ने भी इसे बढ़े सरल शब्दों में समझते हुए कहा है "परमात्मा के निकट जैसे–जैसे तुम जाओगे वहां परमात्मा में संसार और मोक्ष एक ही घटना पाओगे" वहां बनाने वाला और बनाई गयी चीजे दो नहीं है; वहां सृष्टा और सृष्टि एक ही है। वहां तुम ऐसा न पाओगे कि यह वृक्ष अलग है, परमात्मा से; तुम इस वृक्ष में परमात्मा को ही हरा होते हुए पाओगे।

इस अध्यात्मवाद की नींव पर ही वह संस्कृति विकसित हो सकती है जो उपभोक्तावादी न हो। जब उपभोगवाद से अध्यात्म की तरफ दुनिया बढ़ेगी तभी पर्यावरण बचेगा और पर्यावरण के साथ हम अन्यथा सब कुछ ही वर्षों में खत्म हो जायेगा।

निष्कर्ष

भौतिकवादी विकास के विचार को बदलकर एक ऐसे विकास का विचार प्रतिपादित किया जा सकता है जो केवल उद्योग केन्द्रित न हो और जिसमे भौतिक वस्तुओं का उपभोग जीवन का अभीष्ट न हो। इसमें मनुष्य की नियति प्रकृति पर या वनस्पति जगत समेत अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करना नहीं, उनके साथ एक नये तरह का तादाम्य स्थापित करना है। आज पर्यावरण की सुरक्षा, जो अन्य जीवों और वनों की रक्षा से जुड़ी है, मानव प्रजाति के स्वयं जीवित रहने की अनिवार्य शर्त दिखाई देने लगी है। हम प्राकृतिक नियमों के हिसाब से जल, जमीन, हवा, आग तथा वनस्पति आदि का उस अनुपात में उपयोग करें जिससे कि प्रकृति में उसका सन्तुलन बिगड़ने न पाये, तभी पर्यावरण की सुरक्षा और विकास दोनों साथ–साथ संभव हो पाएगें।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
(1884 – 1941)

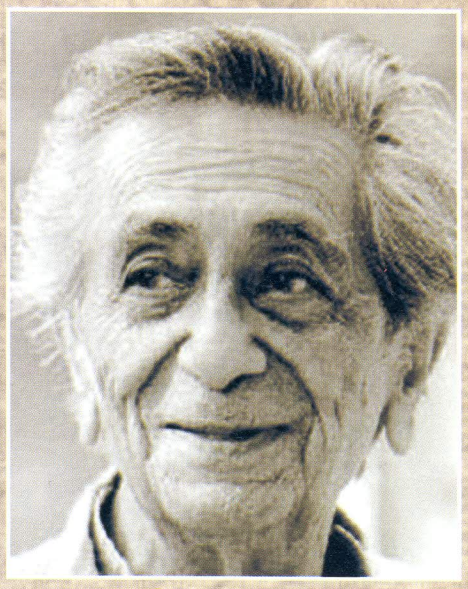

भीष्म साहनी
(1915 – 2003)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
(1907 – 1979)

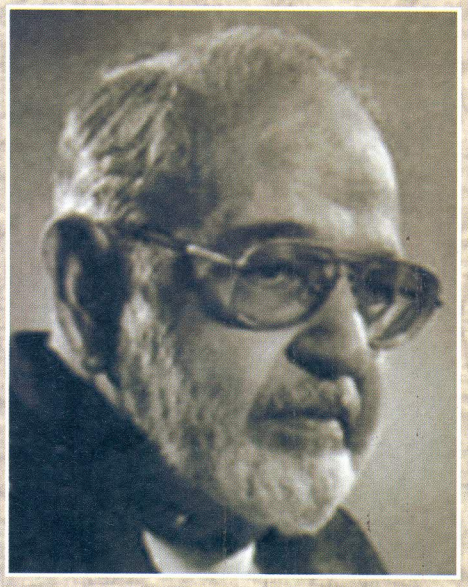

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय"
(1911 – 1987)

लालित्य

लालित्य

दामिनी

डॉ. सुधांशु गुप्ता
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

दामिनी का बलिदान बोल रहा है
देश का है स्वाभिमान डोल रहा है।

मां जननी है, दुर्गा है, और है इस जीवन का आधार,
आज आहत है, मानवता का व्यवहार

तारे भी हुए तार तार उस रात में
चांद दे रहा श्रद्धांजलि, अब तारों की कतार में

श्रद्धा से नम है हर देशवासी की आंखें
जरूरत है हम आज मानवता में झांके

उत्पात से नहीं सभ्यता से जीवन का अंदाज बदलें
मोमबत्ती जलाने से नहीं संस्कारों से युवाओं का अंदाज बदलें

नारी का स्वाभिमान ही है जीवन का अभिमान
ना हो अब इस देश की बेटी का अपमान

जो गुजर गया उस पर आंसू से नहीं
जीवन शैली से निशिगंधा का सुर बदलें

एहसास उम्मीदें सपने कानून से नहीं बदलते
संस्कृति के निर्माण से है देश के सुर बदलते

करें अब हर बेटी का सम्मान
नारी की श्रद्धा से ही हो सकता भारत का निर्माण

आने वाले साल में करें यह आव्हान
इस देश में ना हो अब किसी बेटी का अपमान

हिल ट्रैकिंग

श्री विवेक खाण्डेकर
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

कई बार मन में यह ख्याल आया कि अपने जीवन में घटित रोमांचक घटनाओं को कागज पर उतारकर औरों के साथ भी बांटू। वैसे मेरा घटनाओं या यूँ कहें कि समस्याओं से दोस्ताना पुराना है और गाहे–बगाहे चाहते न चाहते हुये मुझे ये याराना निभाना ही पड़ता है। केदारनाथ की हालिया घटना जेहन में ताजा है तो मैं अपने अविस्मरणीय "हिल ट्रैकिंग" का अनुभव आप के साथ बांटना चाहूंगा।

वर्ष 1995, जब भारतीय वन सेवा में चयन हुआ। उसके बाद फाउण्डेशन ट्रेनिंग हेतु अन्य अखिल भारतीय व केन्द्रीय सेवाओं के प्रोबेशनरी अफसर के साथ हम भी मसूरी के लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय अकादमी में पहुंचे, पहुंचने के बाद कुछ दिनों के उपरांत हमें सुदृढ़ता का पाठ पढ़ाने किंबहुना दुर्गम इलाकों में जीवन की कठिनता का प्रत्यक्ष दर्शन कराने के लिए ट्रैकिंग का आयोजन किया गया। तीन प्रकार के ट्रैक थे हार्ड, मध्यम व सरल। मेरा मकसद ट्रैकिंग का आनंद लेना था इसलिये अपनी जवांमर्दी का सबूत देने जा रही हार्ड ट्रैकिंग की फौज से किनारा किया लेकिन सरल ट्रैकिंग (सॉफ्ट ट्रैकिंग) की बेहद सुगमता भी मन को न भाई सो हमने मध्यम ट्रैकिंग का दामन थामा और बढ़ चले अपनी मंजिल की तरफ।

हमारा ट्रैक था सात दिनों का। एक दिन हमें बताया गया कि आज आपकी बस आयेगी और आप तैयार रहें। जैसा कि होता रहा है हमारे साथ, बस देर से आयी और दोपहर के बजाय हम देर रात में रवाना हुये। सारी रात उस बस के घुमावदार पहाड़ी रास्तों पे नींद और आराम से दो–दो हाथ करते हुये, सुबह गंतव्य यानी ट्रैक के शुरूआती स्थान तक उबासियां लेते हुये पहुंचे। उतर कर अंगड़ाइयाँ लेते हुये अभी बदन के कस–बल निकाल ही रहे थे कि हल्ला हुआ कि हम निर्धारित जगह से बहुत दूर कहीं उतर गये हैं। थोड़ी देर सामूहिक हो हल्ले और ड्राइवर से औपचारिक तू–तू मैं–मैं के बाद हम पुनः बस में लदे अपने निर्धारित गंतव्य तक लौटे। अब मध्याह्न हो चुका था। तीन चार बज चुके थे। हम न इधर के थे न उधर के। पास कोई बस्ती, गांव नहीं था और ट्रैकिंग करते हुये अपने निर्धारित पड़ाव की ओर, जहां हमारे भोजन व निवास की व्यवस्था थी, जाना ही एक मात्र विकल्प उपलब्ध था। हमें बताया गया कि दूरी मात्र 8–10 कि.मी. है और आप जल्दी ही पहुँच जायेंगे। रातभर नींद नहीं, पेट में रात के खाने के बाद कुछ नहीं यहां तक कि मुंह धोने को पानी तक नहीं, ऐसी अवस्था में हमारे दल ने आगे को कूच किया। हम भारतीय वन सेवा के कुछ अधिकारी जो सेवा में पहले से थे उन्हे चलने की आदत थी सो हमें भारी नहीं पड़ा पर दूसरी सेवाओं के नये–नये नियुक्त अधिकारियों से तो चला ही नहीं जा रहा था। ऊपर से जो दूरी हमें 8–10 कि.मी. बताई गई थी वह दरअसल 15–20 कि.मी. थी। वह भी काफी चढ़ान भरी। कारवां शुरू हुआ और कुछ देर सभी ने साथ चलने की कोशिश की लेकिन फिर अपनी अपनी शारीरिक क्षमताओं के अनुरूप अलग–अलग दल बन गये। दल की एक लड़की के भारी सामान से उसके कहने पर मैंने कुछ उधार लिया और उड़ीसा, राजस्थान व हिमाचल के तीन भारतीय वन सेवा अधिकारियों समेत हम चार लोग दल से काफी आगे निकल आये। हम भी 10–12 कि.मी. चढ़ान के बाद थक गये थे। सूर्य अस्त हो रहा था, अंधकार दस्तक दे रहा था और मंजिल कहीं दृष्टिक्षेप में नहीं थी। बाकी दल का न जाने क्या हाल था।

तभी हमें तीन चार भोटिया कुत्तों ने घेर लिया और आक्रामक मुद्रा में भौंकने लगे। उनका भौंकना सुनकर उनके मालिक चरवाहे आये। परिचय उपरांत हम उनके ठिये तक आये वहाँ उनकी जलती लकड़ियों पर पानी उबल रहा था। उसी में हमने साथ की दो पैकेट मैगी उबालने को रख दी। भूखे पेट की सिकुडी आंतों में कुछ गया तो उनका गुर्राना कम हुआ और रगों में कुछ ताकत वापस लौटी। घिरते अंधेरे के मद्धेनजर वहाँ से फटाफट आगे बढ़े–सूर्य अस्ताचल में पहुंच ही रहा था और अंधेरा बस डसने ही वाला था। फिर भी बची खुची ताकत के सहारे हमने 7–8 कि.मी. और तय कर लिया। अब चारों तरफ घुप अंधेरा था। प्रकाश का लेशमात्र अस्तित्व नहीं था। जो लोग पर्वतीय ग्रामों से परिचित हैं वो जानते ही हैं कि गांव तक का रास्ता नहीं दिखता है और सिर्फ थोड़ी–थोड़ी दूरी पर स्थित तीन–चार पत्थरों का ढ़ेर ही रास्ते का अस्तित्व बयां करता हैं। अंधेरे में वो पत्थर के ढेर (चट्टियां) भी दिखना बंद हो जाता हैं सो रास्ता भी खो जाता है। हताश होकर हम जहाँ थे वहीं रूक गये और अपना स्लीपिंग बैग निकालकर वहीं अरण्य में विश्राम करने लगे। 3–4 घंटे बाद बाकी की मंडली भी आई और थकान, भूख से निढ़ाल जहां थी वहीं ढ़ह गई। प्रथमतः एक महिला सहकर्मी जो सब से अलग–थलग

जगह विश्राम करने की मंशा जाहिर कर रही थी उन्होंने पहाड़ी गुलदार और भालुओं की क्षमताओं और गतिविधियों के बारे में संक्षिप्त परिचय के उपरांत विश्राम कर रहे लोगों के बीचों बीच का स्थान हथिया लिया। गहन निद्रा में सुप्त मंडली जब सुबह उठी तो कइयों को काटों तो खून नहीं। क्योंकि वह सैकडों फुट गहरी खाई के बिलकुल किनारे सो रहे थे। बहरहाल उठने पर यह भी ज्ञात हुआ कि हमारा गंतव्य बमुश्किल से सौ–दो सौ मीटर ही दूर था। हमें नाश्ता भी वहीं कराया गया और हमारी यात्रा का शुभारम्भ हुआ। पहली बार पहाड़ों का विशालकाय पक्षी लैमर्गियर देखा जो ऊँचाई से मरे पशुओं की हड्डियां पत्थरों पर पटक कर तोड़ता है और उसके अन्दर की अस्थि मज्जा का भोग लगाता है। रोज पहाड़ी पगडन्डियों पर ऊंचे–नीचे दिनभर चल कर हम तीसरे दिन गंगोत्री पहुँचे। गंगोत्री, गोमुख पहुँचने के मार्ग पर एक प्रमुख व आखिरी बस्ती है। यहां से हम गढ़वाल मण्डल विकास निगम के भोजवासा स्थित यात्री निवास में जाकर रूके। पहाड़ों में घुमावदार रास्तों पर लगातार लम्बी दूरी चलें तो धूप–छांव का खेल चलता रहता है। परिणामतः हम में से कई धूप में पसीने और छांव में ठण्ड के सतत खेल की बलि चढ़े और बीमार पड़े। अब गिनती के चार–पांच लोग ही स्वस्थ अवस्था में बचे थे। मैं और के. मुरूगेशन जो उड़ीसा कैडर के अफसर हैं और अभी काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर में कार्यरत हैं; हम दोनों फिर पत्थर की चट्टियों के सहारे गोमुख (गंगा का उद्गम स्थल) तक जाने के लिए शाम को चल निकले। फैसला गलत था जो जल्द ही समझ भी आ गया। चांद बादलों में गुम था। चारों ओर अंधेरा फैल गया पत्थर की चट्टियां नजर आनी बंद हो गयी और ग्लेशियर में फंसे बड़े–बड़े पत्थर भयानक आवाज के साथ चारों तरफ टूट–टूट कर पानी में गिर रहे थे। घने काले अंधेरे में चारों ओर से इन भयानक आवाजों से लगा की प्रलय ही आ गई हो। मानों तभी परमेश्वर कृपा से चांद निकला और हम गोमुख तक जाकर उसे चांदनी रात में देख वापस लौटे। दूसरे दिन एक अन्य मित्र (फिलहाल राजस्थान कैडर) के साथ गोमुख फिर गये और इस बार पास की करीब 350–400 मीटर ऊँची चोटी 'तपोवन' पर चढ़ गये। ऊपर एक बाबा की कुटिया दिखी। आश्चर्य हुआ जब पता चला कि सालभर यहीं रहते हैं। मित्र ने थकान के चलते बाबा की खिल्ली उड़ाई कि ठण्ड में बर्फ में रहकर ये भला क्या हासिल करते होगें। बाबा बोले कुछ नहीं बस क्रोधित नजरों से मित्र को ताकते रहे। रात को सोते हुये प्यास लगी तो बाहर निकला देखा तो घुप अंधेरा। अन्दाजन जहां पानी का बर्तन था वहां से पानी लेकर पिया। पीते ही मानों मैं जम सा गया, कुछ अनजाना कड़वा अत्यंत बर्फीला गाढ़ा पेय गले में जम सा गया। सांस रूक गयी, आवाज भी न निकले। किसी तरह एक लालटेन लेकर बाहर आया और उल्टी की। अंदर फिर जाकर देखा तो पता चला मैं जेनरेटर का कैरोसीन पी गया था, अस्वस्थ सा जाकर फिर सोने की कोशिश करने लगा। झपकी आयी तभी फिर शोर हुआ, भागो–भागो आग लग गई। आव देखा न ताव, सभी अपने कम्बल रजाई समेत खिडकियों से कूदकर हाड़ कंपा देने वाली सर्दी में बाहर आये। बडी देर तक लगी आग और एक रिसते गैस सिलेंडर से निपटकर फिर हम सोने चले। तब तक पौ फटने लगी थी। रात भर नींद नहीं आयी थी। फिर भी धूप छाँव से बचने को चौदह कि.मी. दूर गंगोत्री अल सुबह निकल पड़े। साथ में थे वही तपोवन वाले मित्र। एक–दो कि.मी. चलने पर तकरीबन 10 – 12 फुट चौड़ा गदेरा (गहरा पहाड़ी नाला) आया। मित्र जो एक अच्छे कवि व लेखक हैं गदेरे पर पडे लकड़ी के लटठे पर (पुल इत्यादि नहीं है। गदेरे पडी लकड़ी के तने से ही पार किये जाते हैं) गाना गाते चल पडे। लटठा डगमगाता है सो मैं इधर ही इंतजार कर रह था। उनके ठीक बीच में पहुँचने पर वो फिसलने, लड़खड़ाने लगे। कारण लटठे पर सुबह–सुबह पानी जमा हुआ था। बर्फ के कणों पर फिसलकर वह देखते ही देखते करीब बीस फुट नीचे बड़े पत्थरों पर कंधे के बल गिर गये। उन्हें उसी अवस्था में निश्चल देखकर मैं नीचे पहुँचा तो पाया अचेत है। बांया कंधा टूट चुका था। बुरी तरह दर्द हो रहा होगा और बर्फानी पानी उनके कपडों, पिटठू में सब जगह घुसकर जम सा गया था। वो भी कदावर कदकाठी के थे सो भगीरथ प्रयत्नों से उन्हें उठाकर ऊपर लाया गया। एक पास की कमीज की स्लिंग बाधकर बांया हाथ उसमें सहेजने के कुछ देर बाद वो होश में आये। बोले–बाबा का मजाक नहीं उड़ाना था। मगर बन्दे में बला की हिम्मत थी। पता था पीछे डाक्टरी मदद नहीं है सो टूटे कंधे पर वे करीब 10–12 कि.मी. दूर गंगोत्री मेरे साथ पैदल पहुंचा। वहां भी चिकित्सकीय सुविधा तो थी नहीं सो हम टैक्सी लेकर उत्तरकाशी पहुंचे। वहाँ से पता चला हर्सिल में सेना का चिकित्सा शिविर लगा है। अब हम वहाँ पहुँचे और सौभाग्य से वहाँ हड्डियों के विशेषज्ञ डॉक्टर मौजूद थे। जनरल एनिस्थीसिया देकर उनका कंधा जोडा गया। मैं बाहर चिंता में प्रतीक्षा कर रहा था। उन्हे बाहर लाया गया कुछ देर बाद जब तंद्रा टूटने लगी तो उनकी अवस्था देखकर पसीना छूट गया। अर्धतंद्रा में वो कभी ठहाका लगाकर हंसते थे तो कभी फूटफूटकर रोते थे। मेरे मना करने पर वह आक्रामक होकर उठने लगे। कहने लगे ये जो आठ–आठ विवेक सामने हैं उनमें से तुम असली कौन हो। लगा बाबा का श्राप अब तक टूटा नहीं। फिर वो श्रांत–क्लांत निद्रालीन हुये और उठे तो सब ठीक था। भगवान को लाख धन्यवाद देते हुये हम वहाँ से मसूरी लौटे और इस प्रकार हुई हमारे हिल ट्रैक की इतिश्री। अब मुड़कर देखता हूँ तो लगता नहीं हम ये सब कर आये पर मनुष्य की जिजीविषा और जीवन की सीमा आंकना शायद बहुत कठिन है।

धूप में छाँव

श्रीमती अर्चना जोशी
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

अभी अभी मैंने कावेरी और उसके पति को फोन पर उनकी शादी की पहली सालगिरह पर बधाई दी। दोनों ही बहुत खुश थे। उन दोनों की उस खुशी से मन को बहुत तसल्ली मिली थी। हाल चाल पूछने के बाद मैंने कावेरी से यूँ ही जिज्ञासावश पूछ लिया, "और सुना भई, कोई खुशखबरी"? सुनकर वह पहले हल्के से हँसी थी और मेरे प्रश्न के जबाव में उसने जो कहा था, सुनकर मैं हैरान होने के साथ साथ उसके पति की महानता पर नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सकी।

कावेरी मेरी बड़ी बहन की मँझली बेटी है। कावेरी का दरअसल यह पुनर्विवाह था। वह दिन आज भी कल ही घटी घटना के समान दिमाग में ताज़ा है जब वह मनहूस खबर आई थी कि कावेरी के पति सुहास को पक्षाघात हो गया है। जिसने सुना हाथ प्रार्थना के लिए उठ गए, हे प्रभु ! कुछ अनर्थ न करना। मात्र तैंतीस वर्ष की आयु का सुहास, और कावेरी मात्र अठाइस वर्ष की, गोद में दुधमुँही दस माह की बेटी अक्षरा। उसकी अधिकांश सहेलियों के तो अभी विवाह भी नहीं हुए थे। कावेरी भरे पूरे परिवार की लाडली बेटी। सभी दुआएं कर रहे थे। पंडितों के पास दौड़ पड़े थे, ग्रह नक्षत्र दिखाए, यथासंभव उपाय कावेरी को करने को कहा था। कावेरी ने सब उपाय किए भी। दान पुण्य से लेकर पूजा पाठ तक। इंसान जब भीतर से टूट जाता है तब यही अवलम्ब खोजने लगता है। आनन–फानन उसके माता–पिता रवाना हो गए थे बेटी पर असमय आए संकट की इस घड़ी में उसका मनोबल बढ़ाने। किंतु होता तो वही है जो विधाता को मंजूर होता है। इधर वे घर से निकले उधर दामाद के प्राण। अनहोनी होकर रही और अनर्थ हो चुका था। सात बहनों के इकलौते भाई सुहास को लाख प्रयासों के बावजूद होश में नहीं लाया जा सका। कावेरी के माता पिता तब रास्ते में ही थे। उन्होंने भी विधि की क्रूरता के साक्षात् दर्शन वहीं जाकर किये। इस दुख को सुनकर कोई रूक नहीं पाया। हमने वहाँ पहुँचकर जो दारूण दृश्य देखा हृदय तारतार हो गया। कावेरी के माता पिता और हम सबका रो रोकर बुरा हाल था लेकिन वह पत्थर बनी बैठी थी। आश्चर्य! कि हम उससे चिपटकर चीख चीख कर रो रहे थे, उसे झिंझोड़ रहे थे पर वह जैसे पाषाण बन गई थी। उसका वह सब्र हमें और रूला रहा था। उसके धैर्य की पराकाष्ठा का तो हमें बाद में पता चला जब हमें बताया गया कि अपने पति की मृत्यु की सूचना उसे उस दिन सुबह ही मिल गई थी किंतु वह मौन साधे रही और अपने बूढ़े और बीमार सास–ससुर को इसकी भनक भी नहीं लगने दी। उन्हें कैसे बताती कि जिस इकलौते बेटे को पाने के लिए उसकी सास ने शिव मंदिर में एक टाँग पर रात भर खड़े रहकर तपस्या की थी, अब इस दुनिया में नहीं रहा था। कावेरी ने अपने आँसू पीकर उनके लिए नाश्ता बनाया और अपने हाथों से खिलाया क्योंकि संभावित अनहोनी के प्रति आशंकित होने के कारण पहले ही वे कुछ खा–पी नहीं रहे थे।

इस अनर्थ को वे तब ही जान पाए जब सुहास का पार्थिव शरीर घर लाया गया। वह अपनी सभी जिम्मेदारियों का निर्वहन करती रही थी। अचानक वह सबसे बहुत बड़ी हो गई थी जो अपना दुख भूलकर सबको चुप करा रही थी, संभाल रही थी।

एक दो दिन रो–धोकर हम सब वापस लौट आए थे। हमारा मन उसे छोड़ने का नहीं हो रहा था पर न तो हमारा वहाँ रूकना संभव था न उसे साथ लाना। वहाँ से लौटते समय हमें दरवाज़े पर खड़े होकर विदा करती उसकी वे मौन उदास आँखें आज भी मेरे स्मृति पटल पर ज्यों की त्यों हैं।

लौटने पर सभी निकट संबंधियों और शुभचिंतकों ने कावेरी के पुनर्विवाह की सलाह दी थी। हम सब भी दिल से यही चाहते थे। लेकिन यह इतना सहज नहीं था। एक तो ताजा दुःख और दूसरे इस विषय पर उससे बात करने की हिम्मत भी किसी में नहीं थी।

कुछ महीनों बाद कावेरी के माता पिता ने बदलाव के लिए उसके सास ससुर से उसे देहरादून भेजने का आग्रह किया था। उसकी सास उसे और अपनी पोती अक्षरा को लेकर आई भी। लेकिन हमने महसूस किया कि वह एक असुरक्षा की भावना के साथ साये की तरह बहू और पोती के साथ बनी रहती। शायद उनके मन में कहीं यह भय था कि उनकी बहू और पोती उनसे छिन न जाए। वह किसी भी कीमत पर, अब

खास तौर पर अपने बेटे की निशानी अक्षरा को तो हर्गिज खोना नहीं चाहती थी, जो किसी हद तक स्वाभाविक भी था। किसी तरह मौका देखकर हमने पुनर्विवाह के विषय पर कावेरी से बात की तो वह बोली थी, 'अब शायद मेरे भाग्य में ऐसे ही रहना लिखा है उनकी यादों के सहारे, उनके जाने के बाद ये बूढ़े मेरी ही जिम्मेदारी हैं, इन्हें किसके सहारे छोड़ूँ ? जो अब मेरे ही भरोसे पर हैं, फिर मेरी बेटी को कोई और पिता का प्यार देगा, इस बात की गारंटी क्या कोई दे सकता है? और उसके भविष्य के लिए यह जोखिम मैं नहीं उठा सकती'। उसका दो टूक जबाब सुनकर हम सभी अपना सा मुँह लेकर रह गए थे। वास्तव में इस बात का आश्वासन कोई दे भी नहीं सकता था। हालाँकि यह उसका दिल ही जानता होगा कि उस छोटी सी उम्र में पति का छिन जाने से उस पर क्या बीतती होगी। वह इस तरह अपने पति की यादों से जुड़ी थी कि उसे पुनर्विवाह के लिए तब तक तैयार नहीं किया जा सकता था जब तक कि कावेरी उस पात्र में स्वयं ही कोई आकर्षण न महसूस करे और वे सब संभावनाएं स्वयं न महसूस कर ले जिनसे वह आश्वस्त हो सके कि उसके साथ उसका और उसकी बेटी का भविष्य एकदम सुरक्षित है। हम समझ गए थे कि किसी अनजान से कावेरी कभी भी विवाह के लिए तैयार नहीं होगी। लेकिन यदि उसे स्वयं ही धीरे–धीरे परखने के बाद कोई अच्छा और उपयुक्त लगने लगे, जिस पर उसका विश्वास जम जाए उसके लिए स्वीकृति देना शायद आसान हो। इसलिए धैर्य के साथ समय के साथ दुख से उबरने के लिए समय देना ही उपयुक्त लगा था।

लगभग साल भर के भीतर ही कावेरी के ससुर भी गुजर गए थे। जिससे उसकी जिम्मेदारी और बढ़ गई थी। यूँ तो उसकी सात ननदें थीं जो उसकी सास की जिम्मेदारी स्वयं लेकर अपनी माँ को कावेरी के भविष्य का वास्ता देकर समझा सकती थीं। लेकिन किसी का भी ध्यान इस ओर नहीं गया था।

समय अपनी गति से चलता है। देखते ही देखते चार वर्ष निकल गए थे। एक दिन अचानक दीदी का फोन आया, वे बहुत उत्साहित स्वर में बोली रही थीं, 'सुन एक अच्छी खबर है, कावेरी पुनर्विवाह के लिए तैयार हो गई है'। सुनकर मेरी आँखों में खुशी के आँसू आ गए और मैंने प्रश्नों की बौछार सी कर दी, 'कौन है? कहाँ का है? कैसा है?' वगैरह वगैरह। वे भी हर्षातिरेक में बोल नहीं पा रही थी। बोलीं, 'वहीं का है, उसका नाम संयम है, अपनी बिरादरी का ही है, अविवाहित है। बल्कि वहीं की रिश्तेदारी में है, वो सबको और सब उसे अच्छी तरह जानते हैं। अच्छी नौकरी है, अच्छा घर–बार है। सबसे बड़ी बात यह है कि कावेरी की बेटी उससे बहुत हिली मिली है और वह भी उसे बहुत प्यार करता है'। उन्होंने भी मुझे एक साँस में मेरे प्रश्नों के उत्तर दे दिए थे। फिर भी मेरे मन में ढेरों और प्रश्न थे, चिंताएं थीं, जिज्ञासाएं थीं जिन्हें जानकर मैं पूरी तरह आश्वस्त होना चाहती थी ताकि भविष्य में कोई दुख उसके पास भी न फटके। सबसे बड़ी चिंता उसकी सास को लेकर थी कि उन्हें इस विषय में कैसे बताया जाए, या उनकी अनुमति कैसे ली जाए, जैसी कई बातें हमें परेशान कर रही थीं। हम घर में इस बात को लेकर चर्चा कर रहे थे कि मेरा छोटा बेटा अचानक बोल पड़ा, 'ममा, आप लोग बेकार ही परेशान हो रहे हो, सीधी सी बात ये है कि दीदी की सास तो अपना जीवन लगभग जी चुकीं। दीदी अपना पूरा जीवन कैसे बिताएगी और उन्हें भी इस बात का थोड़ा अहसास होना चाहिए कि उनके बाद दीदी का क्या होगा? आप लोगों को दीदी से ज्यादा चिंता उनकी सास की हो रही है'। दरअसल हम उसकी सास को लेकर भावुक हो रहे थे। बेटे के उस कथन ने एकाएक हमें भावुकता से उबार लिया। जब मैं दीदी से मिलने पहुँची तो उन्होंने विस्तार से मुझे लड़के के बारे में बताया और मेरी बाकी शंकाओं का समाधान भी कर दिया। रिश्तेदारी में होने के नाते घर में उसका पहले भी आना जाना था इसलिए कावेरी की सास भी उससे अच्छी तरह परिचित थी और उसे काफी पसन्द भी करती थी। कावेरी की कर्तव्यपरायणता और उसके सौम्य व्यक्तित्व से वह पहले ही प्रभावित था। अब उसकी बच्ची के सिर से पिता का साया उठ जाने से उसे अक्षरा से सहानुभूति के साथ साथ लगाव भी हो गया था। वह अक्सर आता और अक्षरा के साथ खेलता, यदा कदा घुमाने भी ले जाता। उसकी सास को भी संयम का आना अच्छा लगता क्योंकि अक्षरा उसके साथ बहुत खुश रहती और कावेरी अपनी बच्ची की खुशी में खुश रहती। वह उससे भी बातचीत करता, इधर उधर की बातें कर सबको हँसाता, जिससे थोड़ी देर के लिए घर का माहौल बदल जाता, सब अपने सब दुख भूल जाते। कावेरी को भी संयम के निश्छल स्वभाव और हँसमुख शालीन व्यक्तित्व ने भीतर कहीं छू लिया था। संयम ने अचानक एक दिन कावेरी से बिना किसी भूमिका के सपाट शब्दों में प्रस्ताव रख दिया, 'कावेरी मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ, अक्षरा को पिता के रूप में सारी खुशियाँ देना चाहता हूँ जो उसे मिलनी चाहिए'। कावेरी के लिए यह प्रस्ताव अप्रत्याशित था, कुछ देर तो उसके मुँह से आवाज ही नहीं निकली। उसका कारण यह था कि एक तो वह अविवाहित था, और हर तरह से योग्य होने के नाते उसे लड़कियों की कोई कमी भी नहीं थी। तो फिर कहीं यह मात्र सहानूभूति तो नहीं है या भावावेश में लिया गया अचानक कोई निर्णय। संयम ने तुरंत उसकी शंका और मनरूस्थिति को समझ लिया था और उसने कहा, 'मैं तुम्हारे मन की बात को समझ रहा हूँ। कावेरी, जानती हो मैंने एक प्रण किया है कि

हाल तो मैं विवाह करूँगा ही नहीं, यदि किया भी तो किसी ऐसी ही लड़की का जीवन संवारूँगा। यह कोई दया या करूणा में अचानक लिया गया फैसला नहीं है, यह मेरा पूर्व निर्धारित संकल्प है। मेरे माता–पिता की भी तुम चिंता मत करो वो मेरे इस फैसले का आदर करेंगे क्योंकि वे भी समाजसेवा से जुड़े हैं और उनमें से नहीं जो अखबारों में नाम छपाने या दुनिया को दिखाने मात्र के लिए समाजसेवा का ढोंग करते हों, क्योंकि यह भावना भीतर से आनी चाहिए। कावेरी काफी दिनों तक द्वंद्व में फँसी रही। उसे अपनी सास की भी फिक्र थी। उसने किसी से कुछ नहीं कहा और स्वयं ही सब बातों का विश्लेशण करती रही। लेकिन संयम के विचारों ने कावेरी को सोचने पर विवश कर दिया। कावेरी भी इन चार वर्षो में बड़ी मुश्किलों से गुजरी थी, उसने अकेलेपन की त्रासदी को भुगता था, वह यह भी जान गई थी कि अक्षरा की परवरिश अकेले करना बहुत ही कठिन है। उस पर उसके वे बालसुलभ प्रश्न उसे बहुत परेशान करते थे। 'मम्मी मेरे पापा कहाँ हैं ?' वह कहती, 'कहीं गए हैं'। तो फिर प्रश्न करती, 'कब आएंगे? बताओ न मम्मी, वे जल्दी क्यों नहीं आते, मुझे उनके साथ ईशा की तरह स्कूल जाना है, उनके साथ खेलना है'। कभी कभी वह जिद पकड़ लेती। उसके यह बालसुलभ प्रश्न उसे बहुत रूलाते और उसके दुख को और बढ़ा देते। उसकी जिंदगी भी चारदीवारी में सिमट कर रह गई थी। कोई नहीं था आसपास जिससे वह अपने दिल की बात कर सके जो उसे और उसकी जरूरतों को समझे या जिससे वह हँस बोल कर अपना मन हलका कर ले। उसने काफी सोच विचार के बाद और अक्षरा के भविष्य को देखते हुए अपने माता पिता से सलाह माँगी थी। उसके माता पिता के लिए भी तुरंत कोई निर्णय लेना आसान नहीं था। खैर! उन्होंने घर में सबसे विचार विमर्श के बाद तय किया कि लड़के और उसके माता पिता से मिलकर ही सब कुछ तय करना ठीक होगा। कावेरी का पुनर्विवाह के प्रति सकारात्मक होना ही हमारे लिए बड़े सुकून और खुशी की बात थी। अब हम आगे बढ़ सकते थे। हम सब बहुत खुश थे और मन ही मन उस नेक इंसान और उसके परिवार की सराहना कर रहे थे जो हमारी बेटी को उसकी बच्ची के साथ अपनाने जा रहा था। दरअसल यह बात हजम करनी बहुत ही कठिन प्रतीत हो रही थी। क्योंकि अक्सर ऐसा होता है कि हम चाहते हैं कि इस देश में भगत सिंह जैसे लोग पैदा हों, पर मेरे घर में नहीं, पड़ोसी के घर में। क्योंकि हममें इतनी हिम्मत नहीं है कि बेटे को खुशी खुशी कुर्बान कर सकें। हम उस नेक लड़के के तो गुणगान कर रहे थे जो हमारी बेटी को अपनाने जा रहा था लेकिन यही कदम यदि हमारा बेटा उठा लेता तो वही बेटा कुल डुबोने वाला कहलाता। यह इंसानी फितरत है, बड़े बड़े भाषण बहुत लोग देते हैं लेकिन अमल में कोई बिरले ही लाते हैं।

कावेरी के माता पिता इस नए संबंध पर बातचीत करने तथा लड़के और उसके माता पिता से मिलने के लिए निकल गए थे। कावेरी की सास ने सहर्ष स्वीकृति दे दी थी क्योंकि वे संयम को बहुत अच्छी तरह जानती थीं और उन्हें सबसे बड़ी संतुष्टि इस बात को लेकर थी कि कावेरी और अक्षरा शादी के बाद उसी शहर में रहेंगी और वे उनसे जब जी चाहे मिल सकेंगी क्योंकि इसका आश्वासन संयम ने उन्हें स्वयं दिया था। उसके बाद संयम के माता पिता सहित पूरे परिवार से मिलने के बाद और पूर्णतरू संतुष्ट होने के बाद विवाह की तारीख तय कर दी गई थी।

हम गिने चुने लोग भी उस पुनर्विवाह समारोह में सम्मिलत होने पहुँचे थे। संयम स्वयं हमें स्टेशन पर लेने आया था, न जाने क्यों उसे देखते ही विश्वास सा हो गया कि यह हमारी कावेरी के लिए एकदम सही पात्र साबित होगा।

उनकी तरफ से भव्य आयोजन का प्रबंध था। विवाह समारोह के दौरान संयम के परिवार के सभी सदस्यों के चेहरे पर कोई शिकन न होकर आंतरिक खुशी झलक रही थी। परिवार के सभी सदस्यों ने खुले दिल और पूरे सम्मान के साथ कावेरी और उसकी बेटी को अपना लिया था। हम अभिभूत थे यह सब देखकर कि अक्षरा बड़े हक से सबसे अपने रिश्ते उनसे बना रही थी और वे उसका अधिकार समझकर उसकी फरमाइशें पूरी कर रहे थे। सब बुआएं, चाचा, दादा, दादी उसके साथ नाच गा रहे थे। वह अपने पापा को पाकर इतनी खुश थी जैसे उसे संपूर्ण संसार मिल गया हो। हमें वर्षो बाद कावेरी के चेहरे पर वह सुकून और खुशी दिखी थी जिसकी हमें अपेक्षा थी। लौटते समय जब हम कावेरी से मिलने उसके घर गए तो हमने देखा कि उसने वहाँ भी सब कुछ इस तरह संभाल लिया है मानो वह वर्षो से इस घर की बहू हो। हम सब काफी आश्वस्त थे।

आज विवाह की पहली सालगिरह पर मेरे छेड़ने पर कावेरी ने मुझे मेरे प्रश्न के जबाब में बताया कि संयम का यह कहना है कि 'हमारी एक ही बेटी है– अक्षरा! और हमारी एकमात्र यही संतान है बस। दूसरे बच्चे की कोई बात भी न करे। इस विषय पर कोई मुझे न तो कोई समझाने की कोशिश न करे और न ही बहस। हमें इसी का भविष्य बनाना है'। सबके लाख समझाने पर भी वह इस बात पर अड़ा है। अक्षरा को अपना नाम उसने पहले ही दे दिया था और बकायदा सारे दस्तावेज़ों में आधिकारिक तौर पर अपनी बेटी घोषित कर

फ़लसफा जिन्दगी का

सुश्री अनिता पाल
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

जिन्दगी खूबसूरत फूल है, इसे मुरझाने से बचा लो यारो।
जो लुट गया है गुलशन उसे बहारों से सजा लो यारों,
ये जिन्दगी खूबसूरत फूल है, इसे मुरझाने से बचा लो यारो।

आज वक्त नही इसे जीने के लिये।
बस चुपचाप किसी तरह जिये जा रहे हैं।
संवेदना का निर्झर तो कब का सूख चुका,
बस मशीनों की तरह काम किये जा रहे हैं।
खुद के बनाये दायरों में घिर गयी जिन्दगी।
है हसीन ख्वाब यह, इसे आँखों में बसा लो यारो,
जिन्दगी सुगंधित फूल है, खूशबू को साँसों में समा लो यारों।

बरसों मिजाजे रूत सह कर पेड़ बड़ा होता है,
बन कर धरा का श्रृँगार तब सुशोभित होता है।
हारकर छोड़ना रास्ता ये कोई रास्ता नहीं होता,
जिन्दगी ऐसा लिबास है, चाहकर नया नही होता।
जलते हैं चिराग उनके, जो हवाओं में निकलते हैं,
लिखे जाते हैं किताबों में, जो मुश्किलों में सम्भलते हैं।

निराशाओं के तिमिर में आशा के दीप जलाओ यारों,
जिन्दगी खूबसूरत फूल है, कुम्हलाने से बचाओ यारो।

भीख न समझो इसे, जिन्दगी ईश्वर का वरदान है,
खुदा का अज़ीम नजराना है, जीने का फरमान है।
फ़कत एक सफर नही, खूबसूरत एहसास है जिन्दगी,
कभी सहरा की तपिश, तो कभी मधुमास है जिन्दगी।
हसरतों का पिटारा है, उम्मीदों का गुलदान है,
मुश्किलों के झंझावत में हौसलों की उड़ान है।
बंदिशों के पहाड़ से नई राह का आगाज है ।
रूकावटों के तूफान में पार जाने का अंदाज है।
हर मोड़ पे रंग बदलती है, नया मुकाम बनाती है,
कभी खामोश रहती है, कभी बिन कहे कुछ कह जाती है।

कभी फूलों की डगर तो कभी काटों पर चलती है,
जीवन के अनगिनत रंग दिखाती है जिंदगी।
जिन्दगी खूबसूरत फूल है, इसे मुरझाने से बचा लो यारो।

चुका था। आगे भी वह सब कुछ उसी के लिए करना चाहता है। वह अपनी बेटी को जी जान से प्यार करता है। बिन कहे ही बेटी के मन को इस तरह समझ जाता है जो कि कभी कभी जनक पिता भी नहीं समझ पाते। कावेरी तो कभी उसे डॉट भी देती है पर वह अक्षरा की कोई बात नहीं टालता। अक्षरा भी कावेरी से ज्यादा पिता के करीब है। कावेरी और अक्षरा की खुशनसीबी है कि उन्हें संयम जैसे इंसान का संरक्षण मिला।

कावेरी ने भी संयम की सभी जिम्मेदारियों को सहर्ष अपना लिया है। वह भी उनके परिवार में घुलमिल गई है। घर की बड़ी बहू होने का पूरा गौरव उसे हासिल है और वह उनके हर सुख दुख में शामिल है। संयम के परिवार के लोगों को संयम के चयन पर कोई पछतावा नहीं है। हमें भी संयम को देखकर लगता है कि दुनिया में आज भी अच्छे लोग हैं। वरना कभी कभी लगता है कि अच्छाइयाँ दुनियाँ से लुप्त हो गई हैं। लेकिन मैं यह भी सोचती हूँ कि मुट्ठी भर इस तरह के लोगों से ही दुनिया चल रही है क्योंकि एक अच्छाई हजार बुराइयों पर भारी है। कुछ इस तरह के अच्छे लोग रेगिस्तान में विशाल वृक्ष समान हैं जो तपती धूप में छाँव बनकर कावेरी और अक्षरा जैसे लोगों को सुकून भरी छाया देते हैं।

माँ की वेदना

श्रीमती कला नैथानी
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

काले–काले बादलों से झमाझम बरसती बारिश में मंजरी कंधे में वही थैला लेकर, जिसे वो उस रोज भी थामे हुई थी, अपनी दो जून की रोटी के लिए निकल गई। उसकी न कोई शनिवार न ही कोई रविवार की छुट्टी थी, बल्कि यही दो दिन उसकी आमदनी बढ़ाने वाले दिन थे और दिन से ज्यादा राहगीर इन दो दिन रहते, जो कि उसकी आमदनी में काफी हद तक इजाफा कर देते, मंजरी ने खुद मुझे इस बारे में बताया।

काली साड़ी, मैल से सना हुआ बदन, पर फिर भी मन एकदम निर्मल, बस वह इतना ही जानती थी कि जाकर कुछ कमा सकूं, जिससे जीवन कट सके। मैंने कितनी ही बार चाहा कि मैं उसको अपने साथ ही घर में रख लूं, पर ऊँच–नीच के बंधनों में जकड़े समाज की सोच मैं साहस नहीं कर पाई, कि कल कोई इसके बारे में जान लेगा, और एक भिखारिन को घर में देख मेरे घर का पानी तक पीना छोड़ देंगे, मौसम ठंडा होने के कारण उसका घर से निकल कर जाना मुझे बड़ा अजीब लग रहा था, अपनी नाश्ते की प्लेट मैंने उसको थमा दी, जिसको खाकर, अपनी प्यारी सी मुस्कुराहट के साथ वह मुझे नमस्ते कहकर अपने रास्ते चल दी।

अक्सर कोई व्यक्ति मदद के लिए कराह होता है, और हम फिर पछताकर रह जाते हैं, जब वह मदद न मिलने पर कराहते हुए ही दुनिया छोड़ जाता है, पर मैने मंजरी की कराह को और उसकी वेदना को महसूस किया। मंजरी को साथ लाने के वक्त से, और आज तक भी उसके व्यक्तिगत मामले में खोजबीन करने की मैने कोई जरूरत न समझी, अगर आज मैं उसको गैराज में जगह न देती तो न जाने, आज वह इस मुस्कुराहट से जी पाती भी या नहीं, पर उसकी इस खुशी में मेरे दिल को बहुत राहत मिल जाती कि मैं उस अबला के कुछ तो काम आई हूँ।

मैंने उसे घर के खाली गैराज में आश्रय दे दिया, पति की व्यस्तता के चलते मुझे उसका साथ अच्छा लगता, शाम को आने के बाद वो सड़कों के रोचक छोटे–छोटे किस्से लगाने शुरू कर देती, वो सब सुनते वक्त अच्छा गुजरता था।

बारिश कुछ कम जरूर थी, पर बादल छंटने का नाम ही नहीं ले रहे थे। शाम के 5:00 बज गई, एकटक मेरी आंखे उसका इंतजार कर रही थी, कि वो आती तो, मैं उसके भरोसे घर छोड़ के मार्केट चली जाती कुछ सामान लाने के लिए।

अचानक उसको आते हुए देखकर, मैं उसके पास आई और वो ठंड के मारे ठिठुर रही थी।

मैंने कहा आज ठंड में नहीं भी जाती तो क्या जाता, अगर बीमार हो गई तो?

वह चुपचाप ही रही, उसने इसका कोई भी जबाब नहीं दिया।

मैंने कहा– मंजरी मैं मार्केट जा रही हूँ, सामान के लिए, तुम घर पर ही हो ना अब?

अच्छा दीदी, हाँ मैं हूँ।

बोल दो, अगर तुम्हारे लिए भी कुछ लाना हो तो, शर्माओ नहीं।

नहीं दीदी, आपने मेरे लिए जो कुछ किया है, वो ही अपने आप में कुछ कम है क्या?

न जाने क्यों, मुझसे आज मंजरी आंखें चुरा रही थी, जो आत्मविश्वास एक लम्बे समय से था, आज वैसा आत्मविश्वास उसके चेहरे से नहीं झलक रहा था।

घर लौटने पर मैंने सामान गाड़ी से उतारा और फिर जहां मैने उस अबला को आश्रय दिया था, उस गैराज की तरफ गई।

उसकी आंखों के कोर पर आंसू टिके थे, मुझे देख वह सकपका गयी और आंसुओं को छुपाने की नाकाम कोशिश करने लगी। उस दिन भी उसकी आंखों में आंसू थे।

उस दिन वो रो–रोकर राहगीरों से मदद मांग रही थी, अपना पेट पालने के लिए नहीं, बल्कि इंसानियत को नोचने वाली आंखों से बचने के लिए, मैंने सुना तो, उसके पास जाकर पता चला कि किसी ने उसको अपमानजनक शब्द कहे जिस पर वह बिफर उठी थी, उसके पेशे में ऐसी आंखें रूकावट बन जाती थी, भीख मांगकर खाना उसका पेशा था, पर इंसानियत क्या होती है, इसका भी उसे तर्जुबा था, जो आज तक उससे बात करने से मुझे पता चल गया था।

पर आज उसका उदास चेहरा मुझसे कुछ बताने के बजाए, कुछ छुपा रहा था, इसलिए मैंने ही जानने की उत्सुकता दिखाई, पहले वो चुप ही रही, पर उसने जो कुछ भी मुझसे बताया सुनकर आज मेरा माथा ठनक गया। उसकी ममता के मारे बरसते आंसू एक उफ में जाकर रूके, जब कहते–कहते उसका गला रूंध गया।

मैं उसके लिए पानी लेकर आई, और उसका मन बहलाया कि मंजरी, ये लाईफ ऐसी ही होती है,

उतार–चढ़ाव हमारी जिंदगी में, उम्र से कई गुना ज्यादा भरे होते हैं, और कभी तो इनके सामने बहुत लाचार हो जाते हैं हम।

इस बीच मेरे मन में कई सवालों का क्रम आता और जाता रहा, मंजरी का पति कौन है? और मंजरी बच्ची को उस रोज अपने साथ यहां क्यों नहीं लाई थी, मेरे साथ आते वक्त, पर मैं चुप रही और मंजरी से इस बारे में कुछ भी बात नहीं की, मैं नहीं चाहती थी कि उसके मन को उसका अतीत याद दिलाकर कहीं और दुखी न कर दूं। और फिर क्या उसका वर्तमान ही काफी न था उसको समझ पाने के लिए।

रूंधी हुई आवाज में मंजरी अब भी अपना दुख मुझसे साझा किए जा रही थी।

दीदी, उसकी परवरिश के बारे में सोचकर मैं उसे कूड़े के ढेर में रखे रहती थी कि कोई पैसे वाला आएगा, और ले जाएगा, जी करता है कि जाऊँ और वापस ले आऊँ अपनी प्यारी बच्ची को।

उसी कूड़े के ढ़ेर के पास बैठकर मैं कमाती भी, और इंतजार करती कि किसी अमीर की नजर उस पर पड़े, जो उसे इस पेशे से दूर अच्छे घर में ले जा सके, सांझ में घर लौटती तो, उसको ढ़क कर आती कि कहीं कुछ न हो उसे।

दीदी मैंने देखा उनको उन्होंने मेरी बच्ची को कूड़े से उठाया और उसे प्यार से कार में ले गए वो लोग।

पर मैं भी एक मां हूँ, इसलिए गला भर आता है, याद आने पर। मां की ममता से मैं भी अछूती नहीं रही दीदी, मेरी ममता उस मां से कम नहीं, जो अपनी बेटी को हरदम अपनी नजर के सामने रख परवरिश कर सके, पर मेरी मजबूरियों के कारण यह कदम उठाना पड़ा मुझको। अपनी रोजी–रोटी इतनी नहीं थी कि मैं उसके लिए अच्छे सपने बुन सकती थी, इसलिए मजबूर हो गई मैं।

आज मंजरी ने मेरे दिल में ममता का वही फूल अंकुरित कर दिया था, जब मेरी दो वर्ष की बेटी बीमार होकर गुजर गई थी, हालांकि उस समय मेरे पति ने मेरा पूरा–पूरा साथ दिया, पर मंजरी का कोई न था, सिर्फ मैं ही उसके लिए एकमात्र सहारा थी।

उसकी रोती आंखों ने मुझे झकझोर कर रख दिया, रो–रोकर निढ़ाल सी वहीं पर बेहोश हो गई वो। बेहोशी में बुदबुदाहट में वह कुछ नम्बर बोल रही थी, मैने उसको अलटा–पलटा पर उसे कोई सुध न आई।

मैंने उसके कहे टूटे फूटे नंबरों को कागज पर नोट किया कि कहीं ये उस गाड़ी के नम्बर तो नहीं, जिससे उसकी बेटी उससे दूर ले जाई गई है।

पूछताछ से पता चला कि मेरा अनुमान सही है, वह कार का ही नम्बर था, मैने गाड़ी के ऑनर की सारी डिटेल निकलवाई, वो कौन हैं, कहां के हैं, इत्यादि।

आज मैं पहली बार मंजरी के प्रति पूरी तरह कृतज्ञ थी, घर खुला ही छोड़ निकल पड़ी उस ममता की खोज में, जिसके लिए आज एक बेबस मां उदासी में गुम थी।

सांझ होने से पहले मुझे वापस भी लौटना था, इसलिए ड्राईवर को उसी हिसाब से रफ्तार बढ़ाने के लिए कहा।

ड्राईवर की मदद ने मुझे उस लक्ष्य के बिल्कुल करीब पहुंचा दिया, मन में थे कई सवाल कि क्या ये दम्पति मान जाएंगे मेरी बात को और वापस कर देंगे मंजरी की मासूम बच्ची को।

मैं उस जगह पर गाड़ी से उतरी, मुझे देखते रह गये वो, पर मेरी नजर एकटक उस मासूम बच्ची को मस्त होकर खेलते हुए देख रही थी, जिसे खबर नहीं थी कि उसकी मां उसके लिए कितना तड़प रही है, उससे दूर होकर।

मैंने चाहा जल्दी से उसे अपनी गोद में ले लूं, लेकिन उन्होंने इसके पहले ही मेरे बारे में पूछना शुरू कर दिया।

मैंने धैर्य से उनकी हर एक बात को सुना और उनको बच्ची के बारे में सब कुछ बता दिया, बात करने के तरीके से ही मुझे समझ आ गया कि ये शिक्षित लोग हैं।

मैडम, बच्ची की ममता के वश में होकर ही हम कूड़े से इसको उठा ले आए, हमारी अपनी संतान नहीं है, सोंचा था इसको अपना बनाएंगे, लेकिन न बना सके, यह कहते हुए उस मां की आंखों में आंसू छलक उठे और मासूम को उठाकर मेरी गोद में दे दिया।

मुझे मंजरी की ममता पुकार रही थी, गाड़ी में बैठ सोचती रही कि बेबस मां कौन थी, मंजरी या ये जो उसके न होकर उसके बन गये थे, मेरे घर पहुंचने पर मंजरी ममता में पागल सी होकर दौड़ते हुए मेरे पास आकर बेटी को गोद में लेते हुए बोली, दीदी ये मेरी ही है ना।

हां, तुम्हारी ही बेटी है यह।

आज मैंने पहली बार उसको बहुत करीब से जाना था, इस कारण मन पक्का कर लिया कि अब वो और उसकी बेटी गैराज में नहीं, बल्कि मेरे ही परिवार के सदस्य होंगे। मेरा ये निर्णय समाज कि नजर से नहीं मेरी अपनी नजर से लिया गया, आज वो भिखारिन नहीं और न ही एक अबला थी, बल्कि एक औरत और एक मां थी, प्यार और ममता से ओतप्रोत।

मुझे मेरे जीने का सहारा मिल गया और मंजरी को एक नया जीवन, वो घर के कामों में मेरा ज्यादा से ज्यादा हाथ बंटाती, उसका रहन–सहन और पहनावा आज सब–कुछ बदल चुका था, और धीरे–धीरे मंजरी की बेटी का शिक्षित जीवन भी एक–एक सीढ़ियों को लांघकर अपने मुकाम पर चलता चला जा रहा था।

एक गुमनाम पेड़ की कहानी

श्री सुरेश चन्द्र
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

समय के साथ साथ इन्सान की फितरत और नीयत बदलती है। इस मामले में उसने कुदरत को भी नहीं बख्शा। पिछले ढ़ाई दशकों में जब यह हरा भरा शहर सीमेंट और कंक्रीट के जंगल में बदल गया तो तथाकथित पर्यावरण प्रेमियों को पेड़ों की सेहत की याद आई। इसी परिप्रेक्ष्य में दैनिक जागरण के समाचार संवाददाता श्री भास्कर उप्रेती ने संस्थान से सम्पर्क साधा और फिर मुझसे दूरभाष पर देहरादून के प्राचीन वृक्षों के विषय में जानकारी मांगी। मैने उन्हे कुछ वृक्षों और उनकी स्थिति के विषय में जानकारी दी। इसपर उन्होने सुविधा के दृष्टिकोण से एक समारोह आयोजित करने के लिए सुझाए गए वृक्षों में से वर्तमान में शताब्दी संग्रहालय परिसर में स्थित रबर (Ficus elastica) वृक्ष का चयन किया। अब समारोह हुआ या नहीं, इसकी तो मुझे जानकारी नहीं, लेकिन उपर्युक्त वृक्ष के साथ जुड़ी स्मृतियों और देहरादून के रंगमंच के इतिहास की जानकारी मैं पाठकों के साथ से साझा करना चाहूंगा।

यदि वर्तमान वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून को वानिकी शिक्षण का मक्का कहा जाता है तो निश्चित ही यह कोई अतिश्योक्ति नहीं है किन्तु आज देहरादून शहर के परि दृश्य में शताब्दी संग्रहालय जो पूर्व में उत्तरी वनराजिक महाविद्यालय का भाग था और उससे भी पूर्व भारत में वानिकी का जन्म स्थान था, को वानिकी शिक्षण का गुरुकुल भी कहा जाए तो यह अकाट्य सत्य है। इसी गुरुकुल की स्थापना सन् 1865 में सर ब्रेन्डिस ने की थी, फिर यह गुरुकुल अपना आकार बढ़ाता हुआ चाँदबाग से सफर करता हुआ वर्तमान स्थल में वन अनुसंधान संस्थान के रुप में प्रकट हुआ। कालान्तर में उत्तरी एवं दक्षिणी वन राजिक महाविद्यालयों की स्थापना हुई। दक्षिण में कोयम्बटूर और उत्तर में देहरादून के वन अनुसंधान संस्थान परिसर में। द्वितीय वर्ष के प्रशिक्षणार्थी वन अनुसंधान संस्थान परिसर में और प्रथम वर्ष के प्रशिक्षणार्थी शहर के मध्य वर्तमान शताब्दी संग्रहालय परिसर में प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे। स्वाभाविक है इस स्थल पर अनेक प्रजातियों के वृक्ष रोपे गए होंगे। देवदार एवं बांज तक के विकसित वृक्ष यहां पर मैने देखे हैं। इन्ही वृक्षों में मुख्य भवन के दक्षिण पूर्व में बांज का एक वृक्ष अब भी उगा हुआ है।

मेरा सौभग्य रहा कि बचपन और किशोरावस्था के मध्य के दस खूबसूरत साल मैने इसी परिसर में बिताए। मेरे पिता श्री कन्हैया लाल शर्मा यहां केयर टेकर के पद पर कार्यरत थे। उस जमाने में सर्व श्री गोगा सिंह, राम नारायण, भूपाल सिंह, गोरखू और नानकचंद जैसे सिद्धहस्त माली इस परिसर की खूबसूरती को चार चांद लगाते थे। श्री तुलसी राम और श्री लाखन सिंह जो ग्राउन्ड मैन के पद पर कार्यरत थे, क्रिकेट की पिच और टेनिस कोर्ट की देखभाल करने में सिद्धहस्त थे।

अब इस रबर के वृक्ष की बात भी कर लें। अपने जमाने के प्रसिद्ध रंगकर्मी एवं निर्देशक बंशी कौल के नेतृत्व में खुले मंच से नाट्य मंचन का अभिनव प्रयास किया गया और धर्मवीर भारती के प्रसिद्ध नाटक "सूरज का सातवां घोड़ा" का इस वृक्ष के नीचे खुला मंच एवं दर्शक दीर्घा बनाई गई। कानपुर से "आहूजा लाईट एन्ड साउन्ड" द्वारा ध्वनि एवं प्रकाश सृजन की सेवाएं दी गई।

1979 में ही इस प्रयोग और मंचन की सफलता से प्रेरित होकर वातायन ने ब्रेलोत ब्रेख्त के नाटक "थ्री पेनी ओपेरा" के मराठी अनुवाद "तीन पैशाच्या तमाशा" जिसे विजय तेन्दुलकर द्वारा अनुदित किया गया था और आपार सफलता मिली थी का पुनः हिन्दी रुपान्तरण कर "तीन टके की नौटंकी" का मंचन किया और अपार सफलता मिली। इस नाटक के मुख्य पात्र की भूमिका सतीश चाँद एवं हिमानी भट्ट (वर्तमान में हिमानी शिवपुरी) ने की थी। देहरादून के प्रसिद्ध रंगकर्मी अशोक चक्रवर्ती (दादा) इसी नाट्यमंच से जुडे थे। यहां उल्लेख करना होगा कि थियेटर के प्रति लोगो की अभिरुचि उत्पन्न करने का श्रेय "सूरज का सातवां घोडा" के मंचन को जाता है, जिसका मंचन खुले मंच से इसी वृक्ष के नीचे हुआ था।

शताब्दी संग्रहालय परिसर में स्थित रबर वृक्ष

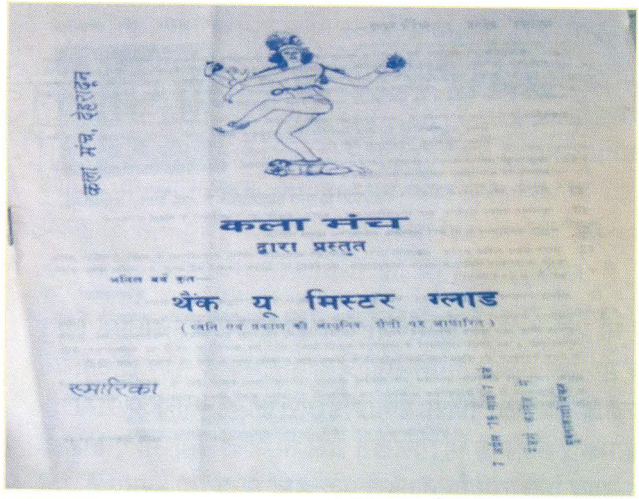

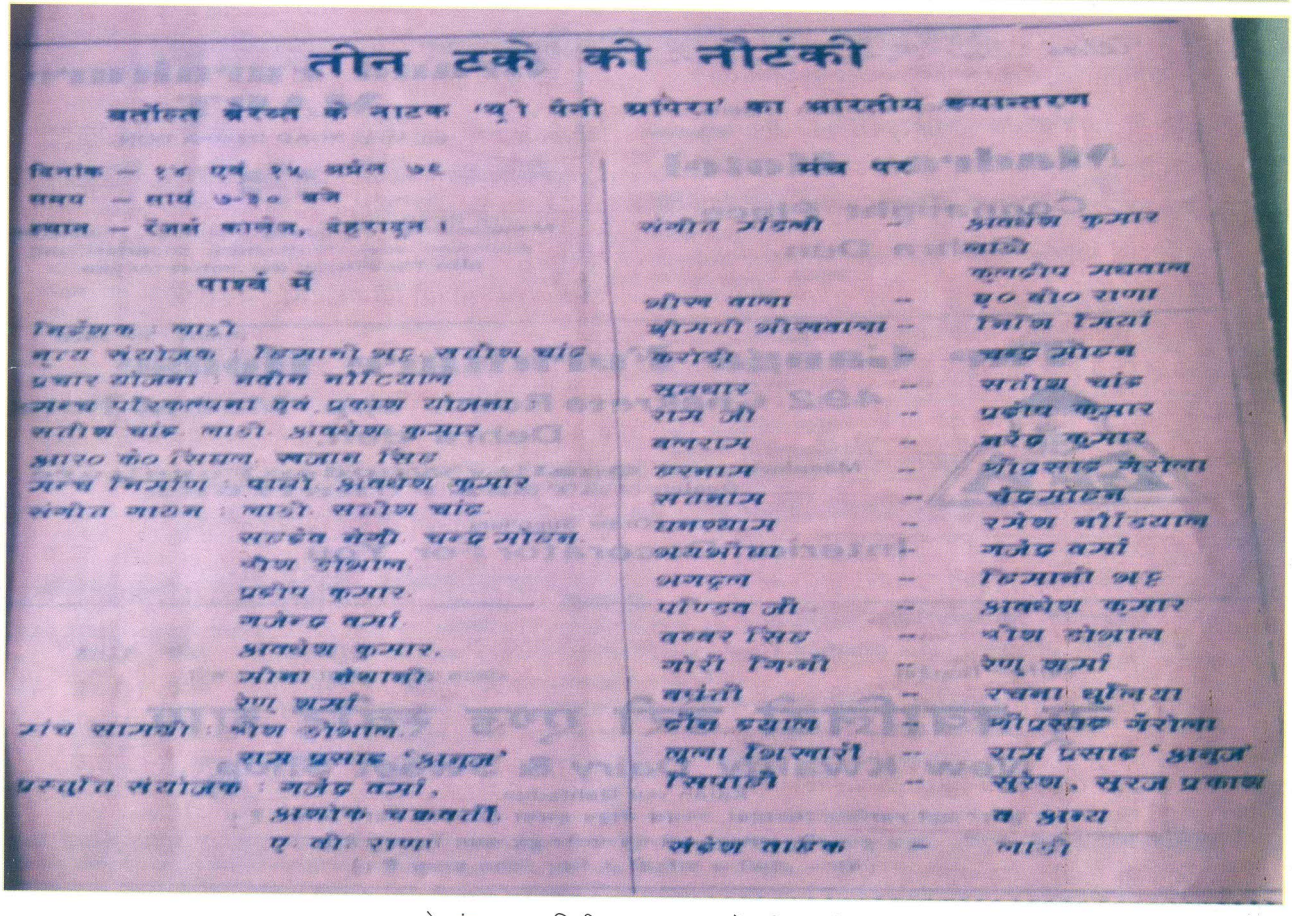

खुले मंच पर अभिनीत कुछ नाटकों की स्मारिकाएं

यह बात अलग है कि न तो तब और ना ही अब तक इस वृक्ष की खूबसूरती और महत्व को मान्यता दी गई और ना ही कभी इसका उल्लेख हुआ है। हां इन लकीरों के माध्यम से मैं, देहरादून के रंगमंच के सफर में इस पुराने अकेले और शांत वृक्ष की भूमिका की याद पाठकों को जरुर दिलाना चाहूंगा।

ओ माँ तुझे सलाम

श्रीमती रोशनी चौहान
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

माँ एक ऐसा सरल शब्द है जिसे हर कोई समझता है किंतु फिर भी इस शब्द की परिभाषा देना असंभव है – *गिरा अनयन नयन बिनु बानी।* जिस प्रकार ईश्वर को अनंत कहा गया है, उसी प्रकार अनंत है माँ। लिखते चले तो अन्त नहीं, माँ एक शब्द में ही बहुत कुछ समाया है। इस एक शब्द में दुनिया बसती है, यह अनंत ब्रहमाण्ड है। माँ एक ऐसा कोमल भाव है कि जिसके सामने पुष्प की कोमलता भी हीरे की कठोरता प्रतीत होती है।

माँ जो दृष्टि में आती है और माँ जो हृदय की धड़कन में, रोम–रोम में समायी है, एक ही है या अलग–अलग कुछ कह पाना कठिन है। इसको सिर्फ अनुभव किया जा सकता है। माँ एक एहसास है, और एक यथार्थ भी है। जो चारों ओर भीतर और बाहर इस प्रकार व्याप्त है कि बिना उसके किसी अस्तित्व की कल्पना ही संभव नहीं है। हर किसी को माँ का एक अलग ही रूप दिखता है किंतु फिर भी वह एक जैसा ही होता है। श्री निदा फाजली के शब्दों में कहें तो,

"बेसन की सोंधी रोटी पर खट्टी चटनी जैसी माँ
याद आती है चौका बासन चिमटा फुंकनी जैसी माँ
बांस की खुर्री खाट के ऊपर हर आहट पर कान धरे
आधी सोई आधी जागी थकी दोपहरी जैसी माँ
चिड़ियों के चहकार में गूंजे राधा मोहन अली अली
मुर्गी की आवाज से खुलती घर की कुण्डी जैसी माँ
बीवी बेटी बहन पड़ोसन थोड़ी थोड़ी सी सब में
दिन भर इक रस्सी के ऊपर चलती नटनी जैसी माँ
बांट के अपना चेहरा माथा आँखें जाने कहां गई
फटे पुराने इक एल्बम में चंचल लड़की जैसी माँ"

माँ एक भाव भी है और हाड़–मांस की एक स्त्री भी। मुझे याद आती है मेरी माँ जो मुझे सुबह जल्दी उठाती, मेरा ध्यान रखती, मुश्किलें आतीं तो समझाती, कहानियां सुनाती और सीख देती। मेरी माँ बहुत प्यारी थीं। वे रोज सुबह घर में सबसे पहले उठ जाती थीं, भगवान से लेकर घर के सब लोगों का ध्यान रखती थीं। शायद श्री मुनव्वर राणा को भी माँ की ऐसी ही याद है, तभी तो वे कहते हैं।

"अय अंधेरे देख ले मुंह तेरा काला हो गया
माँ ने आँखें खोल दी घर में उजाला हो गया।"

जब मैं दुःखी होती थी तो मेरी माँ मेरे दर्द को समझ जाती थी और अपने जादुई स्पर्श और ममता भरी वाणी से मेरे मुरझाए चेहरे पर मुस्कुराहट ले आती थी, उनके प्यार और ममतामयी स्पर्श को पाकर मैं अपने सारे दुःख भूल जाती थी। मुझे फिर श्री मुनव्वर राणा की पंक्तियां याद आती हैं,

"जब भी कश्ती मेरी सैलाब में आ जाती है,
मां दुआ करती हुई ख्वाब में आ जाती है।"

माँ के बारे में आदि काल से ही अलग–अलग व्यक्तियों ने अपने भाव और कृतज्ञता व्यक्त की है। संस्कृत में कहा गया है–"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"। वैदिक प्रार्थना का प्रारम्भ है – "मातृदेवो भवः"। श्री बंकिमचंद्र चटर्जी ने कहा – "वंदेमातरम्" तो श्री आनंद बख्शी कहते हैं – "ए माँ तुझे सलाम"।

माँ की सामर्थ्य असीम है। वो माँ ही है जो ईश्वर को भी बांध सकती है, पकड़ सकती है, पीट सकती है और सुला सकती है–

"जसोदा हरि पालने झुलावे
हलरावे, दुलरावे, मल्हावे
जोइ सोइ कछु गावे।
मेरे लाल को आव रे निंदिया काहे न आनि सुआवे
तू काहे नहीं बेगहि आवे तोको कान्ह बुलावे
कबहु पलक हरि मूंद लेत हैं कबहुं अधर फरकावे
सोवत जान मौन होए रही करि कर सैन बतावे
एहि अंतर अकुलाने हरि यशुमति मधुरी गावे
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनि पावे"

बच्चे के जन्म के बाद पहली शिक्षक माँ ही होती है। माँ ही उसको संस्कार प्रदान करती है। ये संस्कार ही उसकी जीवनशैली बनाते हैं और उसके चरित्र का निर्माण करते हैं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से पटा पड़ा हैं जहाँ किसी माँ ने अपनी शिक्षा, संस्कार व प्रेरणा से ऐसे महान व्यक्तित्व निर्मित किये हैं जिनपर मानव जाति अनंत काल तक गर्व करती रहेगी। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम, लीला पुरूषोत्तम श्री कृष्ण, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, शिवाजी महाराज और महात्मा गाँधी कुछ ऐसे नाम हैं जिनके चरित्र निर्माण में उनकी माँ का योगदान सर्वज्ञात है।

एक माँ और उसकी संतान के बीच का रिश्ता सबसे पवित्र और अनमोल रिश्ता है, जैसे प्रकृति और प्राणी का ! मां की गोद प्रकृति के समान है जहां मनुष्य के लिए सब कुछ है किंतु माँ प्रकृति से कहीं महान है क्योंकि प्रकृति तो मनुष्य हो या अन्य प्राणी कुपित होने पर सबको ध्वंस कर देती है किंतु माँ कभी अपनी संतान को कष्ट नहीं दे सकती। वो माँ ही है कि

"लबों पर उसके कभी बद्दुआ नहीं होती
बस एक माँ है जो कभी खफा नहीं होती।"

माँ सदैव अपनी संतान को अपनी आंचल की छांव में रखती है। यह ईश्वर द्वारा धरा पर मानव को दिया जाने वाला सबसे महान वरदान है। एक माँ हमेशा ही अपनी संतान के प्रति निःस्वार्थ भाव रखती है। ये माँ की ही अद्भुत शक्ति है कि एक अबोध अबोले शिशु की हर जरूरत वो जान जाती है और ये माँ का ही धीरज है जो बच्चे को छोटी से छोटी बातें सिखाती है और अनगिनत बार सिखाती है और तब तक सिखाती रहती है जब तक वे सीख नहीं जाते। बच्चे अगर गलती करते हैं तो माँ उसे प्रेम से समझाती है लालच देकर समझाती है डाँटकर समझाती है यहां तक कि दंडित कर के भी समझाती है। बार–बार समझाती है, हजार बार समझाती है ताकि वो ऐसी गलती फिर से न करें। बच्चे के जन्म से लेकर उसके जीवन भर उसकी माँ उसका बहुत ख्याल रखती है। बच्चे को थोड़ी सी भी चोट न लगे इसका वो भरपूर ख्याल रखती है। अगर बच्चे को कुछ तकलीफ हो जाय तो सबसे पहले माँ की आंखों में पानी आता है। उसे अपार दुःख होता है। माँ ही होती है जिसके स्पर्श मात्र से बच्चा खिल उठता है, मुस्कुराता है, उसकी तकलीफ तत्काल छूमंतर हो जाती है। इसीलिए एक विद्वान ने कहा है– Mother: that was the bank where we deposited all our hurts and worries.

माँ की ममता निर्मल निःस्वार्थ भावनाओं से भरी रहती है और उसकी संतान पर अहर्निश बरसती है। अनंत है माँ का प्यार! माँ की ममता का कोई दूसरा विकल्प नहीं है। माँ शब्द से इतने गहन अपनत्व की भावना प्रकट होती है कि समस्त विश्व में व्यक्ति के जन्मस्थान को मातृभूमि तथा स्वतः उसके मुँह से प्रस्फुटित होने वाली बोली को मातृभाषा कहा जाता है। हमारे देश में तो जीवनदायनी नदियों को भी माँ कहा जाता है।

मनुष्य जीवनपर्यन्त माँ को भूल नहीं पाता। मुझे हर पल अपनी माँ और उसका प्यार याद आता है। इस भाव को कुछ शब्दों के माध्यम से कहना संभव नहीं। मेरी माँ ममता की देवी हैं और मेरी आर्दश हैं। उन्होंने मुझे सच के रास्ते व ईमानदारी पर चलने की सीख दी है। मेरी माँ मुझे हमेशा समय का महत्व बताती थी। मैं आज भी उनकी हर बात मानती हूँ। यद्यपि वो आज इस दुनिया में नहीं हैं, फिर भी वो मेरे आस पास हैं। उनकी छवि आंखों के सामने रहती है।

"मेरी ख्वाहिश है कि मैं फिर से फरिश्ता हो जाऊं
माँ से इस तरह लिपटूँ कि बच्चा हो जाऊं।"

माँ की ममता की तुलना नहीं की जा सकती है! क्योंकि माँ की ममता अतुलनीय है इसकी तुलना संसार की किसी भी वस्तु से करना असंभव है। गोस्वामी तुलसीदास जब भगवान राम के मुख की सुंदरता का वर्णन करने के लिए उपमा ढूंढने लगे तो निराशा ही उनके हाथ लगी। भगवान के मुख के समान सुंदर कुछ था ही नहीं। अंततः हार कर उन्होंने कहा :–

"रघुबर मुख छबि समान रघुबर मुख बनिया।"

माँ के लिए भी यही सटीक है। माँ के समान कोई नहीं। माँ तो बस माँ है।

"मैने रोते हुए पोछें थे किसी दिन आँसू
मुद्दतों माँ ने नहीं धोया दुपट्टा अपना।"

मित्र का बचपन

श्री प्रशान्त शर्मा
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

माँ का दूध एवं बचपन क्या होता है, शायद मुझे पता ही नहीं है, 6 माह का था तभी माँ का स्वर्गवास हो गया (नानी ने पाला) पिता का साईकिल मरम्मत का काम था गुजारा बड़ा मुश्किल से हुआ करता था, कुछ समय पश्चात् पिता भी हम सभी को (चार बहने और मैं) छोड़ कर कहीं चले गये, खाने के भी लाले पड़ गये। पास में ही ननिहाल थी, वहां बहने काम में हाथ बटाती तब जाकर हमें दो वक्त की रोटी नसीब होती। कुछ सालों बाद पिता वापस आ गये और हम सभी को दूसरे शहर, दादाजी के घर ले गये, वहां भी जीवन यापन की स्थिति खराब ही थी, पेट भर खाना भी नसीब नहीं होता था। हमें गिन–गिन कर रोटियां मिलती थी (तीन से चार रोटी के बीच) बहनों में सबसे छोटा अकेला भाई, मेरा पेट नहीं भरता तो मैं गाय के लिए निकाली गई रोटी भी गाय को देने के बहाने खा लिया करता था। कभी–कभी तो ऐसी नौबत भी आई कि केवल आटे की बनाई हुई नमकीन लपसी (हल्वा) ही खा कर गुजारा करना पड़ता था, जीवन बहुत कठिनाईयों से गुजर रहा था इसके बावजूद मेरी बड़ी बहन ने मेरा दाखिला एक सीटी बोर्ड स्कूल में करा दिया। कक्षा 5 तक वहां पढ़ा, तब तक दादी–दादा भी स्वर्ग सिधार गये। उस पढ़ने, खेलने की उम्र में मैंने एक रिश्तेदार की दुकान में काम किया और बदले में उन्होंने मुझे पढ़ाई जारी रखवाई। कक्षा 8 तक आते–आते पिता जी का साया भी सर से उठ चुका था। काम के साथ–साथ हाईस्कूल पास किया। इसी दौरान सेवानियोजन कार्यालय में नाम दर्ज करा दिया और किस्मत ने साथ दिया। सरकारी कार्यालय में अस्थाई (उन दिनों दैनिक वेतन भोगी रखे जाते थे) में मेरा साक्षात्कार हुआ और चयन भी, 5 साल के उपरांत स्थाई पद पा लिया इसी दौरान मैंने इंटर की प्राईवेट परीक्षा उत्तीर्ण की और तब तक शुभ चिंतकों के कारण दोनों बहनों की शादी भी योग्य वरों के साथ हो गई (दो बहने ईश्वर को प्यारी हैं)।

उसका दुखभरा एवं संघर्षशील वृतांत सुनकर मेरी आंखों में आसू आ गये, आज वह मेरे परम मित्रों में से एक है, आज वह अपने खुशहाल परिवार (पत्नी, बेटी और बेटे) के साथ खुश है। अपना घर भी बना लिया है, परन्तु वह अपने अतीत को नहीं भूलता जो उसने गाय के हिस्से की रोटी खा कर बिताए थे, वह आज भी (जब से अपने पैरों पर खड़ा हुआ है) गाय एवं चिड़ियों के लिए नित्य प्रति रोटी निकालता और उन्हें खिलाता है, कहता है इनका कर्ज है मुझ पर। आज जिस प्रकार मेरा मित्र अपनी मेहनत, ईमानदारी एवं किस्मत से इस व्यवस्थित मुकाम पर पहुंचा है, वह सभी के लिए प्रेरणा स्रोत है मुझे उस पर गर्व है।

दानव

श्री प्रशान्त शर्मा

मार पड़ रही उपभोक्ता को
कोई तो बचाओ
जहाँ भी देखों कतार दिखे है
लम्बाई इसकी घटाओ
क्या कोई वासू वन कर
इस धरा पर कभी आयेगा
जो दानव रुपी महंगाई को
त्वरित निगल जायेगा
दूर–दूर तक कोई किरण भी
नजर नहीं आती है
वासू अब अर्थशास्त्री बनकर
अवतरित हो जाओ।
देश की नैया
पार लगाओ।

धरा

श्रीमती गीता वोहरा
भारतीय वानिकी अनुसन्धान
एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

धरा है, धरा है,
यह मेरी वसुंधरा है।

हरी भरी 'फूलों की घाटी' से सुशोभित
अलकनंदा, यमुनोत्री से सींची है
नदियों के संगम से इलाहाबाद में सजी है
धरा है, धरा है
यह मेरी वसुंधरा है।

अजंता एलोरा से अलंकृत
सांस्कृतिक धरोहरों से सुसज्जित
पावनधामों से निर्मित
धरा है, धरा है
यह मेरी वसुंधरा है।

उत्तर में गंगा से
दक्षिण में कावेरी से
पूर्व में गोमती से
पश्चिम में नर्मदा से जुड़ी है
धरा है, धरा है
यह मेरी वसुंधरा है।

यह मेरी धरा है, यह हमारी धरा है
आओ, मिलकर, इस धरा को बचाएं
वृक्षों के कटान से, भूक्षरण के बाण से
यह हमारी धरा है, यह सबकी धरा है।
धरा है, धरा है
यह सबकी वसुंधरा है।

चेतना

कुमारी शिप्रा नागर
वन अनुसंधान संस्थान,
देहरादून

कहीं खो गई है,
हमारे अंतर्मन की चेतना।
आकाश सी विस्तृत, सागर सी गहरी,
सूरज की किरणों सी सुनहरी।
संध्या सी शांत, फूल सी चंचल,
निर्झर के निर्मल जल सी कोमल।
जिसका अजर अस्तित्व मनुष्यता से था बना।
कहीं खो.....चेतना।

जिसे हमने सुनकर भी अनसुना कर दिया,
और अपने स्वार्थ का पात्र भर लिया।
उस पात्र में जीवन की सभी सुख सुविधाएँ हैं,
फिर भी अंतर्मन में, क्यों इतनी दुविधाएँ हैं ?
आँखों की गहराई में क्यों है इतनी वेदना ?
कहीं खो.....चेतना।

जिसे हम घृणा के मरूस्थल में कहीं पीछे छोड़ आए हैं,
जहाँ न क्षमा का स्रोत है, न प्रेम लताएँ हैं।
उस मरूस्थल से अपनी चेतना को जीवित लाना है,
पूर्ण आत्मविश्वास, दृढ़ निश्चय से उसे बुलाना है।
जब हृदय होगा संतुष्टि, संयम, हर्ष, उमंगो से घना,
फिर लौट आएगी, हमारे अंतर्मन की चेतना।
कहीं खो.....चेतना।

विशाल जहाज की कहानी

श्रीमती आर.जी. अनिता
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

कभी विशाल जहाज के इंजन की कहानी सुनी है जो विफल रही है? विशाल जहाज के इंजन को ठीक करने के लिये जहाज के मालिकों ने अनेक विशेषज्ञों को बुलाया। सभी ने अपने तरफ से कोशिश भी की लेकिन जहाज के इंजन को ठीक नहीं कर पाये। जहाज के मालिक इस बात से बहुत ही परेशान थे और सोच रहे थे कि किसी भी तरह इंजन को ठीक करना ही है। तब उन्हें एक बूढ़े आदमी की याद आयी जो बचपन से जहाजों की फिक्सिंग किया करता था। तुरंत उन्होंने उस बूढ़े आदमी को बुलवाया। उसके साथ उपकरणों का एक बड़ा सा बैग था। वह आते ही अपने कार्य में जुट गया। उसने इंजन को बहुत ही सावधानी से ऊपर से नीचे तक निरीक्षण किया।

दो जहाज मालिक वहाँ पर थे और उस आदमी को ही देख रहे थे कि वह क्या कर रहा है? उन्हें विश्वास था कि यह आदमी किसी न किसी तरह इंजन को ठीक कर देगा। जहाज को अच्छी तरह से देखने के बाद बूढ़ा आदमी अपने बैग के पास गया और एक छोटा सा हथौडा लेकर आया। उसने धीरे से उस हथौडा से एक जगह पर मारा और इंजन तुरंत ही ठीक हो गया और इंजन की फिक्सिंग भी उसने ठीक तरह से कर दिया। एक सप्ताह के बाद उन मालिकों को उस बूढ़े आदमी से 10 हजार डालर के लिये एक बिल प्राप्त हुआ।

उसे देखकर मालिक लोग चकित रह गये और सोचने लगे कि उसने कुछ भी तो नहीं किया?

इसलिए उन्होंने उस बूढ़े आदमी को एक नोट लिखा कि"कृपया हमें विस्तृत बिल भेजिए"। बूढ़े आदमी ने विस्तृत बिल भेजा उसमें लिखा था–

हथौडा से दोहन	$– 2.00
कहाँ दोहन करने की जरूरत है	
उसे जानने के लिये	$ – 9998.00

प्रयास महत्वपूर्ण है लेकिन अपने जीवन में कहाँ और कैसे प्रयास करना है उसकी सही जानकारी ही अधिक महत्व रखता है।

वनों का महत्व

आर. श्रीदेवी
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

वन सभी जीवन रूपों के लिये महत्वपूर्ण है। वन जीवन की विविधता को बढ़ाता है, चिकित्सक खोजों एवं आर्थिक विकास के लिये अधिक अवसर प्रदान करते है। नई चुनौतियों का सामना करने के लिये जलवायु परिवर्तन के रूप में अनुकूली प्रतिक्रियाँ उत्पन्न करती है। वन जल–संभर के रूप में कार्य करते है क्योंकि लगभग सभी पानी अंततः नदियों, झीलों और वन व्युत्पन्न पानी तालिकाओं से आते है। वनों के माध्यम से चल रहे नदियों को वह हमेशा ठंडा रखता है।

वन लाखों पशुओं के लिये निवास स्थान है। कई प्रकार के सरीसृप, जंगली जानवरों, तितलियों एवं कीटों, पक्षियों आदि वनों एवं नदियों में ही रहते है। जानवरों ने वनों में एक तरह का खाद्य श्रृंखला बनाये रखा है। इन विभिन्न जानवरों एवं पौधों को ही जैव विविधता कहा जाता है और एक दूसरे के भौतिक पर्यावरण के साथ सम्पर्क रखने को ही पारिस्थितिकी तंत्र कहा जाता है। स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र विभिन्न प्रकार के आपदाओं का सामना कर उसे ठीक भी कर सकता है।

वन हमारे लिये भारी आर्थिक महत्व रखता है। उदाहरण के लिये, वृक्षारोपण से हमें काष्ठ उपलब्ध होता है जिसे निर्यात किया जाता है और दुनियाभर में इसका प्रयोग भी किया जाता है। इस प्रकार वनों से हमें आर्थिक लाभ भी होता है। अनेक मनोरंजनात्मक गतिविधियाँ जैसे लम्बी पैदल यात्रा, नौका विहार, मछली पकडना आदि वनों के होने से ही संभव हो पाता है। वन अधिकारियों एवं स्थानीय समुदायों के लिये वित्तीय इनाम भी प्रदान करते है।

मैं और मेरी तनहाई

सुश्री कुसुम परिहार
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

मैं और मेरी तनहाई
अकसर सोचते हैं
कैसा रचियता यह ईश्वर हैं ?
जिसने ये संसार कितनी फुर्सत में बनाया
पता नहीं इतना दिमाग क्यूं लगाया
कहीं जमीन तो कही आसमाँ बनाया
शानो–शौकत की इस
रंगीन दुनिया में
गरीबी का पेबन्द क्यू लगाया ?

कहीं बनाये ऊंचे महल, अट्टालिकाएं
और क्यों कहीं झोपड़ी के लिए
दो हाथ जमीन भी ना दे पाया
मैं और मेरी तनहाई
अकसर सोचते हैं

एक तरफ बनाई मल्टीनेशनल कंपनियां
और ब्रांडेड कपड़े पहन कर इतराते लोग
और दूसरी तरफ तन ढकने को
क्यों दो हाथ कपड़ा भी न दे पाया
मैं और मेरी तनहाई
अकसर सोचते हैं

एक तरफ बनाए
फाइव स्टार होटेल्स
जहां एक वक्त के भोजन का बिल सैकड़ों में आया
वही क्यों पेट भरने को दो मुट्ठी धान भी न दे पाया।
मैं और मेरी तनहाई
अकसर ये सोचते है
क्यों ? एक इंसान ईमानदर होकर भी
पूरा जीवन अनहोनी ओढ़ता है
और क्यों एक आदमी बेईमान होकर भी
पूरा जीवन ऐशो–आराम भोगता है
पहले वाले के लिए कहा जाता है
पिछले जन्मो की सज़ा है
वह इस जन्म के कर्मों की सज़ा
इसी जन्म में क्यूँ नहीं दे पाता है?
मैं और मेरी तनहाई
अकसर सोचते हैं

अगली पंक्तियों के सदर्भ बताना चाहती हूँ कुछ समय पहले स्थानीय अख़बार में एक खबर छपी थी कि एक माता–पिता ने अपने अस्वस्थ बच्चे के इलाज में अक्षम होने की वजह से कोर्ट में उनकी जीवन लीला समाप्त कर लेने की अनुमति मांगी थी। इसी सदर्भ में झकझोर देने वाली पंक्तिया हैं –

मैं और मेरी तनहाई
अकसर सोचते हैं
यह कैसे रचियता हो ईश्वर तुम ?
कहीं बेऔलाद इंसान तुम्हारे द्वार संतान मांगने आते हैं
वही दूसरी और क्यों एक माँ–बाप
अपने ही जन्मे बच्चों की मौत की अर्जी दे आते हैं
मैं और मेरी तनहाई
अकसर सोचते हैं

कहीं बेटी के जन्म की खुशिया लक्ष्मी मान मनाई जाती हैं
क्यों? दूसरी ओर एक लाचार माँ लक्ष्मी नाले में फेंक आती हैं।
मैं और मेरी तनहाई अकसर सोचते हैं
ऐसा क्यों होता हैं ?
ऐसा क्यों होता हैं ?

जल-संकट

सुश्री निशात अन्जुम
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

पेप्सी कोला का क्या हाल !
लगा रहे संयत्र विशाल !
करते हैं जल का व्यापार !
उन्हें चाहिए स्रोत अपार !!

दस बोतल में बोतल एक !
व्यर्थ जलों के स्रोत अनेक !!
बचा प्रदूषित जल अवशिष्ट !
दफनाते भू में उच्छिष्ठ !!

जल की सतह निरंतर दूर !
साथ–साथ दूषित भरपूर !!
जनता को जल मिले न झूर !
दूषित पीने को मजबूर !!

विविध रोग के हुए शिकार !
नहीं कहीं कोई उपचार !!
नेता पीते मिनरल वारि !
जन सेवक की प्रतिमा धारि !!

धन के बल से करें प्रचार !
पेयों का फैला बाजार !!
डाल कीटनाशक के तत्व !
स्वाद भोग मद बढ़ा महत्व !!

लाख/लाह

श्री महेश कुमार चंचल
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

सदियों से अस्तित्व में है लाख,
भारत ही नहीं विदेशों में भी है साख।

प्राचीन युग में भी इसकी थी अलग पहचान,
महाभारत काल में लाक्षागृह का हुआ था निर्माण।

लाख के उत्पाद हैं काफ़ी मूल्यवान,
निर्धन कारोबारी भी हो जाते हैं धनवान।

वन सम्पदा की है ये अजब मिसाल,
कृषक बन्धुओं का है ये निजी टकसाल।

आदिवासियों ने इसे वर्षों से रखा है बरकरार,
वर्तमान काल में भी करना होगा इसका विस्तार।

देश के कई प्रान्तों में होती है लाख की खेती,
बाकी प्रान्त भी सजग हों तो देश की होगी प्रगति।

हरेक देशवासी का लाख खेती में हो योगदान,
सम्भव है तभी रह पायेगा लाख का नमोनिशान।

पंडित जवाहर लाल नेहरू

कुमारी भारती सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

नेहरू परिवार में जन्मा एक अद्भुत लाल,
मां थी जिसकी स्वरूपा रानी और पिता मोती लाल।

परिवार में खुशियां मनाई सबने अपार,
क्यों न मनें खुशियां जब पुत्र जन्मा होनहार।

हुआ नामकरण तो मां बाप हुए निहाल,
खुशियों के साथ रखा एक नाम जवाहर लाल।

जब बढ़ने लगा पुत्र तो प्रतिभा लगी उभरने,
पाठशाला में शिक्षा का स्तर और भी लगा निखरने।

बड़े होकर विवाह हुआ कमला के संग,
राजनीति में भी साथ–साथ दिखने लगा रंग।

स्वतंत्रता संग्राम में निभाई नई भूमिका,
शत्रु कोई भी हो इनके आगे न ही टिका।

देश हुआ आजाद तो जिम्मा नया संभाला,
प्रथम प्रधानमंत्री बने किया ये काम निराला।

देश को सम्भाला और प्रगति पर डाला,
देश को आगे बढ़ा और पीछे छूटा समय काला।

एक सुन्दर पुत्री भी आई घर में,
नाम रखा इन्दिरा और खुशी हुई मन में।

यह प्रकृति का नियम है कि जो आया वह चला गया,
भारत का महान सपूत भी मई 1964 में कही चला गया।

प्रकृति के रंग

श्री अजय कुमार
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

कितने रंग बिखेरे हैं, प्रकृति ने अपने आंचल में।
वृक्षों की हरियाली, आँखों को है भाती।
सरसों के फूल, अमलतास के फूलों की लड़ी, हमारे अंदर करता है
नई ऊर्जा का संचार, इनका प्यारा पीला रंग।
पलाश के फूलों की लालिमा, रक्त बनकर बहता है
हमारे रगो में, उत्साह बढ़ता है तन–मन में।

अपराजिता के नीले फूल, जैसे किसी की सुंदर नीली आँखें।
मन मोह लेती है हमारा, इनका नीला रंग।
बीजों के अंकुरण में है रंग, फूलों और फलों में रंग,
मुरझाए पत्तों में रंग, जीवन तो है रंगों का संग।
जीवन भी रंगों से भरा है, गीले होने में भी रंग है,
सुख जाने में भी रंग।

आसमान में भी रंग है, और मिट्टी में भी रंग है।
दिन का भी एक रंग है, रात में भी एक रंग है।
हर ऋतु रंगों से भरी है, हर वर्ष का एक रंग है।
सावन आता हरियाली से,पतझड़ छाया पीलेपन में,
बसंत का है रंग बसंती, शीत ऋतु का रंग श्वेत है।
सुख–दुख में रंग है, हसने–गाने में रंग है।

रूठने और मनाने मे रंग है, खुशी बाटने में भी रंग है।
खोने पाने में रंग है, यादों का एक रंग है।
भूल जाने में भी रंग है, कहने–सुनने में भी रंग है।
दुश्मनी के रंग को भूले, दोस्ती का रंग हम घोलें,
इन रंगों को आँखों से न होने दे ओझल।
प्रकृति के विभिन्न रंगों को चलो आज हम सहेजे और संभालें,
सँवारे अपना आने वाला कल।

माँ-बाप

कुमारी स्नेहलता मन्द्रवाल
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं
शिक्षा परिषद्, देहरादून

माँ अपने में ममत्व लिए है,
पिता प्यार, दुलार का भंडार लिए हैं।
दोनों सीढ़ी बनकर, मुझे हमेशा,
आगे बढ़ाने में कामयाब हुए हैं।

माता–पिता ने रखा मुझे पानी की तरह,
बहने दिया स्वच्छ, निर्मल नदी की तरह।
मुझ पर न कभी बंदिशों का बांध बनाया,
उड़ने दिया इक आजाद चिड़िया की तरह।

दुःखों का अंबार था, उनके जीवन में,
पर मुझे कभी आभास न हुआ मन में।
मेरे पैरों में यद्यपि कांटा भी चुभता,
उनके हृदय में एक शूल सा लगता।

हमेशा गरीबी से जूझते रहे मेरे मां बाप,
लेकिन हर ख्वाहिश पूरी करते मां बाप।
बेटी न समझ, बेटा जैसा ओहदा दिया मुझे,
प्यार, शिक्षा, सम्मान का अधिकार दिया मुझे,

सपना है, जिंदगी में ऊँचा मुकाम हासिल करूँ,
अपने मां बाप की उदासी और परेशानियों को हटाऊँ।
मेरा इक और सपना है कि मैं उन्हें एक सरप्राईज दूँ,
उनकी सिल्वर जुबली का आयोजन किसी बड़े होटल में करूँ।

कराऊँ हर सुख के दर्शन, जो हैं संसार में,
दूर कर दूं हर कष्ट जो हैं, उनके जीवन में।
उनकी सेवा में पुण्य कमाऊँ दुआ है ईश्वर से
मुझे वंचित न करना कभी, मेरे मां बाप से।

खोज

श्री अमित कुमार सिंह
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

पेड़ से गिरता सेब देखकर,
न्यूटन ने था तथ्य विचारा,
गुरूत्वाकर्षण बल को खोजा,
आज ऋणी जग उनका सारा।

फ्लेमिंग ने खोजा पेन्सिलीन को,
वेटिंग ने ढूढ़ां इंसुलिन को,
जेनडर चेचक टीका लाये,
रोगमुक्त हो सब मुस्कायें।

हर क्षण हर पल काम वो करती,
स्पंदित हो कभी न थकती,
प्राणी से जब भी वह रूठी,
जीवन रेखा उसकी टूटी।

बरनार्ड ने हृदय पेशी का,
राज अनोखा यह था जाना,
इसीलिए मानव का उनको,
कृत्रिम हृदय था पड़ा बनाना।

विज्ञानी बन तुम भी छात्रों,
करना ऐसी खोज,
पढ़ना–लिखना और चिन्तन, करते रहना रोज।

वृक्ष की पुकार

सुश्री ज्योति काण्डपाल एवं
डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

मुझमें भी जीवन है मैं भी प्यार का प्यासा हूँ,
मत काटो मुझे यों निरंतर तुम,
मैं भी रखता पूरी जीने की अभिलाषा हूँ।
चाहूं मुझको भी नितदिन कोई पानी की एक घूँट पिलाये,
वृक्षारोपण करके मेरी नींव को भी मजबूत बनाये।
मेरा कहा सुनो, मैं तुमको देता हूँ अपना एक वचन।
हरी भरी पृथ्वी होगी, होगा हरा भरा हर एक मन।
इसीलिए कहता हूँ तुमसे मैं भी प्यार का प्यासा हूँ।
मत काटो मुझे यों निरंतर तुम,
मैं भी रखता पूरी जीने की अभिलाषा हूँ।

मृदा रहेगी हमसे सदा मजबूत तुम्हारी।
लेने को हर पल मिलेगी ताजा हवा हमारी।
चलो फिर आज वचन दे दो कि,
मुझे यों काटोगे नहीं।
अपनी बढ़ती अभिलाषाओं के लिए मुझे यों
काटकर बाँटोगे नहीं।
अपनी पृथ्वी को तुम सब मिल, उन्नत तो बनाओ।
चलो वृक्षारोपण के अभिमान में ही सही
तुम वृक्ष तो लगाओं।
सुन लो मेरी पुकार कि कहता हूँ तुमसे
मैं भी प्यार का प्यासा हूँ।
मत काटो मुझे यों निरंतर तुम,
मैं भी रखता पूरी जीने की अभिलाषा हूँ।

पिता

सुश्री अंशु गर्ग
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

धरती से हमें जल, अन्न इत्यादि वो सभी कुछ मिलता है जो कि जीवन को चलाने के लिए आवश्यक है। किंतु आकाश का क्या? क्या आकाश से भी कुछ मिलता है? आकाश से मिलती है वायु और आकाश से मिलते हैं सपने। वायु कि जिसके बिना धरती का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाए फिर भला जीवन क्या बचेगा। और सपने जो निरंतर प्रेरित करते हैं कुछ नवीन, अकल्पनीय कर गुजरने के लिए क्योंकि सपनों की तो कोई सीमा नहीं होती और आकाश की भी। सर्वत्र मां को धरती कहा गया है और धरती को मां कहा गया है। किंतु आकाश तो पिता ही है। पिता आकाश की भांति ही संतान में प्रेरणा, उत्साह और आगे बढ़ने की लगन का बीजारोपण करता है। पिता वायु की तरह सर्वत्र होते हुए भी सिर्फ अनुभव की ही सीमा में आता है क्योंकि दृष्टि जिस प्रकार मां को अनुभव कराती है उस प्रकार पिता को अनुभव नहीं कराती। माता के स्नेह की मूसलाधार वर्षा में पिता के स्नेह का पहाड़ कभी दृष्टिगोचर ही नहीं हो पाता।

बचपन में संतान केवल मां का अनुभव करती है। उसे पिता का अनुभव कभी हो ही नहीं पाता। वो कभी यह अनुभव ही नहीं करती है कि पिता ने कब उसकी उंगली थामी और कब उसे स्वयं खड़ा होने के लिए छोड़ दिया। एक कथा याद आती है– एक बार एक व्यक्ति ईश्वर के साथ समुंद्र के किनारे टहल रहा था। उसने देखा कि रेत पर उसके और ईश्वर के पैरों के दो जोड़ी निशान साथ–साथ थे। तभी कीचड़, कंकड़ और कांटों भरा मार्ग आ गया। उसने देखा कि मार्ग के उस अंश पर केवल एक जोड़ी पैरों के निशान थे। उसे बड़ी निराशा हुई। उसने सोचा कि जब बुरा समय आया तो ईश्वर ने भी साथ छोड़ दिया। उसे अकेले ही वह कठिन मार्ग तय करना पड़ा। आखिर उससे नहीं रहा गया और उसने यह बात ईश्वर से कह दी। ईश्वर मुस्कुराए और बोले कि तुम अपने पैर तो देखो क्या इनमें कीचड़ लगा है? उस व्यक्ति ने देखा कि वाकई उसके पैरों में तो कीचड़ लगा ही नहीं था।

अक्सर सभी को पिता की याद ईश्वर की तरह आती है, जिससे डर भी लगता है, जिसके पास भी कोई नहीं जाना चाहता किंतु जिससे सुरक्षा का भी एहसास होता है। जिस प्रकार ईश्वर से हमें सुरक्षा तो मिलती है किंतु कुछ गलत करने पर दंड भी मिलने का भय सदैव सताता है और ईश्वर से हम कुछ भी मांग सकने और पा सकने की आशा करते हैं किंतु फिर भी प्राप्त वस्तुओं से संतोष नहीं प्राप्त होता। उसी प्रकार पिता से हर इच्छा की पूर्ति होने पर भी सदैव संतान को एक असंतोष रहता ही है, एक दूरी रहती ही है। पिता सदैव 'आप' रह जाते हैं, कभी मां की तरह 'तू' नहीं हो पाते। यह संतान के जीवन में अनुशासन और मूल्यों के प्रति निष्ठा की स्थापना करने का शुल्क है।

पिता से यह दूरी या भय ही संतान में उसकी आयु, समझ, सामर्थ्य बढ़ने के साथ उसे पिता से अधिक दूर कर देती है। प्रायः संतान अपनी कमियों, प्रयासहीनता और दुख के लिए पिता को ही जिम्मेदार ठहरा देती है। वह कभी भी मां को अपनी वर्तमान असंतोषजनक स्थिति के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराती। ऐसा इसलिए होता है कि समाज में संतान को स्थापित करने के लिए पिता को ही जिम्मेदार समझा जाता है और दूसरी ओर पिता अपनी संतान को समाज में स्थापित करने योग्य बनाने के लिए जो दबाव संतान पर डालता है और उससे संतान को जो असुविधा उत्पन्न होती है उसके फलस्वरूप उसके मन में पिता के प्रति एक विद्रोह की भावना पनपने लगती है जो कि कालांतर में प्रत्येक असफलता के लिए पिता को (और अन्य को भी) जिम्मेदार ठहराने की सोच का कारण बनती है। यही कारण है कि हम प्रायः सुनते है कि संतान ने पिता को छोड़ दिया, उसका अपमान किया अथवा कभी–कभी तो हिंसक प्रतिरोध भी किया।

यह प्रवृत्ति अपनी जिम्मेदारी से बचने का प्रयास मात्र है। वस्तुतः सभी जानते हैं कि एक पिता सदैव अपनी संतान का भला ही सोचता है और उसको समाज में सम्मानजनक

स्थान दिलाने के लिए सभी संभव प्रयास करता है। यहां तक कि प्रायः पिता अपने सुखों और समस्त सुविधाओं का त्याग करके केवल अत्यंत आवश्यक वस्तुओं पर आधारित जीवनयापन करता है जिससे कि वह अपने बच्चों को बेहतर जीवन दे सके। वह धन सम्पदा, भूमि, भवन और अनेक सुविधाओं का संचय करता है ताकि उसके बच्चों को कोई कमी न महसूस हो। इतना करने पर भी शायद ही कोई संतान हो जो पिता का आभार मानती हो। अगर कोई हमें घड़ी देखकर समय बता देता है तो हम तत्काल उसे धन्यवाद देते हैं। किंतु पिता जो अपना सारा समय (जीवन) अपनी संतान पर न्यौछावर कर देता है संतान उसे कभी धन्यवाद तो नहीं देती, हां, किंतु उस पर अभियोग अवश्य लगा देती है।

बचपन में पढ़ी एक रूसी कहानी याद आती है जिसमें एक व्यक्ति अपने पिता से अच्छा व्यवहार नहीं करता और उसको भोजन एक लकड़ी के बर्तन में उपेक्षापूर्वक देता है। एक दिन वह व्यक्ति अपने पुत्र को एक लकड़ी का बर्तन बनाते देखकर पूछता है कि वो क्या कर रहा है? तो पुत्र जवाब देता है कि जब आप बूढ़े होंगे तब तक दादा जी का लकड़ी का बर्तन टूट चुका होगा इसलिए मैं आपको खाना देने के लिए बर्तन बना रहा हूँ। इस प्रकार हम पाते हैं कि पूरे विश्व में पिता से ऐसा ही तिरस्कारपूर्ण बर्ताव उसके जीवन की संध्या में किया जाता है। हर कोई इसे गलत मानता है किंतु कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में हर कोई ऐसा ही करता है। महाभारत में यक्ष युधिष्ठिर से पूछता है कि एक बड़ा कुआं है और पांच छोटे कुएं हैं। जब बड़ा कुआं उफनता है तो पांचों छोटे कुएं भर जाते हैं, किंतु जब पांचों छोटे कुएं उफनते हैं तो वे बड़े कुएं को नहीं भर पाते। तो हे युधिष्ठिर, ये कौन हैं? तो युधिष्ठिर जवाब देता है कि बड़ा कुआं पिता है और छोटे कुएं पुत्र हैं।

इतना समय व्यतीत हो गया किंतु आज भी पिता तो पांचों संतानों की सारी आवश्यकताएं पूरी करता है, किंतु पांचों संतान मिलकर भी एक पिता की अत्यंत सीमित आवश्यकताएं भी पूरी नहीं कर पाते। आवश्यकताओं की तो बात ही छोड़िए पिता से प्रेमपूर्वक बात तक नहीं कर पाते। उसकी स्नेहपूर्ण हितैषी सलाह तक नहीं सुन पाते।

वह समय कब आएगा जब हम अपने पिता का सम्मान करना सीखेंगे। जब हम उसके द्वारा किए गए अतुलनीय प्रयासों को सराहेंगे।

वृक्ष

श्री आशुतोष कुमार पाण्डेय
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

सृजक हैं वो पोषक हैं वो,
स्वस्थ पर्यावरण के कारक हैं वो,
है इनसे ही जीवन सरस,
नैसर्गिक सुख के स्रोत हैं वो।

सर्वस्व न्योछावर करते हैं वो,
हरियाली के मानक हैं वो,
शुभचिंतक हैं, ऋतु परिवर्तक हैं वो,
सच में सौ पुत्र समान हैं वो।

पर बेजुबान हैं, निरंतर कटते हुए व्यथित हैं वो,
सिसकते हुए व्यथा–अनुभूति कराते हैं वो,
प्रदूषण–निवारक हैं, पर्यावरण–मित्र हैं वो,
फिर ऐसी क्रूरता क्यों हर रोज कटते हैं वो।

आओ मिल संवारें इस धरा को,
आओ करें श्रृंगार धरा की,
आओ करें सौभाग्यवती धरा को,
आओ मिल वृक्ष लगायें, चलो मिल वृक्ष लगायें।

द्रुम पद्य

श्री ध्रुब गुंरूग
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

स्वर्ग में संरचित होकर
हमने ऊसर भू में किया वास
वृक्ष और मानव
के रूप में, सदियों से

एक साथ
भूविज्ञान व इतिहास
साक्षी है
हमने देखे है साथ – साथ

सभ्यताओं का आना जाना
हम कभी अनभिज्ञ नहीं थें
लेकिन अब
हमने खोई सदियों पुरानी नज्म

जन डूबा तृषा में
अरण्य बने कंचनस्वरुप
आवश्यकता से अधिक किया एकत्र
पर्यावरण रह गया बनकर

होकर एक वार्षिक महासमारोह
हठ मानवता अचल है
हे स्वर्ग के भगवान!
पांचाली की तरह

हमें भी हरियाली बख्सो
मानव के चेतना आने तक!

द्रुम

श्री छत्रपाल सिंह सैनी
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं
शिक्षा परिषद्, देहरादून

जिसे सर्वस्व किया अर्पण, उसी मानव ने किया तेरा संहार,
हे जीवश्रेष्ठ तरुवर, विश्व का तुमको कोटि नमस्कार।

फल औषधि लकड़ी देकर तूने हर ली जग की पीड़ा,
तेरी शाखाओं में नीड़ बना हर्षित विहग करते क्रीड़ा।

तेरी गन्ध, गोंद, मधु और पराग,
तेरा वन वैभव, खग मृग अनुराग।

हे मानव सहोदर धरती भूषण,
तुम हरते रहते प्रदूषण।

तेरी प्राणवायु से जीवन है,
तेरी वर्षा तो संजीवन है।

तू जीवित है तो मौसम है,
तेरी मृत्यु तो गम ही गम है।

हो गगनचुम्बी तेरा विस्तार,
बहे तपन में शीतल मन्द बयार।

बस यही अभिलाषा शेष आज,
युग युग जीना हे वृक्षराज।

तेरा संरक्षण और संवर्धन सचमुच करता है चमत्कार,
हे जीवश्रेष्ठ तरुवर विश्व ..... ।

ग़ज़ल

श्रीमती सुधा पाण्डेय 'गुडडी'
सामाजिक वानिकी एवं पारि–पुनर्स्थापन केन्द्र, इलाहाबाद

एक

क्या कहूँ मै कहानी ग़ज़ल की,
दुनिया हुई दीवानी ग़ज़ल की।

चाहे दिन बीते या बरस,
पर ढ़लती नहीं जवानी ग़ज़ल की ।।1।।

जो कुछ कहना चन्द लफ्जो में कहना,
है ये आदत पुरानी ग़ज़ल की।

जमाने से दूर तक पहुँचाती है,
खुशबू जानी पहचानी ग़ज़ल की ।।2।।

आओ याद करे कुछ हसीन पल,
आयी शाम सुहानी ग़ज़ल की।

शायर तो चला जाता है इस जहां से,
पर रह जाती है निशानी ग़ज़ल की ।।3।।

दो

जख्म सीने में छिपाकर–मुस्कुराना है ग़ज़ल।
सहते–सहते दर्द–ए–दिल को–गुदगुदाना है ग़ज़ल।। 1।।

रंग–रंग में डुबोकर जब–कसमसाती है ग़ज़ल।
तब ख्वाबों से हकीकत में–खींच लाना है ग़ज़ल ।। 2।।

है नहीं वाकिफ जो इस–दर्द–ए–दिल की आह से।
सच कहूँ उसके लिये–दुश्वार कहना है ग़ज़ल ।। 3।।

पूछते हो क्यों कि रिश्ता–क्या ग़ज़ल संगीत का।
संगीत है आत्मा जिसकी–जिस्म जान है ग़ज़ल ।। 4।।

प्रकृति, इंसान और आपदा

श्री केशव सिंह मन्द्रवाल
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्,
देहरादून

वो काली रात का दूसरा पहर, और मेघों के बरसते घमासान,
भयावह जलजले की चपेट में आया उत्तरकाशी में इंसान।

अचानक प्रकृति ने डोडीताल में, बादलों का फटना तय किया,
अगोड़ा, भंकोली, गँगोरी, कल्डाडी क्षेत्र को जल मग्न किया।

यहाँ कोतौहल, दहशत, मौत का तांडव शुरू हो गया था,
कुदरती हैरतअंगेज खूनी खेल का आगाज़ हो गया था।

कल्डाडी गाड़ महानदी का विकराल रूप ले चुकी थी,
सोते–सोते सैकड़ों इंसानों को मटियामेट कर रही थी।

जिन्दगी तड़फती, कराहती और चीखती रही रात भर,
निर्दयी प्रकृति रोंदती, मसलती जुल्म ढाती रही इंसान पर।

अगोड़ा, भंकोली गांवो के कई चिराग बुझ गये थे,
गंगोरी पुल के नीचे सोये नेपाली मज़दूर बह गये थे।

कल्डाडी प्राइमरी स्कूल बहकर खाक हो चुका था,
यहाँ गांवो का आवागमन सम्पर्क टूट चुका था।

और नदी की धारा, लगातार अपना काम कर रही थी,
धड़धड़ाती असंख्य पंचतत्व में विलीन कर रही थी।

समय के चक्र ने करवट ली, और भोर पौ फट रही थी,
भयावह, महाप्रलय की शैतानी व्यथा शाँत हो रही थी।

रोते–रोते लोगों के मन सवाल कई उठ रहे थे,
बेगुनाहों को प्रभु किस कृत्य की सजा दे रहे थे।

और प्रकृति? मौन! मानों इंसान से कह रही हो,
मैं अकेली तो नहीं गुनहगार तुम भी तो रहे हो।

तुम क्यों वन सम्पदा लगातार नष्ट कर रहे हो,
कारखानी धुँए, विषैली गैस पर्यावरण में फैला रहे हो,

जहरीले रसायन, पॉलीथीन गन्दगी नदियों में बहा रहे हो,
क्यों बारूदी विस्फोटी, सुरंगे और बाँध बना रहे हो।

प्रकृति के नियमों के विरूद्ध तुम्हारे जो अभियान हैं,
ये हादसे और त्रासदी इन्हीं प्रयोगों के परिणाम है।

वक्त रहते संभल दोस्त, प्रकृति को प्यार कर,
बहारें फिर से आयेंगी पर्यावरण का बचाव शुरू कर।

लेखक परिचय

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो

श्री शैवाल दासगुप्ता
उप महानिदेशक
विस्तार निदेशालय

डॉ. सुधांशु गुप्ता
सचिव

श्री विवेक खाण्डेकर
सहायक महानिदेशक
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग
विस्तार निदेशालय

श्री सुधीर कुमार
विशेष निदेशक
पर्यावरण प्रबन्धन प्रभाग

डॉ. देवेन्द्र कुमार
वैज्ञानिक – सी/सहायक निदेशक
परियोजना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

डॉ. ओम कुमार
सहायक निदेशक
पर्यावरण प्रबन्धन प्रभाग

श्री अनूप सिंह चौहान
अनुसन्धान अधिकारी
वन सांख्यिकी प्रभाग

श्रीमती अर्चना जोशी
निजी सचिव
विस्तार निदेशालय

श्रीमती गीता वोहरा
निजी सचिव
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग
विस्तार निदेशालय

श्री छत्रपाल सिंह सैनी
सहायक
आहरण एवं संवितरण अधिकारी कार्यालय
प्रशासन निदेशालय

श्रीमती कला नैथानी
डाटा एंट्री ऑपरेटर,
क्रय अनुभाग, प्रशासन निदेशालय

श्री केशव सिंह मन्द्रवाल
संविदा कर्मी
प्रशासन निदेशालय

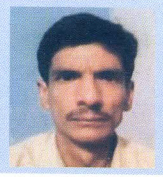

सुश्री अंशु गर्ग
कम्प्यूटर ऑपरेटर
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग
विस्तार निदेशालय

श्री विपिन कुमार
संविदा कर्मी
अनुसन्धान निदेशालय

कुमारी स्नेहलता मन्द्रवाल
(सुपुत्री श्री केशव सिंह मन्द्रवाल)
विद्यार्थी

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
डॉ. वाई. सी. त्रिपाठी वैज्ञानिक – एफ एवं प्रमुख रसायन प्रभाग		**डॉ. अमित पाण्डेय** प्रमुख वन व्याधिकी प्रभाग	
डॉ. अवतार कृष्ण रैना वैज्ञानिक – एफ वन मृदा एवं भूमि सुधार प्रभाग		**डॉ. मुकेश कुमार गुप्ता** वैज्ञानिक – ई वन मृदा एवं भूमि सुधार प्रभाग	
डॉ. बी. पी. टम्टा वैज्ञानिक – डी अकाष्ठ वन उपज प्रभाग		**डॉ. रामबीर सिंह** वैज्ञानिक – सी विस्तार प्रभाग	
डॉ. सत्यप्रसाद चौकियाल वैज्ञानिक – सी वनस्पति विज्ञान प्रभाग		**डॉ. राकेश कुमार** वैज्ञानिक – सी रसायन प्रभाग	
डॉ. के. पी. सिंह वैज्ञानिक – बी वन कीट विज्ञान प्रभाग	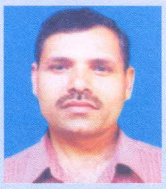	**डॉ. चरन सिंह** वैज्ञानिक – बी विस्तार प्रभाग	
डॉ. प्रतिमा पटेल पाठ्यक्रम समन्वयक वन अनुसन्धान संस्थान सम विश्वविद्यालय		**श्री सुरेश चन्द्र** अनुसन्धान अधिकारी वन व्याधिकी प्रभाग	
श्री अमित कुमार सिंह तकनीकी सहा. ग्रेड – प्रथम रसायन प्रभाग		**श्री विकास** अनुसन्धान सहायक – प्रथम रसायन प्रभाग	

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
श्री अत्तर सिंह अनुसन्धान अधिकारी–द्वितीय अकाष्ठ वन उपज प्रभाग		**श्रीमती रोशनी चौहान** अनुसन्धान सहायक–द्वितीय वन मृदा एवं भूमि सुधार प्रभाग	
श्री प्रशान्त शर्मा अवर श्रेणी लिपिक वन सूचना विज्ञान प्रभाग	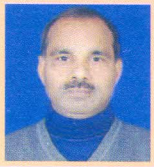	**सुश्री निशात अन्जुम** कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता रसायन प्रभाग	
कुमारी शिप्रा नागर पी.एच.डी. छात्रा रसायन प्रभाग		**सुश्री अनिता पाल** पी.एच.डी. छात्रा रसायन प्रभाग	
सुश्री ज्योति शर्मा परियोजना प्रशिक्षार्थी		**सुश्री शिखा तिवारी** परियोजना प्रशिक्षार्थी	
कुमारी पल्लवी भाटिया अनुसन्धान अध्येता पादप शरीर विज्ञान प्रभाग		**सुश्री ज्योति काण्डपाल** क्षेत्र सहायक पादप शरीर विज्ञान प्रभाग	
श्रीमती सुधा पाण्डेय धर्मपत्नी डॉ. वी.पी. पाण्डेय सामाजिक वानिकी एवं पारिपुनर्स्थापन केन्द्र, इलाहाबाद		**श्री बाबूलाल शर्मा** अनुसन्धान अधि. (सेवा निवृत्त) काष्ठ शरीर शाखा प्रभाग	
कुमारी भारती सिंह सुपुत्री डॉ. चरन सिंह विद्यार्थी			

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर

नाम एवं पता	फोटो
डॉ. गीता जोशी वैज्ञा.–ई एवं हिन्दी अधिकारी हिन्दी प्रकोष्ठ	

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
डॉ. रेखा आर. वारियर वैज्ञानिक – डी	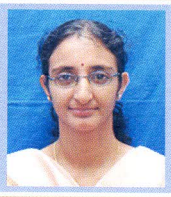	**श्री डी. राजसुगुना शेखर** वैज्ञानिक – सी	
श्रीमती आर.जी.अनिता तकनीकी सहायक		**सुश्री आर. श्रीदेवी** सहायक पुस्तकालयाध्यक्षा	
श्रीमती पूंगोदै कृष्णन हिन्दी अनुवादक			

उष्ण कटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

डॉ. एन. रायचौधरी प्रभागाध्यक्ष वन कीट प्रभाग		**डॉ. नितिन कुलकर्णी** प्रभागाध्यक्ष वन विस्तार प्रभाग	
डॉ. राजीव राय वैज्ञानिक – ई वन विस्तार प्रभाग		**श्री धीरेन्द्र कुमार** हिन्दी अधिकारी	
डॉ. ममता पुरोहित अनुसन्धान अधिकारी वन विस्तार प्रभाग		**श्री संजय पौनीकर** अनुसन्धान सहायक – प्रथम वन कीट प्रभाग	
डॉ. राजेश कुमार मिश्रा अनुसन्धान सहायक – प्रथम सूचना एवं प्रौद्योगिकी अनुभाग	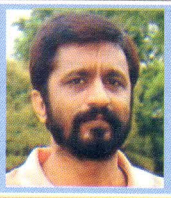	**श्रीमती पूर्णिमा श्रीवास्तव** पुस्तकालय सूचना सहायक पुस्तकालय	

वन उत्पादकता संस्थान, रांची

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
श्री रामेश्वर दास पूर्व निदेशक		**डॉ. संजय सिंह** वैज्ञानिक – ई एवं प्रमुख वनस्पति, संवर्धन तथा अकाष्ठ वन उत्पाद प्रभाग	
डॉ. अरविन्द कुमार वैज्ञानिक–सी एवं प्रमुख वन उत्पादकता प्रभाग		**श्री पंकज सिंह** अनुसन्धान अधिकारी–प्रथम वानस्पतिक एवं अकाष्ठ वन उत्पाद	
श्री एस. एन. वैद्य अनुसन्धान सहायक–प्रथम विस्तार प्रभाग		**श्री महेश कुमार चंचल** अनुसन्धान सहायक–प्रथम	
श्री शम्भूनाथ मिश्र अनुसन्धान सहायक–प्रथम आई.टी. एवं जी.आई.एस. एप्लीकेशन		**श्री रविशंकर प्रसाद** अनुसन्धान अधिकारी – द्वितीय वानस्पतिक एवं अकाष्ठ वन उत्पाद	
श्री आशुतोष कुमार पाण्डेय सहायक		**श्री सुभाष चन्द्र मुखर्जी** सहायक	
श्री हरिशंकर लाल कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता वनस्पति संवर्धन तथा अकाष्ठ वन उत्पाद प्रभाग		**श्री अजय कुमार** परियोजना सहायक आनुवंशिकी, जैवप्रौद्योगिकी एवं वृक्ष सुरक्षा प्रभाग	
श्री प्रवीण कुमार नाग क्षेत्र सहायक			

वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
डॉ. रंजीत कुमार वैज्ञानिक – डी		**श्री पवन कुमार कौशिक** वैज्ञानिक – डी	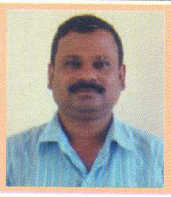
डॉ. विकास राना वैज्ञानिक – डी		**डॉ. विश्वजीत कुमार** वैज्ञानिक – सी	
डॉ. ध्रुबज्योति दास वैज्ञानिक – सी		**डॉ. पी. पी. दास** वैज्ञानिक – सी	
श्री ध्रुब गुरूंग वैज्ञानिक – बी वन रक्षण प्रभाग		**डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा** अनुसन्धान अधिकारी	
श्री नीरेन दास अनुसन्धान सहायक – प्रथम		**श्री शंकर शर्मा** हिन्दी अनुवादक	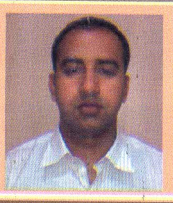

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

डॉ. टी. एस. राठौड़ निदेशक	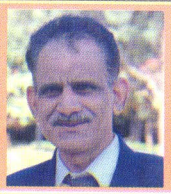	**डॉ. डी. के. मिश्रा** वैज्ञानिक – एफ वन संवर्धन प्रभाग	
डॉ. तरूण कांत वैज्ञानिक – ई वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन प्रभाग		**श्री एस. आर. बालोच** वैज्ञानिक – बी वन पारिस्थितिकी प्रभाग	

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो

श्री कैलाश चंद गुप्ता
हिन्दी अधिकारी

डॉ. एन. के. बोहरा
अनुसन्धान अधिकारी
वन संवर्धन प्रभाग

श्रीमती अनुराधा भाटी
पुस्तकालयाक्ष्यक्षा

सुश्री कुसुम परिहार
अनुसन्धान सहायक–प्रथम

श्री लखपत सिंह शेखावत
अनुसन्धान सहायक – द्वितीय
वन संवर्धन प्रभाग

श्री एच. के. पाण्डेय
अनुसन्धान सहायक – द्वितीय
अकाष्ठ वन उत्पाद प्रभाग

सुश्री शालिनी स्वरूपा
कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता
वन आनुवंशिकी एवं
वृक्ष प्रजनन प्रभाग

अतिथि

डॉ. राजीव पाण्डेय
उप आचार्य
वानिकी एवं प्राकृतिक संसाधन विभाग
हे.न.ब.गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर

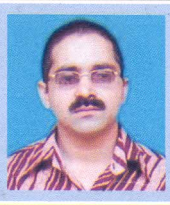

जलाओ दिए पर रहे ध्यान इतना

जलाओ दिए पर रहे ध्यान इतना
अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाए।

नई ज्योति के धर नए पंख झिलमिल,
उड़े मर्त्य मिट्टी गगन स्वर्ग छू ले,
लगे रोशनी की झड़ी झूम ऐसी,
निशा की गली में तिमिर राह भूले,
खुले मुक्ति का वह किरण द्वार जगमग,
ऊषा जा न पाए, निशा आ ना पाए
जलाओ दिए पर रहे ध्यान इतना
अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाए।

सृजन है अधूरा अगर विश्व भर में,
कहीं भी किसी द्वार पर है उदासी,
मनुजता नहीं पूर्ण तब तक बनेगी,
कि जब तक लहू के लिए भूमि प्यासी,
चलेगा सदा नाश का खेल यूं ही,
भले ही दीवाली यहां रोज आए
जलाओ दिए पर रहे ध्यान इतना
अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाए।

मगर दीप की दीप्ति से सिर्फ जग में,
नहीं मिटा सका है धरा का अंधेरा,
उतर क्यों न आयें नखत सब नयन के,
नहीं कर सकेंगे हृदय में उजेरा,
कटेंगे तभी यह अंधेरा घिरे अब,
स्वयं धर मनुज दीप का रूप आए
जलाओ दिए पर रहे ध्यान इतना
अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाए।

– गोपालदास ''नीरज''

प्रकाशक

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, विस्तार निदेशालय

(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की स्वायत्त परिषद्)

डाकघर -न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड) 248 006

भारत